ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

● वर्ष : 73 ● अंक : 01 ● अप्रैल 2023

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 अंक : 01 अप्रैल, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

एक हृदय हो भारत जननी
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : ऐतिहासिक धरोहर - रंगघर।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्टियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ

हिंदी विभाग

	संपादकीय		4
1.	स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता	✍ डॉ. गौरी त्रिपाठी	5
3.	समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की उपादेयता	✍ डॉ. ई. विजय लक्ष्मी	10
4.	स्त्री आत्मकथा : सामाजिक मान्यताएँ एवं मानसिकता	✍ डॉ. भारती	16
4.	सांकेतिकता और हीलीबोन की बत्तखें	✍ डॉ. रोहित कुमार	22
5.	रघुवंश काव्य में चित्रित वर्णव्यवस्था	✍ अंबरीश दास	27
7.	लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में मीडिया और बाजारवाद	✍ मनोज मल्लाह/डॉ. अनुशब्द	32
8.	कुँवर नारायण की कविताओं में पारिस्थितिकी-बोध	✍ मनीष कुमार	39
9.	संस्मरण विधा की कसौटी पर 'कितने शहरों में कितनी बार' : एक अध्ययन	✍ बर्णाली गोगोई	46
10.	आदिवासी महिला कथा लेखन का विकास और चिंतन	✍ शैलेश यादव	51

অসমীয়া বিভাগ

12.	বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতৰ কাব্যিক বিচাৰ ঃ এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন	✍ ড° স্নিগ্ধা কটকী	61
13.	অসমৰ টাইমূলীয়া ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্রসাৰণ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ড° চৰনম হাজৰিকা	66
14.	দেশ বিভাজন আৰু অমৃতা প্ৰীতমৰ 'পিংজৰ' ঃ এটি আলোচনা	✍ ড° অনামিকা ৰাজবংশী	73
15.	লখিমপুৰ জিলাত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক সমাজ-সাংস্কৃতিক অধ্যয়ন	✍ বিকাশ চেতিয়া/ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ	79
16.	অসমৰ সামাজিক আৰু আধ্যাত্মিক ব্যৱস্থাত সাত (৭) সংখ্যাৰ প্ৰায়োগিক দিশ	✍ ড° প্ৰদীপ শইকীয়া/ ড° অচ্যুত কুমাৰ দাস	88
17.	অসমৰ টাইফাকে জনগোষ্ঠীৰ লোকসাহিত্য	✍ দেৱযানী বকলীয়াল	92
18.	শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নাম পদ ঃ বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন	✍ ৰঞ্জিত হাজৰিকা	96
19.	আহোম যুগত চিকিৎসা ব্যৱস্থা, লোক বিশ্বাস আৰু পৰম্পৰাগত ঔষধৰ ব্যৱহাৰ ঃ এক ঐতিহাসিক বিশ্লেষণ	✍ টিনামণি ৰাজকুমাৰী	108
20.	নৰেন পাটগিৰি নাটক ঃ এটি অধ্যয়ন	✍ ৰিম্পী বড়া	114
21.	পৰিৱৰ্ত্তিত শিক্ষাব্যৱস্থা আৰু শিক্ষাৰ বাণিজ্যকৰণ	✍ দাসো কলিতা	124

मानवीय मूल्य एवं आदर्शवाद

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित भाषा, साहित्य, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' का ऐतिहासिक महत्व है। आरंभ से ही इस पत्रिका ने मानवीय मूल्यों के प्रसार में अपना योगदान दिया। पत्रिका के प्रकाशन में योगदान देने वालों के मानस में यह बात थी कि हिंदी सहित समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में मानवीय मूल्यों की केंद्रीय स्थिति रही है। भक्तिकालीन साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य में इस तथ्य को अच्छी तरह से देखा जा सकता है। मानव-मूल्यों का अर्थ है मनुष्य को समाज में रहने लायक बनाए गए वे नियम-विधान, जो मनुष्य को आदिम से सभ्य बनाते हैं। इस सभ्यता में सामंती समाज के मूल्यों को दूर रखने का प्रयास किया गया है। भक्तिकालीन कविता में कबीर और तुलसी ऐसे ही मूल्यों का विरोध करते हैं। कबीर - 'राम नाम का मरम है आना' कहते हैं तो तुलसी -'राम मनुज कस रे सठ बंगा' कहकर राम को मनुष्य मानने के सवाल पर फटकार लगाते हैं। समूचा भक्तिकालीन साहित्य सामंती मूल्यों के विरुद्ध खड़ा होता है। भक्तिकाल के कवि मानव समाज के लिए उपयोगी मूल्यों को बनाए रखने पर बल देते हैं।

साहित्य में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की बात शाश्वत मूल्यों के रूप में की गई है। साहित्य में सुंदर उसी को माना गया, जो सत्य पर आधारित हो और मानव की भलाई करने वाला हो। वास्तव में ये मूल्य संस्कृत काव्य-परंपरा में देखने को मिलते हैं। जो व्याख्यायित है, वही सत्य है। सामाजिक विकास के साथ-साथ मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। नैतिक मूल्य बौद्धधर्म से निकले हुए हैं। ये मूल्य सत्य, अहिंसा, त्याग, दया आदि हैं। बौद्धधर्म में सत्य का अर्थ किसी दैवीय सत्ता के द्वारा नहीं निर्धारित किया जाता है। सत्य वह है, जो समाज में प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है। अगर समाज जातिप्रथा एवं धार्मिक संकीर्णताओं के कारण कष्ट में है तो समाज का सत्य यही है। इसलिए सत्य को साहित्य में अभिव्यक्त करना सबसे महत्वपूर्ण है। कबीर, रैदास एवं मीरा कुछ भी नहीं छिपाते। जो कुछ जैसा दिख रहा है, वह सब कह देते हैं। समूचा भक्ति मानवीय मूल्यों की स्थापना करता है। जो मानव-समाज को संदेश देने के लिए बेहतर है, उसे भक्तिकालीन कवि अपनी बानियों के माध्यम से देते हैं। गुरुनानक देव को पिता से व्यापार के लिए मिले पैसों का सर्वोत्तम उपयोग साधुओं को भोजन कराना लगता है। यहाँ मूल्यों में एक आदर्शवाद है। समाज में ऐसे आदर्शवादी मूल्य आधुनिक साहित्य में दिखलाई पड़ते हैं।

पत्रिका के इस अंक में लेखकीय सहयोग देने वाले लेखकों को हार्दिक धन्यवाद! ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता

डॉ. गौरी त्रिपाठी

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग
गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़-495009
मो. 94522-06059, 63877-12781
ई-मेल : tripathigauri07@gmail.com

भूमिका :

हमारे देश के इतिहास का एक महत्वपूर्ण पहलू है भारत का स्वाधीनता आंदोलन और यह स्वाधीनता आंदोलन हिंदी कविता का मुख्य विषय रहा है। इस शोध पत्र में हिंदी कविता में व्यक्त स्वाधीनता आंदोलन की एक दृष्टि प्रस्तुत की गई है। एक प्रयास और पड़ताल है कि किस प्रकार हिंदी कविता स्वाधीनता आंदोलन को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त कर रही थी और यह साहित्य भारत के स्वाधीनता आंदोलन में कितने महत्वपूर्ण भूमिकाओं के लिए जाना जाता है। विशेष तौर पर माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं को संदर्भ में रखा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख कविताओं के संदर्भ में स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता का विश्लेषण किया जाएगा।

बीज शब्द :

स्वाधीनता आंदोलन, राष्ट्रीय चेतना, अंग्रेजी राज, आजादी, संवेदनात्मक प्रतिक्रिया, मुक्ति।

स्वाधीनता आंदोलन के समय हिंदी कविता अपने स्वाधीनता प्रेम को लेकर काफी सक्रिय हो उठी थी। कविताएं केवल प्रेम और सौंदर्य पर ही नहीं लिखी जाती थी बल्कि जीवन के जिस भी क्षेत्र में पराधीनता और असमानता दिखाई पड़ती थी कविता उसे स्पर्श करती थी। राष्ट्रीय जागरण का देशव्यापी प्रभाव स्वाधीनता आंदोलन और कविता के संदर्भ में हम समझ सकते हैं। जाहिर सी बात है कविता सीधे-सीधे तो नहीं, लेकिन स्पष्ट और अमूर्त तरीके से स्वाधीनता आंदोलन की कहानी कहने लगी थी, वैसे भी कविता की सार्थकता रोजनामचा होने में तो है नहीं, जो सीधे-सीधे किसी बात को लिखें। कविता एक संवेदनात्मक प्रतिक्रिया के तौर पर घटित होती है, फिर वह किसी काल परिस्थितियों की क्यों न हो।

वैसे तो भारत का प्रथम स्वाधीनता आंदोलन 1857 के विद्रोह को माना जाता है, लेकिन तब तक वह आम जनमानस का आंदोलन नहीं था। लगभग तीन दशक बाद जब 1885 में पहली बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन

हो जाता है और उसके मंचों से आजादी की तो नहीं, लेकिन भारतीयों के लिए सुविधाओं की मांग उठनी शुरू होने लगती है।

अंग्रेजी राज में भारत की दुर्दशा और आजादी की बात राजनीतिक मंचों से भी पहले 'भारत भारती' नामक अपने काव्य में पहली बार बहुत व्यवस्थित ढंग से द्विवेदी युग के कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने उठाया–

'हम कौन थे क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी ?
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।
भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहां ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहां।
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है वह कौन ? भारतवर्ष है।
हां वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव भूतियों का यह प्रथम भंडार है
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।[1]

कहना न होगा कि पहली बार हिंदी प्रदेश में इस काव्य ने बेहद प्रभाव शाली ढंग से आजादी के प्रश्न को उठाया। इसका प्रभाव इतना गहरा और व्यापक था कि इसकी प्रतियों को सीने पर बांधकर एक स्त्री भारत माता की जय बोलते हुए गंगा में कूद गई थी। अंग्रेज राज में तत्काल इस कृति पर प्रतिबंध लगा दिया। यह कहते और सोचते हुए हम गर्व से भर जाते हैं कि आजादी के इस राजनीतिक प्रश्न को राजनीतिकों से पहले हिंदी साहित्यकारों और कवियों द्वारा उठाया गया। सिर्फ भावुक ढंग से ही नहीं, उसका वैचारिक और आर्थिक आधार तलाशते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन दिनों 'संपत्ति शास्त्र' नामक पुस्तक लिखी।

भारत में राष्ट्रीय चेतना की प्रारंभिक अवस्था को कांग्रेस के साथ जोड़ दिया जाता है, लेकिन स्वाधीनता आंदोलन और राष्ट्रीय जागरण जैसा विशाल आंदोलन किसी एक तारीख से नहीं शुरू हुआ, कई–कई स्तरों पर इसकी पृष्ठभूमि बनने लगी थी, जिसके चलते भारत के लोग अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगे थे। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में स्वतंत्र आंदोलन की

एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वास्तव में यह भारत का पहला स्वतंत्र संग्राम ही था, जिसका दमन करने में अंग्रेजों ने अपनी निर्मम शक्तियों का सहारा लिया, लेकिन भारतीय जनता इस गुलामी की जंजीरों को तोड़ने में लग गई थी, इसीलिए यह राष्ट्रीयता की भावना की प्रक्रिया बड़ी जटिल और कई परतों में रही है। राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर तो यह लड़ाई लड़ी जा रही थी, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर यह लड़ाइयां कवि लेखक और समाज सुधारक भी लड़ रहे थे। राष्ट्रवाद के प्रति लगभग हर तबका एक साथ था। यही वह दौर था, जब पूरे देश में राष्ट्रीय भावना का विकास एक साथ हुआ, स्वराज्य की कल्पना जगी और उसको पाने के लिए जनता ने एक साथ प्रण किया।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना अपने उदात्त रूप में प्रस्तुत हुई है, जहां एक तरफ स्वतंत्रता आंदोलन की बातें हैं तो दूसरी तरफ विश्व मानवता के कल्याण की भावना है, इन दोनों का संरक्षण राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है,

राष्ट्रीय चेतना कई-कई रूपों में प्रयुक्त होती है।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रवेश होता है, तबसे देश में चतुर्दिक आजादी का वातावरण बनने लगा। हिंदी कविता में यह छायावाद की कल्पनाशीलता और भावुकता का दौर था। प्रकृति की प्रेरणा से मुक्ति के प्रश्न को प्रत्येक स्तर पर उठाया जाने लगा। निराला की कविता 'जागो फिर एक बार' आजादी के प्रति जागरण का आह्वान करते हुए कहती है -

'शेरों की माँद में
आया है आज स्यार,
जागो फिर एक बार।
सत श्री अकाल
भाल अनल धक-धक कर जला
भस्म हो गया था काल
तीनों गुण ताप त्रय
अभय हो गए थे तुम
मृत्युंजय ब्योमकेश के समान
अमृत संतान! तीव्र
भेद कर सप्तावरण रण मरण लोक
शोक हारी। पहुंचे थे वहां
जहां आसन है सहस्त्रार
जागो फिर एक बार। [2]

यह कविता सिर्फ भावुक ढंग से नारेबाजी नहीं करती है बल्कि पश्चिम के बरक्स पूरब यानी अंग्रेजों के खिलाफ भारतीयों के गौरव का इतिहास प्रतिपादित करती है। डार्विन की उक्ति - 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट', जिसे पश्चिमी जगत अपनी खोज मानते हुए इतरा रहा था निराला ने कहा -

'योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है।' [3]

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों के गीत तो जैसे आजादी का नया घोषणा पत्र ही रचने लगे। चंद्रगुप्त नाटक का गीत -

'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।'
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो
असंख्य कीर्ति रश्मिया विकीर्ण दिव्य दाह सी
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी। [4]

वस्तुत: ये सारे गीत स्वाधीनता आंदोलन के समय उद्बोधन गीत और प्रयाण गीत के रूप में गाए जाते थे, जो भारतीय जनता में देशभक्ति की भावना को और गहरा कर देते थे।

अब जागो जीवन के प्रभात
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आंसू जो छोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात। [5]

वस्तुत: यह सब भारत की सांस्कृतिक परंपरा की व्यंजना भी कर रहा था और दूसरी तरफ भारत के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति भी कर रहा था। छायावादी काव्य में स्वाधीनता आंदोलन को लेकर के राष्ट्रीयता के गीत कुछ इसी प्रकार गाए गए हैं। यह स्वाधीनता मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली है -

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुमकुम सारा
हेम कुंभ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे
मदिर ऊंघते रहते जब जगकर कर रजनी भर तारा। [6]

इन गीतों में देश केवल भौगोलिक सीमा में नहीं व्यक्त होता है बल्कि वह पूरी मानवता को व्यक्त करता है देश के प्रति या प्रेम भाव केवल प्रकृति तक सीमित नहीं थी बल्कि यह भाषा संस्कृति और मानवीय संबंधों के स्तर पर भी थी। हमें याद रखना चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन का एक पक्ष राष्ट्रीय भाषा से भी जुड़ा हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन के समान ही राष्ट्रभाषा या मातृभाषा का लगाव भी महत्वपूर्ण था।

छायावाद के कवि केवल कल्पना की उड़ान नहीं

भरते थे बल्कि राजनैतिक और सामाजिक स्वाधीनता के लिए सामान्य जनमानस ने जो संघर्ष किया उसके सभी पहलुओं को बहुत सच्चाई के साथ प्रतिबिंबित भी करते थे।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह अपनी आलोचनात्मक पुस्तक छायावाद में लिखते हैं –

'हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनरुत्थान भावना से होता है, इसकी वजह है विजेता जाति प्रायोजित जाति को दबाने के लिए उसमें से सब सभी प्रकार की शक्तियों का अपहरण करने का प्रयत्न करती है। भारतवर्ष पर अपनी साम्राज्यवादी छाया डालने के बाद अंग्रेजों ने भी यही किया। उन्होंने भारतीयों के आत्म गौरव को कुचलने के लिए हर तरह की कोशिश की। उनको बर्बर और असभ्य कहा उनकी सांस्कृतिक परंपरा को ठहराया, उन्हें शुरू से ही हर खाने वाला साबित किया और भारतीयों के मन में यह भाव भरने की कोशिश की कि अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सदा से ही भारतवासी अकर्मण्य पर चिंता करने वाले तथा सैनिक भाव से हीन रहे हैं। अंग्रेजों ने हर तरफ भारत के इतिहास को विकृत करने की कोशिश की।' [7]

छायावाद के ही समानांतर राष्ट्रवादी रचनाकारों द्वारा बगैर किसी प्रतीक की आड़ लिए बगैर किसी इतिहास की घटना की आड़ लिए सीधे-सीधे अंग्रेजों को ललकारा जाने लगा। इस धारा में सबसे प्रमुख नाम होशंगाबाद के रहने वाले 'एक भारतीय आत्मा' श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी का है।

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दें,
एक हिम-गिरि एक सिर
का मोल कर दें
मसल कर, अपने
इरादों-सी, उठा कर,
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें ?
रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी!
जाँच कर, तू सीस दे-देकर जवानी ? [8]

एक-एक राजनीतिक घटनाओं पर उनकी नजर थी। वायसराय के नेतृत्व में गोल मेज सभा के लिए ब्रिटेन जा रहे भारतीय प्रतिनिधियों, जिसमे गांधी जी भी थे, माखन लाल जी ने लिखा –

'वायुयान के टिकटों से क्या बलि के देश पहुंच पाओगे ?
अपने दुर्भागयों के रोने गीत बना कबतक गाओगे ?

सीधे युद्ध के लिए ललकारते हुए उन्होंने लिखा –

'गणित पढ़ा पर क्या पढ़ जाना
तू कितना, तेरे अरि कितने ?
कानूनों की पुस्तक लेकर
फिर क्यों उठा रहे हो कितने।' [9]

अंग्रेज कहते थे कि हमने सोये हुए भारत में विकास का नवजागरण लाया है –

चतुर्वेदी जी ललकारते है –

'यह जागृति तेरी, तू ले ले
मुझको मेरा दे दे सपना।
तेरे शीतल सिंहासन से
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।
सूली का पथ ही सीखा हूं
सुविधा सदा बचाता आया
मैं बलि पथ का अंगारा हूं
जीवन ज्वाल जलाता आया
एक फूंक मेरा अभिमत है
फूंक चलूं जिससे नभ जल थल
मैं तो हूं बलिधारा पंथी
फेंक चुका कब का गंगाजल। [10]

अपनी रचनाओं के लिए सबसे ज्यादा जेल जाने वाले दुनिया के गिने चुने गए लोगों में माखन लाल जी का नाम लिया जा सकता है।

उस युग में जिस एक कविता को आजादी का शंखनाद कहा जा सकता है, वह है सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता-'झांसी की रानी।'

‘सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
बूढ़े भारत में अब फिर से आई नयी जवानी थी।
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।[11]

यह कविता आजादी की लड़ाई को 1857 के महाविद्रोह से जोड़ती है और उसमें महिलाओं की भूमिका तथा महिला कलम की भूमिका को इस तरह स्थापित करती है कि मानो बदले युग में इस बार स्वयम झांसी की रानी तलवार की जगह कलम लेकर रणक्षेत्र में उतर आई हों।

आधुनिक भारत की यह ऐसी प्रथम कवियत्री है, जिन्हें अपनी कविता के लिए एकाधिक बार जेल जाना पड़ा।

भारतीय गौरव का प्रतीक हिमालय उन दिनों ऐसा प्रतीक बन गया था कि अधिकांश कवियों ने हिमालय के बहाने आजादी की कविताएं लिखी।

कुर्बानी देने का अजीब मस्ती भरे दौर था वह। दिनकर से लेकर तमाम हिंदी उर्दू कवियों में इकबाल सरीखों ने भारत के गौरव और आजादी के गीत गाये।

‘सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्ता हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा।’

स्वाधीनता आंदोलन के महत्वपूर्ण समय को समझने के लिए हिंदी कविता बहुत मायने रखती है। यह कविताएं स्वाधीनता आंदोलन का जीवंत दस्तावेज है।

निष्कर्ष :

भारतवर्ष के स्वाधीनता आंदोलन को हिंदी साहित्य जगत ने भी अपने तरीके से रचा है, सिर्फ रचा ही नहीं है बल्कि स्वाधीनता आंदोलन के लिए हिंदी कविता ने तमाम प्रतिरोधी कविताओं को भी रचा है। इस दौर की कविता अपने समय को अपनी रचनाओं में बहुत जीवंत तरीके से दर्ज करती है। इस शोधपत्र से स्वाधीनता आंदोलन के दौर को हिंदी कविताओं के माध्यम से बहुत बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ संख्या-4
2. राग विराग, सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’, संपादक-रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या 48, लोकभारती संस्करण 2014
3. राग विराग, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, संपादक रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या 49, लोकभारती संस्करण 2014
4. प्रतिनिधि कविताएं, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 96, राजकमल पेपरबैक्स, छठा संस्करण 2019 दिल्ली
5. प्रतिनिधि कविताएं, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 30, राजकमल पेपरबैक्स, छठा संस्करण 2019 दिल्ली
6. प्रतिनिधि कविताएं, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 84, राजकमल पेपरबैक्स, छठा संस्करण 2019 दिल्ली
7. छायावाद, नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या 72, राजकमल प्रकाशन पांचवां संस्करण 2003
8. जवानी, माखनलाल चतुर्वेदी, कविता कोश
9. माखनलाल चतुर्वेदी, कविता कोश
10. अमर राष्ट्र, माखनलाल चतुर्वेदी कविता कोश
11. स्वतंत्रता पुकारती, सुभद्रा कुमारी चौहान, पृष्ठ संख्या 198, संपादक. नंदकिशोर नवल. साहित्य अकादमी प्रकाशन. संस्करण 2006

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की उपादेयता

डॉ. ई. विजय लक्ष्मी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
उरिपोक निङथौखोङजम लैकाई
इम्फाल, मणिपुर, पिन-795001
मो. 9856138333, 7085057819
ईमेल : vningthoukhongjam@gmail.com
velangbam@yahoo.com

शोध-सार :

मानव जीवन में साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही साहित्य का आरंभ माना जा सकता है। मनुष्य में अपने अनुभवों को सांझा करने की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। अत: वह जो भी अनुभव करता है, उसे व्यक्त करने के लिए लालायित रहता है। कोई रचनाकार अपने अनुभवों को जितनी अपूर्वता और मौलिकता के साथ अभिव्यक्त कर पाता है,साहित्य उतना ही प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। साहित्य में युग की चेतना और चित्तवृत्ति को प्रमुखता दी जाती है। साहित्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं रचा जाता,बल्कि किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी किया जाता है। जैसे हिन्दी के नवजागरणकालीन साहित्य विशेषत: प्रारम्भिक उपन्यासों तथा प्रेमचंद के उपन्यासों में युग को प्रतिबिम्बित किया गया है। चाहे लोकसाहित्य हो या शिष्ट साहित्य, दोनों ही मानव जीवन के लिए प्रेरणादायक और शिक्षाप्रद हैं। रचनाकार अपने विचारों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है, वही पाठकगण साहित्य के माध्यम से विचारों को ग्रहण करता है। अत: साहित्य के माध्यम से समाज में वंचित परिवर्तन लाया जा सकता है।

बीज-शब्द :

अपूर्वता, मौलिकता, चित्तवृत्ति, भावोन्मेष, वाङ्मय, अनुरंजन, प्रत्यार्पण, प्रस्फुटन, संवर्धन, प्रभावोत्पादन।

प्रस्तावना :

मानव जीवन के साथ साहित्य का अटूट संबंध है। साहित्य का प्रत्येक रूप मानव अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। व्यक्ति अपने जीवन, समाज या परिवेश में जो कुछ अनुभव करता है, उसे ही रचनाकार साहित्य का स्वरूप प्रदान करता है। साहित्य की रचना में वे सारी कलाएँ, विधाएँ व ज्ञान के सारे रूप महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जिनको व्यक्ति तथा समाज शताब्दियों के अनुभव से प्राप्त करता है। साहित्य अनुभव के आधार पर रचा जाता है। अनुभवों की विशेषता यह है कि ये आन्तरिक और बाह्य जीवन दोनों से जुड़ा होता है। ये अनुभव जब साहित्य के जरिये

प्रकाशित होते हैं, वे मानव जीवन को, समाज को प्रेरित,पोषित एवं परिष्कृत कर उन्हें गति देते हैं।

विश्लेषण :

साहित्य साहित्यकार के जीवन भर के संचित अनुभवों का निचोड़ होता है। इन अनुभवों का निर्माण अनंत स्रोतों के आधार पर होता है। इसका अर्थ हुआ, सारी विधाएँ, कलाएं, ज्ञान के सारे स्रोत अनुभवों के निर्माण के पीछे होते हैं। इसलिए कहा जाता है कि साहित्य में सब कुछ समाहित होता है। भगीरथ मिश्र के अनुसार 'साहित्य के प्रमुखतया पाँच भेद किए जा सकते हैं – विज्ञान, दर्शन, शास्त्र, इतिहास और काव्य।' [1]

व्यापक रूप से साहित्य को इन पाँच भेदों के आधार पर समझा जा सकता है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि युगों-युगों का इतिहास राजनीति, समाजशास्त्र, संगीत, चित्रकला, परंपरा सब कुछ साहित्य में समाहित होता है। संकुचित रूप में साहित्य को 'ज्ञान और अनुभव का लिपिबद्ध रूप ही कहा जा सकता है।' [2]

साहित्य की परिभाषाएँ :

साहित्य को विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।' साहित्य के अंतर्गत सारा वाङ्मय लिया जा सकता है, जिसमें अर्थ बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष तथा चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो तथा ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा-व्याख्या हो।' [3] रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मत है कि 'महत् साहित्य का गुण है अपूर्वता अर्थात मौलिकता। साहित्य जब अत्यंत शक्तिमान रहता है, तब वह चिंतन को ही नए रूप में प्रकाशित कर सकता है। यही उसका काम है, इसी का नाम है मौलिकता।' [4] महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य को परिभाषित करते हुये कहते हैं कि 'ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।' [5] इस संदर्भ में शरतचन्द्र का कहना है कि 'साहित्य वह है, जिसे पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अंतर से सब कुछ पुष्प की तरह प्रस्फुटित कर दिया।' [6] साहित्य के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार की मान्यता है कि 'साहित्य सच्चिदानन्द की प्यास और खोज का प्रत्यर्पण है।' [7]

हमारे देश के विद्वानों की तरह विदेशी विद्वानों ने भी साहित्य की परिभाषाएँ दी हैं। गेटे का कथन है कि 'साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतक है। पतन की ओर वे एक-दूसरे का साथ देते हैं। सिसरो के अनुसार

'साहित्य का अध्ययन नवयुवको का पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का शृंगार करता है, मुसीबत को धीरज देता है, घर में प्रमुदित करता है और बाहर विनम्र बनाता है।' [८]

मानक हिंदी कोश में साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखा है – 'साहित्य का तात्पर्य–1. सहित या साथ होने की अवस्था 2. वे सभी वस्तुएँ, जिनका किसी कार्य के संपादन के लिए उपयोग होता है। 3. किसी भाषा अथवा देश के उन सभी (गद्य और पद्य) ग्रंथों ,लेखों आदि का समूह या सम्मिलित राशि, जिसमें स्थाई उच्च और गूढ़ विषयों का सुन्दर रूप से व्यवस्थित विवेचन हुआ हो। 4. वे सभी लेख ग्रंथ आदि जिनका सौंदर्य गुण, रूप या भावुकतापूर्ण प्रभावों के कारण समाज में आदर होता है आदि। [९]

साहित्य का स्वरूप :

साहित्य की इन परिभाषाओं के आधार पर साहित्य के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि साहित्य के अंतर्गत ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों और पक्षों का समावेश होता है। ज्ञान के साथ अनुभव को लिपिबद्ध किया जाता है और इसमें किसी समाज की जनता की चित्तवृत्ति को प्रतिबिंबित किया जाता है। साहित्य से चित्त का ही मनोरंजन नहीं होता बल्कि बुद्धि को विचारशील भी करता है। साहित्य का व्यवस्थित रूप से विवेचन तथा व्याख्या भी संभव होना चाहिए ।जैनेन्द्र साहित्य के माध्यम से अध्यात्मिक सुख की ओर संकेत करते हैं। अत: कहा जाता है कि किसी भी समाज के उपलब्ध साहित्य से उस समाज के मानव की चित्तवृति को ही नहीं बल्कि उस समाज की संपूर्ण समाज-सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक परिस्थितियों को भी जाना जा सकता है ।इन परिभाषाओं से व्यकित और समाज के लिए साहित्य की उपादेयता को समझा जा सकता है।

साहित्य मानव मन की अभिव्यक्ति का माध्यम है। जब तक कोई रचनाकार अपने मन को रचना के माध्यम से व्यक्त नहीं कर देता वह बेचैन रहता है और प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति के बाद ही उसे संतोष का अनुभव होता है। अंतर्मन की अभिव्यक्त व्यक्ति को सहज बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। इसके माध्यम से रचनाकार खुलकर अपने मन को व्यक्त करता है और तनाव से मुक्त होता है। रचित सामग्री के

पठन-पाठन से अध्ययनकर्ता भी तनावमुक्त होता है। अरस्तू के त्रासदी का सिद्धांत तो तनाव मुक्ति को प्रमाणित करता ही है।

रचना-धर्म :

रचनाकार का कर्म अपनी रचना के माध्यम से केवल मनोरंजन करना नहीं होता। ऐसा होता तो साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता या नैतिकता-अनैतिकता का सवाल व्यक्ति को परेशान न करता। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों से बंधा होता है। समाज को केवल समाज बनाए रखने की ही नहीं बल्कि सुन्दर और स्वस्थ बनाए रखने की भी जिम्मेदारी उस पर होती है और साहित्यकार के लिए यह जिम्मेदारी और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यह मैथलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है -

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।' [10]

कोई भी कार्य निरुद्देश्य नहीं होता। व्यक्ति जो भी काम करता है उसके पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। साहित्य निर्माण भी सोद्देश्य होता है। सोद्देश्य मनोरंजन साहित्य की विशेषता है । यह सौन्दर्यानुभूति से परिचय भी कराता है। सुदूर अतीत से लेकर वर्तमान तक प्रत्येक काल में निर्मित साहित्य से इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। इतना अवश्य है कि प्रारंभ में यह उद्देश्य कुछ स्पष्ट नहीं था परंतु समाज के ऐतिहासिक विकास के साथ यह स्पष्ट होता चला गया। प्रारंभ में कौतुहल ने अभिव्यक्ति के लिए मानव मन को प्रेरित किया होगा, क्योंकि मानव में अभिव्यक्ति की इच्छा नैसर्गिक है। वह जो भी अनुभव करता है, उसे अपने आस-पास के लोगों को सुनाना बताना चाहता है। अपने अनुभवों के साथ वह किसी अन्य से सुनी बातें भी दूसरों को बताकर आनंद का अनुभव करता है। अभिव्यक्ति की इस आदिम प्रवृत्ति से ही साहित्य का स्वरूप निर्मित होता है। इस बात की पुष्टि कार्डवेल के इस कथन से हो जाता है, जहाँ वह मानव-जीवन के आरंभ के साथ ही साहित्य की रचना का भी आरंभ मानते हुए कहते हैं - 'आदि कविता उस समाज में उत्पन्न हुई, जो फल एकत्र करने वालों और शिकारियों का समाज था।'[11]

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रकृति पर विजय पाने के साथ-साथ मानव ज्ञान का संवर्धन भी होता रहा और उसी प्रक्रिया में साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा। मानव ने जब समूह में रहना आरंभ किया उस समय से साहित्य का आरंभ मौखिक रूप में होने लगा होगा जो कालांतर में लोक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। लोक साहित्य का प्रत्येक रूप चाहे वह लोककथा हो चाहे लोकगाथा और चाहे जीवन को ध्वनित करते लोक गीत, सभी से कुछ न कुछ सीखने को अवश्य मिलता है। बचपन में दादी-नानी से सुनी लोक कथाओं से हमारा संस्कार शुरू हो जाता है। शिक्षाप्रद उन कथाओं से बाल मन की भावी जीवन के लिए मानसिक रूप से तैयारी शुरू हो जाती है। उदाहरण के लिए मणिपुरी लोक कथा 'सखी ढिबड़ी' की कथा या 'संन्यासी बिल्लाउ' की कथा सुनते हुए बच्चा कथा की दुनिया में डूबता-उतराता है, पर उससे कुछ न कुछ सीखता भी है। जैसे सखी ढिबड़ी की कथा एक ऐसी धनवान वृद्धा की है, जो अकेली रहती है। एक रात जब वृद्धा सूत कात रही होती है, एक चोर उसके घर पर घुस जाता है। वृद्धा चोर को ढिबड़ी की आड़ में छिपते हुए देख लेती है। वृद्धा घबराती नहीं है। ढिबड़ी को ही सखी बताकर एक चोर की कहानी सुनाने लगती है। चोर कहानी सुनता रह जाता है और वृद्धा शोर मचाकर मोहल्ले भर को इकटठा कर लेती है। इस तरह हिम्मत और चतुराई से वृद्धा चेर को पकड़वाती है। बच्चा इस कहानी से विपत्ति में न घबराकर साहस और विवेक से काम लेने की प्रेरणा मिलती है। इसी तरह संन्यासी बिल्लाउ की कथा में बिल्लाउ पेबेत नामक छोटी चिड़िया के सब बच्चों को खा जाना चाहता है पर पेबेत कुशलता के साथ अपने बच्चों को बचा लेती है। बिल्लाउ हाथ मलता रह जाता है। यह कहानी सुनकर बच्चा अत्यधिक लालच का फल बुरा ही होता है की शिक्षा से व्यवहार ज्ञान सीखता है।

इसी तरह बाल मन पर देश भक्तिपूर्ण साहित्य, महापुरुषों की जीवनी तथा साहसी बच्चों की कहानियों

से देश प्रेम की भावना और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझने की प्रेरणा मिलती है। बाल्य काल में साहित्य के माध्यम से बाल मन का संस्कार संभव है। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और सुखदेव की वीरता से बच्चे प्रभावित होते हैं। इनके जीवन से बच्चों को देशभक्ति की प्रेरणा मिलती है। बच्चे महान व्यक्तियों की जीवनी को पढ़-सुनकर उनके आदर्शों को अपनाने का प्रयास करते हैं।

किसी भी समाज को उस समाज में रचित साहित्य के माध्यम से जाना-समझा जा सकता है। आदिकालीन भारत आदिकालीन साहित्य में तथा मध्यकालीन भारत मध्यकालीन साहित्य में है, उसी तरह आधुनिक काल का भारत भी आधुनिक कालीन साहित्य में देखने को मिलेगा। आधुनिक युग में साहित्य के प्रभाव को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, पर नवजागरण के युग को लाने में मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की जो समाज सांस्कृतिक भूमिका रही है, उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। संतों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने समय में व्याप्त रूढ़ियों को दूर कर मनुष्य की मुक्ति की कामना की थी, वह आधुनिक युग में सामाजिक जागरण के रूप में फलीभूत हुई। रचनाकार अपनी रचना के लिए खाद-पानी अर्थात अनुभूति समाज से ही ग्रहण करता है। इन अनुभूतियों को ही साहित्यकार कल्पना के रंगों से सजाकर रचना का रूप देता है। तात्पर्य यह कि साहित्य जीवन की घटनाओं से प्रभावित होता है वहीं व्यक्ति जीवन भी साहित्य से प्रभावित होता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि भारतेन्दु युग से आज तक निर्मित साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति को ही प्रतिबिंबित किया गया है। भारतीय नवजागरण का सबसे अधिक प्रभाव उपन्यास साहित्य में देखने को मिलता है। अत: नवजागरणकालीन साहित्य को देखना हो तो इसका आधार उपन्यास को बनाया जा सकता है।

हिंदी उपन्यासकारों ने युग के स्पंदन को अपनी रचनाओं में समेटा है और तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमताओं, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को नवजागरणकालीन हिंदी उपन्यासों में व्यक्त किया गया है। अशिक्षा, अज्ञानता, बाल विवाह, विधवाओं की समस्या, दिखावे की प्रवृत्ति, फिजुल खर्च के दुष्परिणामों के साथ अंधविश्वास और रूढ़ियों से उत्पन्न स्थिति को पं. गौरी दत्त कृत उपन्यास देवरानी-जेठानी की कहानी, लाला श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरु, श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत भाग्यवती, बालकृष्ण भट्ट कृत नूतन ब्रह्मचारी तथा सौ अजान एक सुजान आदि उपन्यासों में चित्रित कर समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति विरोध का भाव व्यक्त किया गया है। साथ ही आदर्श परिवार और आदर्श समाज की रचना का संदेश भी देता है। इस काल के उपन्यासकारों का उद्देश्य निश्चित था, इसलिए इस कालखण्ड में सामाजिक उपन्यास ज्यादा लिखे गए। प्रेमचन्दपूर्व इन हिंदी उपन्यासों में नवजागरण के परिणामों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

प्रेमचन्द के प्रारंभिक उपन्यासों प्रेमा तथा सेवासदन में मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविक समस्याओं को केन्द्र में रखा गया है यानी साहित्य को व्यक्ति जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में प्रमुखत: तत्कालीन समस्याओं - पराधीनता, जमीनदारी व्यवस्था, महाजनी सभ्यता, सरकारी कर्मचारियों का रवैया, जाति भेद, छुआछूत तथा रूढ़ियों में पिसते किसान-मजदूरों की दयनीय स्थिति आदि पक्षों को उभारा गया है। अर्थात साहित्य में अपने समय के समाज को ही प्रतिबिंबित किया जाता है। साहित्य में समाज के विभिन्न आयामों को दिखाकर उसे परिष्कृत करने का काम होता है और अनेक बार वांछित परिणमाम भी मिल जाते हैं। इसका सटीक उदाहरण रूसी साहित्यकार मैक्सिम गोर्की का विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' हो सकता है। यह उपन्यास 1906 में लिखा गया था। इसमें तत्कालीन रूसी समाज में व्याप्त शोषण की पद्धति और किसान-मजदूरों के जीवन यथार्थ का चित्रण करते हुए शोषण के विरुद्ध विरोध प्रतिक्रिया को दिखाया गया है। इसे रूसी क्रांति का दस्तावेज भी कहा गया है। इस उपन्यास में 1901-1902 में नोवोगोरोद और सारमोव में मई दिवस के अवसर पर हुए प्रदर्शन, उसकी तैयारी और उसके परिणामस्वरूप प्रदर्शनकारियों पर चलाए गए मुकदमे का तथ्यात्मक चित्रण किया गया है। इस

उपन्यास का सम्पूर्ण रूस पर इतना गहरा और व्यापक प्रभाव कि इसके प्रकाशन के ठीक आठ वर्ष बाद हुई रूसी क्रांति सफल हुई। इस सफलता पर माँ उपन्यास के प्रभाव को विद्वानों ने स्वीकार किया है।[12]

निष्कर्ष :

साहित्य में इतनी शक्ति होती है कि इसके माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। स्वाधीनतापूर्व रचित हिंदी साहित्य की प्रत्येक विधा में आजादी का संदेश और परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने की ललक बखूबी व्यक्त किया गया है।निश्चित रूप से इस साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान स्वाधीनता संघर्ष के लिए जनमानस को तैयार करने में रहा होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानव जीवन को गतिशील करने में, प्रेरित करने में, संस्कार करने में और जीवन को प्रोत्साहित करने में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव जीवन के लिए साहित्य का प्रदेय निर्विवाद है। ❑

संदर्भ :

1. काव्यशास्त्र, भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 2001, पृ-44
2. वही पृ-43
3. अमर सूक्ति कोश सं रामचन्द्र तिवारी, हिंदी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -2010, पृ-296
4. वही, पृ-296
5. वही, पृ-296
6. वही, पृ-296
7. वही, पृ-296
8. वही, पृ-296
9. मानक हिंदी कोश, रामचन्द्र वर्मा (संपा) हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ-356
10. जयद्रत वध, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), आमुख से
11. मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास- डॉ. गोकुलकृष्ण शर्मा, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, पृ-24
12. रूसी साहित्य का इतिहास, वीर राजेन्द्र ऋषि, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली-1 संस्करण- 1972, पृ- 234

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

स्त्री आत्मकथा : सामाजिक मान्यताएँ एवं मानसिकता

डॉ. भारती

पोस्ट डॉक्टरल फेलो
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली
संपर्क : सी 6/74, गली नं.3, सदतपुर एक्सटेनशन, करवाल नगर, दिल्ली-110090
मो. 8447474377
ई-मेल : bharti9206@gmail.com

शोध-सार :

स्त्री आत्मकथा समाज में स्त्रियों की स्थिति को समझने में मददगार प्रतीत होती है। स्त्रियों ने अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ को इन आत्मकथाओं में अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज स्त्रियों को किस तरह से देखता है एवं स्त्रियाँ समाज को किस तरह से देखती है, यह भी इन आत्मकथाओं में व्यक्त हुआ है। भारतीय समाज सामान्य रूप से स्त्रियों को पारंपरिक भूमिका में देखने का आकांक्षी रहा है, जिसमें घर-परिवार एवं बच्चों की देखभाल उनकी प्राथमिकता रहती है। जब समाज पढ़ी-लिखी स्त्री की छवि गढ़ता है तो उस समय भी ये दोनों भूमिकाएं उसकी इस छवि निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। स्त्री आत्मकथाएं सामाजिक मान्यता एवं समाज मनोविज्ञान को बहुत ही गहराई के साथ अभिव्यक्त करती हैं। वस्तुत: स्त्री आत्मकथाएं स्त्री सरोकारों को सामाजिक ताने-बाने के बीच बहुत ही संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

बीज-शब्द :

भारतीय समाज, स्त्री आत्मकथा, सामाजिक सुरक्षा, घर-परिवार, समुदाय, कामकाजी स्त्रियाँ, पारंपरिक स्त्रियाँ, सामाजिक संरचना, परंपरागत नजरियाँ, स्त्रियों की स्थिति।

भूमिका :

साहित्य में आत्मकथा एक ऐसे दस्तावेज के रूप में सामने आती है, जो किसी भी साहित्यकार के भोगे हुए यथार्थ को व्यक्त करती है। विभिन्न आत्मकथाओं के माध्यम से हम किसी भी साहित्यकार चाहे वो स्त्री हो या पुरुष, उसके जीवन को सामाजिक संदर्भों में देखते हैं। किसी भी साहित्यकार का जीवन, उसकी साहित्यिक यात्रा को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। यही कारण है कि लेखक या लेखिका का जीवन परिचय जाने

बिना उसके साहित्यिक जीवन को गहनता से नहीं समझा जा सकता है। बहुत से ऐसे साहित्यकार हुए हैं, जिनका जीवन उनके साहित्य को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता नजर आता है। पंकज चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'आत्मकथा की संस्कृति' में लिखते हैं – 'आत्मकथा की एक स्वाभाविक आधारभूत परिभाषा यही हो सकती है कि उसमें व्यक्ति समूचे समय और समाज के संदर्भ में रखकर अपने शब्द और कर्म, अपनी वैचारिकता और व्यक्तित्व की गहन और पारदर्शी पड़ताल करने की रचनात्मक कोशिश करता है।[1] प्रस्तुत शोध पत्र में भी यह समझने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न आत्मकथा लेखिकाओं की अलग-अलग सामाजिक सन्दर्भों में घटने वाली घटनाओं का प्रभाव किस तरह उनकी लेखनी में व्यक्त हुआ है।

मूल आलेख :

स्त्रियों की आत्मकथा समाज में उनकी स्थिति को देखने और समझने का एक सशक्त और महत्वपूर्ण दस्तावेज है। स्त्रियों ने जो कुछ सहा, जो कुछ भोगा, उसे अपनी आत्मकथाओं में अभिव्यक्त किया है। इन आत्मकथाओं में उनके जीवन के साथ-साथ उस पूरे समुदाय का भी चित्रण मिलता है, जिनसे उनका नाता रहा है। भारतीय समाज सामान्य रूप से स्त्रियों को एक परंपरागत भूमिका में देखने का अभ्यस्त रहा है, जिसमें उनका मुख्य काम घर की देखभाल और बच्चों का लालन-पोषण करने तक सीमित है। हमारे भारतीय समाज में ज्यादातर स्त्रियाँ 'हॉउस वाइफ' के नाम से जानी जाती हैं। यदि उनकी स्थिति को देखें और उनके दैनिक क्रिया-कलापों की एक सूची बनाए तो हम यह पाते हैं कि वह सुबह से शाम तक घर-परिवार में खटती रहती हैं और उनका जीवन घर-परिवार को ही समर्पित है। उन्हें अपने लिए बिल्कुल भी फुर्सत नहीं है, परिवार में सबको यही लगता है कि घर संभालना ही बस उनकी जिम्मेदारी है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज' में स्त्री और पुरुष के बीच कार्य के विभाजन में जो लैंगिक विभेद पाया जाता है उसको बताते हुए लिखते हैं- 'भारतीय समाज में भूमिका निर्धारण के संदर्भ में 'पुरुष के कार्य' और 'स्त्री के कार्य' में भेद किया गया है। गृहस्थी के प्रबंध का काम निरपवाद रूप से स्त्री के क्षेत्र में आता है। यदि वे घरेलू कामकाज में हाथ बटाने के लिए कोई सेवक नहीं रख सकती हैं, कुछ ही लोग घरेलू सेवक रख पाते हैं तो स्त्रियों को घर के सारे कामकाज खुद ही करने पड़ते हैं। जैसे पानी भरना, खाना पकाना, घर की सफाई, अपने और घर के पुरुषों और बच्चों के कपड़े धोना तथा बच्चों की देखभाल। पुरुष यदि इनमें से कोई काम करते दिख जाएं तो उनका उपहास किया जाता है। पुरुष ये काम तभी कर सकते हैं। यदि पत्नी घर पर न हो या अस्वस्थ हो तथा उसका काम संभालने वाली कोई अन्य स्त्री घर पर न हो। यह धारणा इतने गहरे जमी हुई है कि व्यवसायों में कार्यरत तथा पूर्णकालिक सेवारत स्त्रियों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे इसके अतिरिक्त गृहस्थी के कामकाज भी देखती रहें। बहुत सी स्त्रियाँ जब अपने घरेलू दायित्व नहीं पूरे कर पातीं तो उन्हें अपराधबोध न भी हो तो एक अपर्याप्तता तो महसूस होती ही है। दूसरी ओर, पुरुषों से घर के बाहर की दुनिया के कामकाज देखने की अपेक्षा की जाती है।[2]

यदि स्त्री कामकाजी है तो उसे दोहरा संघर्ष झेलना पड़ता है। वह दफ्तर जाने से पहले सुबह जल्दी उठती है फिर पूरे दिन दफ्तर के कार्यों में लगी रहती है और फिर घर आकर घर के कामकाज की जिम्मेदारी, परिवार की देखरेख सब उसी पर इस प्रकार डाल दी जाती है जैसे यह उसी का जिम्मा हो। कई बार तो स्त्रियों को अपनी नौकरी तक छोड़नी पड़ती है। अगर परिवार में दोनों पति-पत्नी नौकरी करते हैं और आकस्मिक कोई कार्य आ जाए या परिवार में किसी की तबियत खराब हो जाए तो छुट्टी सबसे पहले स्त्री को ही करनी पड़ती हैं। वस्तुतः भारतीय समाज की संरचना ही कुछ ऐसी है कि इसमें पुरुष को स्वामी और कर्ता के रूप में देखा जाता है। सामाजिक मान्यता ही है कि पुरुष कमाकर लाएगा और स्त्री घर-परिवार संभालेगी परंतु कई बार ऐसा भी होता है कि पति नौकरी नहीं कर रहा है और पत्नी घर संभाल रही है फिर भी पुरुष को यह स्थिति स्वीकार नहीं होती और पुरुष का अहम् बार-बार आड़े आता है। ऐसी ही एक स्थिति मन्नू भंडारी के सामने भी

आई, जिसको बताते हुए वह कहती हैं- 'मुझे इनके नौकरी न करने से न कोई शिकायत थी... न तकलीफ। तकलीफ थी तो केवल इस बात से कि जब आप नौकरी कर ही नहीं सकते... करना ही नहीं चाहते तो कम से कम फिर मेरी नौकरी करने और घर चलाने पर इतनी-इतनी कुंठाएँ पालकर मेरा और अपना जीवन तो इतना असहज और तकलीफदेह मत बनाइए।'[3] कामकाजी स्त्री के दोहरे संघर्ष को बयां करते हुए मन्नू भंडारी बताती हैं कि कैसे उनकी ही बेटी उन्हें नहीं बल्कि किसी और को अपनी माँ समझ बैठती हैं- 'हमको सच-सच बताओ... हम किसके बच्चे हैं... कौन है हमारी असली ममी...प्लीज हमको बताओ...हमको सच-सच बताओ कि हम किसके बच्चे हैं?'[4] इस स्थिति का जिम्मेदार मन्नू जी अपने नौकरीपेशा जीवन शैली और राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंध को ही समझती है, जिसमें छोटी-सी बच्ची को ही उनको किसी और के पास भेजना पड़ा और आज वह बच्ची द्वंद्व में है कि आखिर उसकी असली माँ कौन है वह किसकी बेटी है। अपनी बेटी को समय न दे पाने की ग्लानि बोध मन्नू भंडारी को सालता रहता है - 'लेकिन रात में जब मैं सोई तो एक प्रश्न जरूर मुझे कचोटने-आहत करने लगा कि क्या मैं टिंकू को वह अपेक्षित प्यार नहीं दे पाई। उसकी वह अपेक्षित देखभाल नहीं कर पाई, जो उसके मन में यह विश्वास जमा पाता कि मैं ही उसकी असली माँ हूँ।'[5] वस्तुत: यह स्थिति हमारे समाज में कामकाजी स्त्री की विडंबना को ही दर्शाती है।

प्रभा खेतान मारवाड़ी समाज से हैं और मारवाड़ी समाज में स्त्रियों को चूल्हा-चौका तक ही सीमित माना जाता है, उन्हें बचपन से ही यह बताया जाता है कि तुम्हें तो पराये घर जाना है तो ठीक से बैठो, ठीक से चलो, कड़ाई-बुनाई सीखों, ताकि अगले घर यह न सुनने को मिले कि माँ-बाप ने कुछ सिखाया ही नहीं है। 'एक मारवाड़ी महिला के लिए यह कम साहस की बात नहीं कि वह देश-विदेशों में अकेले घूम लें। पहले ब्यूटी थेरेपी का कोर्स हांलीवुड से किया और अपना ब्यूटी पार्लर खोला था। अब चमड़े का निर्यात करती हैं। इंडिया टुडे में इनकी फोटो निकली है, ये बहुत डायनामिक महिला हैं।'[6] डॉक्टर साहब के इस कथन से मारवाड़ी समाज की पुरातनपंथी और रुढ़िवादी सोच का पता तो चलता ही है, साथ ही प्रभा खेतान द्वारा उस परंपरा को तोड़ने और अपना मुकाम हासिल करने का पता भी चलता है।' महिला उद्योगपति प्रभा खेतान का यह दुस्साहस क्या कम है कि वह मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में घुसपैठ करती है। कलकत्ता चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स की अध्यक्ष बनती है।'[7] समाज को स्त्रियाँ प्राय: रोती-बिलखती और असहाय ही अच्छी लगती हैं, जैसे ही कोई महिला आगे बढ़ने लगती है तो उसके चरित्र को तुरंत कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है, उसे हर बार सफाई पेश करनी पड़ती है। प्रभा खेतान भी समाज की इस मानसिकता को बताते हुए कहती हैं - 'ओफ्फ... डॉक्टर साहब मैं थक गई हूँ। अपने चरित्र की कैफियत देते-देते... आपके प्रति अपनी उत्सर्गता, वफादारी प्रामाणित करते-करते। औरत की वही परंपरा अच्छी थी, जब वह घूँघट निकाले बैठी रहती थी, कहीं कोई झंझट नहीं था। पर मेरी जैसी औरत के लिए बाहरी दुनिया में जाना चाहे मेरी मजबूरी कहिए या फिर चुनाव, लेकिन मैं कहना चाहती थी कि यदि स्त्री बाहरी दुनिया में मौजूद है तो क्या उसके सम्पर्क में पुरुष नहीं आएँगे? और कैसे प्रमाणित करूँ कि मेरे और उस फलाँ पुरुष के बीच ऐसी-वैसी कोई बात नहीं है, लेकिन डॉक्टर साहब थे कि शब्दों के चाकू से मुझे चीरते रहते।'[8]

भारतीय समाज सामान्य रूप से स्त्रियों को एक परंपरागत भूमिका में देखने का अभ्यस्त रहा है, जिसमें उनका मुख्य काम घर की देखभाल और बच्चों का लालन-पोषण करने तक ही सीमित है। जब समाज पढ़ी-लिखी स्त्री की छवि गढ़ता है तो उस समय भी ये दोनों भूमिकाएं उसकी इस छवि निर्माण में महत्त्वपूर्ण रोल निभाती हैं। ऐसा नहीं है कि पढ़ी-लिखी और कामकाजी स्त्री होने के बाद उनकी सामाजिक स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन आता है। मन्नू भंडारी बेटी के जन्म और उसके बाद की जिम्मेदारियों का उल्लेख करते हुए लिखती हैं - 'बच्ची के जन्म से बड़ी जिम्मेदारियों ने, जिसका सारा बोझ भी मुझ पर आ पड़ा था, पहले बच्चे के जन्म की सारी खुशियों को सोख लिया।'[9]

यह उदाहरण किसी घरेलू स्त्री की लेखनी में व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि ये समाज की एक प्रबुद्ध साहित्यकार का भोगा हुआ सत्य है, जो यह सिद्ध करता है कि महिला प्रबुद्धता उसकी समाज में गढ़ी हुई रुढ़िवादी भूमिका पर कुछ खास चोट नहीं कर पाती है। इसी कारण से पढ़े-लिखे होने के बावजूद उन्हें इन पूर्वाग्रह आधारित सामाजिक मान्यताओं एवं मानसिकता से निरंतर जूझना पड़ता है। कामकाजी स्त्री के जीवन में ये भूमिका संघर्ष उस समय और भी अधिक जटिल हो जाता है, जब उसकी घर और कार्यस्थल की जिम्मेदारियां एक दूसरे के विरोध में खड़ी हो जाती हैं। कामकाजी महिलाओं के बहुआयामी संघर्ष को बताते हुए कुमुद शर्मा अपनी पुस्तक 'आधी दुनिया का सच' में लिखती हैं - 'पुरुष जब काम से घर लौटता है तो उसे स्त्री की तरह घर की व्यवस्था नहीं देखनी पड़ती, लेकिन जब नौकरीपेशा औरत घर लौटती है तो उसे अपनी पुरानी भूमिकाओं को भी पहले की ही तरह निभाना पड़ता हो बल्कि कहीं-कहीं अधिक चुस्ती से भी निभाने की जरूरत होती है, अन्यथा कामकाजी होने के क्रूर और निर्मम व्यंग्य-बाण भी उस पर दागे जा सकते हैं।' [10]

भारतीय समाज में यह पूर्वाग्रह आज भी बना हुआ है कि पुरुष किसी भी औरत पर जल्दी से हाथ नहीं उठा सकता। अक्सर यह कहते-सुनते देखा गया है कि औरत हो इसलिए कुछ नहीं कहा अगर कोई पुरुष होता तो बताते। रमणिका गुप्ता अपनी आत्मकथा 'हादसे' में समाज के इसी पूर्वाग्रह को बताते हुए लिखती है - 'औरत पर हमला करने से पुरुष की छवि बाहर तो बिगड़ती ही है। संभवत: अपने अंतर्मन में भी वह अपने को छोटा मानने लगता है। लोग उसके शौर्य और मर्दानगी पर सवाल उठाने लगते हैं। वे कहने लगते हैं - 'कैसा आदमी है यह जो औरत से भिड़ता है या उन पर हाथ उठाता है?' एक बार सूरजदेव सिंह ने किसी से कहा भी था - 'रमणिका जी औरत हैं, वरना मैं उन्हें बता देता।' ऐसे भी औरत पर हाथ उठाने पर यदि वह उसका पति न हो तो एक बार तो मर्द हाथ झिझक ही जाता है।' [11]

स्त्री आत्मकथाएं समाज में व्यक्त उन रुढ़िवादी मानसिकता को व्यक्त करती हैं, जिन्हें आज भी हमारा समाज ढो रहा है। समाज में 'स्त्री की सुंदरता' किस तरह एक मापदंड के तौर पर कार्य करती है, यह भी इन स्त्री आत्मकथाओं में दिखाया गया है। स्त्रियों ने यह सबकुछ व्यक्तिगत रूप में झेला है। इसलिए इनकी प्रामाणिकता ओर भी पुख्ता हो जाती है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में आत्मकथा में इस तरह की अभिव्यक्तियाँ अधिक दिखाई देती हैं, क्योंकि यह कोई कल्पना नही है बल्कि उनका स्वयं भोगा हुआ यथार्थ है। प्रभा खेतान को किस तरह से सुन्दर न होने के कारण परिवार में शुरू से ही उपेक्षा का पात्र बनना पड़ा और परिवार में उनकी स्थिति कोई विशेष महत्त्व की नहीं थी। अपनी माँ का प्यार प्रभा खेतान को कभी नहीं मिला इस बात को वे रेखांकित करती हैं और उसके पीछे उनके सुन्दर न होने की कमी को ही पाती हैं। प्रभा अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में इस वेदना को व्यक्त करते हुए कहती हैं - 'माँ ने प्यार नहीं किया, यह तो समझ रही थी, क्योंकि मैं ठहरी काली। माँ की तरह गौरी नहीं। मैं बहुत शांत, गीता की तरह स्मार्ट नहीं, मुँह पर फटाफट जवाब नहीं दे पाती, लेकिन मैं पढ़ने में तो अच्छी थी, क्या यह काफी नहीं था।' [12] प्रभा खेतान के बाल मन पर इसका काफी प्रभाव पड़ा। परिवार के बीच होकर भी वह स्वयं को अनाथ जैसा महसूस करती थी। वह लिखती हैं - 'कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद ...हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच। अम्मा मेरी बातों को समझ नहीं पाती थी।' [13]

इसी प्रकार मन्नु भंडारी को भी इस सुंदरता के मापदंड पर तौला गया और सुन्दर न होने की कमी के चलते परिवार ने उनमें एक हीन भाव को जन्म दिया। मन्नू भंडारी अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में सुंदरता के इस मापदंड को झेलते हुए कहती हैं - 'मैं काली हूँ, बचपन में दुबली और मरियल भी थी। गोरा रंग पिताजी की कमजोरी थी, सो बचपन में मुझसे दो साल बड़ी, खूब गोरी, स्वस्थ और हँसमुख बहिन सुशीला

से हर बात में तुलना और फिर उसकी प्रशंसा ने ही क्या मेरे भीतर ऐसे गहरे हीनभाव की ग्रंथि पैदा नहीं कर दी कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उबर नहीं पाई? आज भी परिचय करवाते समय जब कोई तरह-तरह के विशेषण लगाकर मेरी लेखकीय उपलब्धियों का जिक्र करने लगता है तो मैं संकोच से सिमट ही नहीं जाती बल्कि गड़ने-गड़ने को हो आती हूँ। शायद अचेतन की किसी पर्त के नीचे दबी इसी हीनभावना के चलते ही मैं अपनी किसी भी उपलब्धि पर भरोसा नहीं कर पाती... सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है।'[14] परिवार में सुन्दर बच्चे को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है, वही सबके आकर्षण का केंद्र बनता है और स्त्री को 'सुंदरता' के कटघरे में मापा जाता है। यह मानसिकता हमारे समाज की एक समस्या है, जिस कारण आज भी कितनी लड़कियों के विवाह उनके नैन-नक्श और काले रंग के कारण ठुकरा दिए जाते हैं और वे स्वयं को कमतर मानने लगती हैं। महादेवी वर्मा अपनी पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में लिखती हैं - 'हिन्दू नारी का, घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है, परंतु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचारमात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता।'[15]

विवाहित और अविवाहित स्त्रियों को लेकर भी समाज की सोच में बड़ा अंतर है। विवाहित स्त्रियों के पास सामाजिक सुरक्षा है, जो उन्हें विवाह संस्था द्वारा मिली परंतु अविवाहित स्त्रियाँ चाहे कितना भी कार्य कर ले समाज में उन्हें यह सुरक्षा भाव नहीं मिलता। विवाहित और अविवाहित स्त्रियों में समाज की इस विभेदकारी मानसिकता को भी स्त्री आत्मकथाओं में दिखाया गया है। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में लिखती हैं - 'लकीर के इस तरफ शादीशुदा औरतें थी। सती-सावित्री, पतिव्रताएं, परंपरा को मानकर चलनेवाली, अपने आपको पति के चरणों में रखनेवाली। कमोबेश इन सभी स्त्रियों के मूल्य एक जैसे थे, उनकी ताकत का स्रोत उनके पति थे। उनकी गृहस्थी ही उनका कर्मक्षेत्र थी। उन्हें सुकून पंहुचाने वाले बच्चे उनके पास थे। लकीर के इस ओर मैं थी, एक दूसरी औरत के रूप में, जिसके पास अपना काम था, बैंक में कुछ पैसे थे लेकिन इन सबके बावजूद समाज की नजरों में जो पथभ्रष्ट और अपवित्र थी। हाँ, मेरे और उन विवाहिताओं के बीच एक गहरी अलंघ्य खाई खुदी हुई थी।'[16] प्रभा खेतान समाज से पूछना चाहती हैं कि क्या सारी वैधता विवाह के सात फेरों से ही मिलती है, बिना सात फेरो के क्या स्त्री की कोई गति नहीं है, उसका वजूद नहीं है। तलाकशुदा औरतों के प्रति भी समाज की यह विभेदकारी सोच अक्सर दिखाई दे जाती है, जिन्हें इन आत्मकथाओं में दर्ज किया गया है। यह आत्मकथाएं बताती हैं कि तलाक देना तो फिर भी आसान है, परंतु उसके बाद की स्थिति बहुत त्रासद हो जाती है। समाज उन्हें हर कदम पर शंका की दृष्टि से देखता है। वस्तुत: तलाकशुदा औरत की समाज में कोई हैसियत नहीं रह जाती है। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में समाज की संकीर्ण परम्पराओं का बहुत ही संजीदगी के साथ वर्णन किया है। उदाहरण के लिए उनके तलाक के बाद बिना पूर्व सूचना के घर आने पर परिवार में किसी को खुशी नहीं हुई, इसका कारण यह है कि अच्छे घर की बहूँ-बेटियाँ हमेशा किसी के बुलावे पर आती हैं और यही समाज की परंपरा है, जिसको लेखिका ने तोड़ दिया और इसी कारण समाज उन्हें स्वीकारता नहीं है। समाज में कई तरह की मान्यताएं प्रचलित हैं, जिनमें से एक मान्यता यह भी रही है कि लड़की कुँवारी होनी चाहिए और इसकी पहचान के लिए समाज में कई तरह की परंपरा भी प्रचलित हैं, जैसे नथ उतारने की परंपरा। इस परम्परा के निर्वहन में परिवाह के मुखिया के साथ स्त्रियाँ भी रही है। पुरुष चाहे कितना चरित्रहीन क्यों न हो, परंतु स्त्री श्रेष्ठतम गुणोंवाली और सहनशील होनी चाहिए। स्त्री की स्थिति समाज में दोयम दर्जे की रही है। उसे जन्म से लेकर जीवन के अन्य क्रिया-कलापों में यह एहसास करवाया जाता है कि वह स्त्री है। भारतीय समाज में माना जाता है कि पत्नी को पति से कम पढ़ा-लिखा होना चाहिए। समाज की इस मानसिकता को बताते हुए अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी ने अपनी आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' में किया है – 'आपकी लड़की बहुत पढ़ी-लिखी है, सारे गुण हैं, बहुत नाम पा लिया है, पर बहू हमारे लड़के के सिर पर पाँव रखकर आवे – यह हमें मंजूर नहीं। यानी पत्नी को हर हाल में पति से कम पढ़ा-लिखा और हर तरह झुका होना चाहिए। सो, मेरे सब गुण ब्याह के बाजार में अवगुण सिद्ध हुए।' [17] गरिमा श्रीवास्तव अपने एक लेख 'प्रतिरोध की संस्कृति: स्त्री आत्मकथाएँ' में लिखती हैं – 'दरअसल स्त्री को देखने का हमारा परंपरागत नजरिया ही उसे आत्मकथा जैसी विधा अपनाने को प्रेरित करता है।' [18]

निष्कर्ष :

वस्तुतः भारतीय समाज की संरचना ही ऐसी है, जिनमें कुछ समस्याएँ उन्हें स्त्री होने के नाते ही झेलनी पड़ती हैं। स्त्री चाहे पारंपरिक हो, कामकाजी हो, सामाजिक कार्यकर्ता हो या कोई प्रतिष्ठित रचनाकार। लगभग सभी को अपने जीवन में स्त्री की इस स्थिति का सामना करना ही पड़ता है। इसके पीछे समाज की लैंगिक विभेद की मानसिकता भी काम करती है, जो 'स्त्री हो तो स्त्री की तरह रहो' वाले चश्मे से समाज में स्त्रियों को देखती है। आज भी समाज उन्हें कढ़ाई, बुनाई और घर-गृहस्थी के पारंपरिक रूप में ही देखने का आकांक्षी है। कुछ स्त्रियाँ विद्रोह और प्रतिकार का रास्ता अपनाते हुए अपनी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त कर पाई हैं तो दूसरी और आज भी कुछ स्त्रियाँ घर का चूल्हा-चौका करने को ही अपनी नियति मान चुकी हैं। वस्तुतः स्त्री आत्मकथाएं समाज के इस ताने-बाने के बीच स्त्रियों के वास्तविक हालातों की बहुत ही संजीदगी के साथ पड़ताल करती हुई दिखाई देती हैं। ❑

संदर्भ-सूची :

1. पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ-13
2. श्यामाचरण दुबे, अनु. वंदना मिश्र, भारतीय समाज, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, सातवीं आवृति, 2015, पृष्ठ-101
3. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नवीन शाहदरा, आठवाँ संस्करण, 2022, पृष्ठ-67
4. वही, पृष्ठ-77
5. वही, पृष्ठ-78
6. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, छठा संस्करण, 2021, पृष्ठ-11
7. वही, फ्लैप पेपर से उद्धरित
8. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, छठा संस्करण, 2021, पृष्ठ-212
9. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ-65
10. कुमुद शर्मा, आधी दुनिया का सच, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, संस्करण, 2014, पृष्ठ-61
11. रमणिका गुप्ता, हादसे, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, शाहदरा, तीसरा संस्करण, 2019, पृष्ठ-245
12. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ-26
13. वही, पृष्ठ-31
14. मन्नु भंडारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ-18
15. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज, तीसरा संस्करण, 2015, 34
16. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ-173
17. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पिंजरे की मैना, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, पहला संस्करण, 2022, पृष्ठ-103
18. आलोचना पत्रिका, अक्तूबर-दिसम्बर-2009

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

सांकेतिकता और हीलीबोन की बत्तखें

डॉ. रोहित कुमार

सहायक प्रोफेसर
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केंद्रीय)
विश्वविद्यालय, उत्तराखंड
मो. 9868365531
ई-मेल : drrohitkumarhnbgu@gmail.com

शोध-सार :

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की उत्तरवर्ती कहानियाँ किसी बने-बनाए निष्कर्ष या प्रदत्त सत्य को प्रस्तुत करने के इतर पाठक को चिंतन-मनन का अवसर प्रदान करती हैं। आगे चलकर हिंदी कहानी में यह प्रभाव व्यक्तिवादी या मनोविश्लेषणवादी धारा में अधिक विकसित हुआ और इसने संकेतात्मक प्रवृत्ति को विकसित किया। 'हीलीबोन की बत्तखें' इस प्रवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। जहाँ संकेतात्मक भाषा के माध्यम से भाव या स्थिति को प्रस्तुत करते हुए अर्थ के निर्माण के अवसर को पाठक की ओर मोड़ दिया गया है। यद्यपि यह प्रवृत्ति नई कहानी में अधिक विकसित होकर प्रस्तुत हुई किन्तु इसके पहले ही इसके संकेत हिंदी कहानी में नजर आने लगते हैं। इस शोध-पत्र में अज्ञेय की कहानी के माध्यम से इसी तत्त्व के अध्ययन-विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

भूमिका :

प्रेमचंद के लेखन ने देश को सामाजिक-राजनैतिक दृष्टि से जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। जहाँ आरंभिक कहानियाँ भूल-सुधार और हृदय-परिवर्तन पर आधारित रहीं, वहीं अंत की ओर यथार्थवादी और समाज की आलोचनात्मक प्रवृत्ति सघन होती गई। प्रेमचंद के पश्चात् हिंदी कहानी सहसा सामाजिक बाह्य पक्ष के विपरीत व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष की ओर झुकने लगी। यहाँ आकर पात्र या चरित्र का प्रभाव बनने लगा और व्यक्ति साधन से अधिक साध्य बनने लगा। इसी के साथ कहानी में एक धारा अंतरंगता के आयाम की ओर विकसित होती चली गई। यही कारण है कि 'प्रेमचंद की तुलना में परवर्ती कथा-लेखक 'कथानक' की अपेक्षा पात्रों के जीवन-प्रवाह पर अधिक बल देने की चेष्टा करते हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, पहाड़ी, इलाचंद्र जोशी इत्यादि अधिकांश ऐसे लेखक हैं, जिनकी कहानियों में कथानक क्षीण रहता है।'[1] यदि प्रभाव की

दृष्टि से कहानी में आ रहे परिवर्तन को देखें तो कहानी समाधान देने के स्थान पर संकेत देने की ओर बनने लगी। 'चेखव की यह सलाह वे (प्रेमचंद) नहीं मानते कि कहानीकार को केवल प्रश्न ही सामने रखने चाहिए, उत्तर देने का आग्रह नहीं दिखाना चाहिए।'[2] हालाँकि प्रेमचंद की उत्तरवर्ती कहानियों में 'शतरंज के खिलाडी', 'पूस की रात' और 'कफन' जैसी यथार्थवादी कहानियाँ उत्तर या समाधान नहीं देतीं, केवल संकेत करती हैं और यह प्रवृत्ति आगे चल कर मनोविश्लेषणवादी कहानियों में विकसित होती चली गयी।

अज्ञेय मनोविश्लेषणवादी कहानी लेखकों में अग्रणी हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'अज्ञेय गद्य को अधिकतर अपने ढंग से रचते हैं।'[3] उन्होंने व्यक्ति और उसके परिवेश के साथ जीवन संघर्ष को बौद्धिक और वैचारिक आधार प्रदान किया तथा बिम्बों और प्रतीकों के साथ भाषा में अप्रत्यक्षता या सांकेतिकता की प्रवृत्ति को हिंदी कहानी में विकसित किया। किसी प्रदत्त उत्तर के स्थान पर कहानी के कहानीपन को आगे चल कर 'उसकी अर्थवत्ता या सार्थकता'[4] के रूप में देखा गया, जो एक प्रवृत्ति के रूप में मूलत: सांकेतिकता की योजना में जन्म ले रही थी। यह धारा पीछे प्रेमचंद, फिर अज्ञेय आदि की मनोविश्लेषणवादी कहानियों से होते हुए आगामी कहानी आन्दोलनों में संभवत: अनिवार्य विशेषता बनने लगी। प्रेमचंदोत्तर कहानी में समाधानहीनता को स्थापित मूल्यों पर शंका और गुंफित प्रश्नों के रूप में देखा गया फिर भी इस दौर में कहानी के संकेत तंत्र पर विचारों या दर्शन की छाया अवश्य दिखाई देती रही।

बीज शब्द :

संकेतात्मकता, प्रवृत्ति, कहानी, स्त्री, अकेलापन, प्राकृतिक सत्य, परिवार।

विश्लेषण/विवेचन :

'हीली-बोन की बत्तखें' कहानी अज्ञेय के कहानी संग्रह 'जयदोल' में प्रकाशित हुई। कहानी के केंद्र में है- खासिया जाति की एक अविवाहित स्त्री हीलीबोन यिर्वा और उसका अकेलापन। वह अपने जीवन में ही नहीं, अपने सारे गाँव में अकेली है। इसका कारण अतीत में मौजूद है। वह बार-बार उसे टटोलती है। हीली के पिता सियेम के दीवान थे और हीली तीन बहनों में सबसे बड़ी और सुन्दर थी, लेकिन खासी जाति की परंपरा के अनुसार सबसे छोटी बहन को सारी संपत्ति मिली और हीली के पास आई एक कुटिया और छोटा-सा बगीचा, जो कुछ अधिक साहबी ढंग का बँगला (बहुत कुछ व्यंग्य रूप में) जान पड़ता है। साफ है कि हीली अतीत में बहुत कुछ खो चुकी है - उम्र, संपत्ति, सुन्दरता और कुल मिला कर 'नाङ्क्रेम' की रानी होने का अहसास। उसके आत्मकेंद्रित व्यक्तित्व के भीतर अभिमान के धुंधलाने की गहरी हताशा भी है और उसे थामे रखने की जद्दोजहद भी। यह जद्दोजहद है स्त्री होने के भाव को अनुभव करना, लेकिन हीली के जीवन में प्रेम और संतान अनुपस्थित हैं। वह सोचती है 'अभिमान? स्त्री का क्या अभिमान!'[5] अज्ञेय स्त्री के अभिमान के रूप में मातृत्व और प्रेम का संकेत देते हैं - 'लोग कहते थे कि हीली सुंदर है, पर स्त्री नहीं है। वह बाँबी क्या, जिसमें साँप नहीं बसता? हीली की आँखें सहसा और भी घनी हो आईं - नहीं, इससे आगे वह नहीं सोचना चाहती!... बिना साँप की बाँबी - अपरूप, अनर्थक मिट्टी का ढूह।'[6] यहाँ संकेत में बहुत गहराई के साथ प्रकृति और स्त्री आमने-सामने है। प्रकृति के सृजन के सामने स्त्री का अपना सृजन, अपनी सार्थकता-दाम्पत्त्य, परिवार, कुटुंब। 'मातृत्व स्त्री को प्राकृतिक रूप से उपलब्ध सार्थकता का एक सहज अवसर है,[7] किन्तु यह अवसर हीली को प्राप्त नहीं।

इस शून्यता को हीली बत्तखों से भरती है- 'और अब वह बत्तखें पालती है। इतनी बड़ी, इतनी सुंदर बत्तखें खासिया प्रदेश में और नहीं हैं। उसे विशेष चिंता नहीं है, बत्तखों के अंडों से इस युद्धकाल में चार-पाँच रुपए रोज की आमदनी हो जाती है, और उसका खर्च ही क्या है? वह अच्छी है, सुखी है, निश्चिन्त है।'[8] संकेत यह है कि हीली के अभिमान को बत्तखों ने वापस दिया है, लेकिन उस पर भी हमला हो रहा है। कहानी पाठक को अचानक घटना के मध्य खड़ा कर

देती है। असल में कहानी जिस दृश्य (सेंस) से प्रारंभ होती है, उसका एक विशिष्ट मानसिक सन्दर्भ खड़ा करना लेखक की रचना का उद्देश्य है।[9] लोमड़ी का चौथा हमला हुआ है, यह हीली के जीवन से अधिक उसके अभिमान पर हमला है। उसके सभी अभावों के ऊपर छा गयी काई पर खून के धब्बे दिख रहे हैं। उसकी चीख निकल जाती है और वह चीख फौजी इंजीनियर कैप्टन दयाल जब सुनता है तो जानने के लिए हीली की ओर चला आता है। हीली बाड़े में देखती है तो उसे फर्श पर रक्त और पंख बिखरे दिखते हैं और फिर कहानी में अगली घटना के लिए एक प्रारूप आकार लेने लगता है। कैप्टेन दयाल प्रस्ताव रखते हैं कि मैं रात में घात लगा कर शिकार कर सकता हूँ। हीली कुछ संकोच के साथ प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है। हीली लोमड़ी का उपाय करना चाहती है। कैप्टेन दयाल के पास बंदूक भी है वे शाम को टोह में बैठ जाते हैं। हीली को विश्वास है कि वह शिकार कर लेंगे इसलिए वह सो जाती है। रात के दो-अढाई बजे बंदूक की आवाज से उसकी आँख खुली। उसे उसी समय राहत-सी महसूस हुई, किन्तु वह उठी नहीं बल्कि फिर सो गयी। साफ है, अज्ञेय कहानी में अर्थ के स्तरों पर बल दे रहे हैं।

शिकार जख्मी हो गया था इसलिए पौ फटते ही दोनों खून के निशानों का पीछा करने लगे। यहीं आकर कहानी अपने केंद्र में प्रवेश करती है और चले आ रहे प्रवाह को पलट देती है। अंत का दृश्य हीली को उद्वेलित कर देता है। भाषा इस प्रकार गढ़ी गई है कि पूरा दृश्य पाठक की आँखों के सामने तैरने लगता है। यह भावनात्मक दृश्य कहानी में हीली द्वारा देखा जाता है कुछ-कुछ सिनेमाई क्लोज-अप तकनीक जैसा- 'करारे में मिट्टी खोदकर बनाई हुई खोह में-या कि खोह की देहरी पर-नर-लोमड़ी का प्राणहीन आकार दुबका पड़ा था, कास के फूल की झाड़ू-सी पूंछ उसकी रानों को ढक रही थी, जहाँ गोली का जख्म होगा। भीतर शिथिल-गत लोमड़ी उस शव पर झुकी खड़ी थी, शव के सर के पास मुँह किए, मानो उसे चाटना चाहती हो और फिर सहमकर रुक जाती है। उस कुनकुनाने में भूख की आतुरता नहीं थी; न वे बच्चे लोमड़ी के पेट के नीचे घुसड़-पुसड़ करते हुए भी उसके थनों को ही खोज रहे थे, माँ और बच्चों में किसी को ध्यान नहीं था कि गैर और दुश्मन की आँखें उस गोपन घरेलू दृश्य को देख रही हैं।'[10] अज्ञेय शब्दों में ही संकेत कर देते हैं कि यह 'गोपन घरेलू दृश्य' है। यह वो दृश्य है, जिसमें पूरा-भरा घर मौजूद है, माँ-पिता और बच्चे। कहानी पढ़ते हुए हीली के अभावों के संकेत इस दृश्य के द्वंद्व में फिर उभर आते हैं और कहानी अपने अंतिम हिस्से में प्रवेश कर जाती है।

कैप्टेन दयाल मादा लोमड़ी को भी मारना चाहते हैं। वे हीली से पूछने के लिए मुड़ते हैं तो वहाँ हीली नहीं मिलती। वो जा चुकी है। हीली के भीतर भूचाल आ गया है। बाड़े में जाकर हीली सभी बत्तखों को मार देती है। जब कैप्टेन हीली के पास जाकर कंधे पर हाथ रखते हैं तो हीली कंधा झटककर, छिटककर परे हटती

हुई कहती है– 'दूर रहो, हत्यारे!' [11] यह कहानी का अंत है। हीली की इस तीव्र प्रतिक्रिया से कैप्टेन दयाल और पाठक एक साथ झटका अनुभव करते हैं। अचानक हीली का चले जाना और बतखों को मार डालना कहानी में समाधान नहीं देते बल्कि कई प्रश्न खड़े कर देते हैं। महज संकेत ही पाठक के सामने अर्थ निर्मिति का अवसर देते हैं। हालाँकि एक तरह से कहानी में उन प्रश्नों का उत्तर लेखक द्वारा दिया जा चुका है। गहरे संकेतात्मक प्रारूप में हीली के भीतर छुपे दाम्पत्य के अधूरे सपने नर लोमड़ी और उसके परिवार के सामने जीवंत हो उठते हैं। यह गहरा मानसिक आघात है ... दोषी होने का, अपराधी होने का। हीली का अपराधबोध उसके व्यक्तित्व में आकस्मिक रूपांतरण लाता है। विजयमोहन सिंह लिखते हैं – 'निसंग तथा शुष्क हीलीबोन जब देखती है कि उसकी बतखों के कारण एक परिवार नष्ट हो गया, एक निरीह मादा लोमड़ी और उसके शिशु शावक अनाथ होकर जिस मार्मिक दृश्य को दरसा रहे थे उसे देखकर हीलीबोन के अंतर्मन में न जाने कब से संचित और पुंजीभूत मातृत्व तथा मानवता का अजस्र स्रोत फूट बनता है तथा उसकी परिणति होती है, उस अमानवीय कृत्य का निमित्त बनी बतखों की हत्याओं, अपने उस तूफानी उन्माद के आवेग में हीलीबोन यह नहीं जान पाती कि निरीह बतखों की हत्या की उतनी ही अमानवीय और अमानुषिक कृत्य है जितना लोमड़ी की हत्या बल्कि उससे कहीं अधिक वह लोमड़ी के परिवार को मुखिया की हत्या की प्रतिक्रिया में 'अपना परिवार' नष्ट कर देती है। यही नहीं, जिस फौजी अधिकारी को उसने 'लोमड़ी' की हत्या के लिए आमंत्रित किया था उसे भी हत्यारा कहकर तिरस्कृत करती है।' [12] दर्शन की एक मुद्रा है द्रष्टा होने की। यहाँ आकर अज्ञेय पाठक को यह मुद्रा प्रदान करते हैं ताकि संकेतकों में मौजूद भावानुभूतियों से उत्पन्न करुणा के प्रवाह को पूरी कहानी में अनुभव किया जा सके।

समाधानहीनता की विशेषता पाठक को अर्थ का निर्माता बनने का विकल्प देती है। कहानी में आरंभिक घटना के बाद लंबा पॉज है, जहाँ हीली का अतीत खुलता है। अज्ञेय अतीत के वर्णन से ही हीली के मनोविज्ञान का संकेत भर नहीं करते बल्कि उसकी पूरी स्थिति साफ कर देते हैं, ताकि कहानी के अंत का झटका इसी वर्णन से जुड़ सके। कहानी का आरम्भ बत्तखों की असुरक्षा के भय से जुड़ा है तो अंत उलट कर बत्तखों की गर्दन मरोड़ने पर आश्रित है। सही अर्थों में कहानी अपनी सार्थकता इसी बायनरी अपोजिशन (विरोधी युग्म) से प्राप्त करती है। हीली जिन बतखों को अपने जीवन का आधार मानती है उन्हें ही मार देती है। शिकार भोजन है, भोजन की प्राप्ति प्राकृतिक नियम है जीवन, दाम्पत्य, पालन, परिवार बहुत कुछ। लोमड़ी के इस प्राकृतिक नियम के मध्य हीली आ जाती है। ठीक वैसे ही जैसे वह खुद अपने स्त्री होने के प्राकृतिक नियम– मातृत्व के सामने कोरे अभिमान के साथ आकर खड़ी हो गयी है। 'हीली का लोमड़ी परिवार से तादात्म्य और फिर अपने आभावों के कसकते–कसकते अनुभव, सभी बतखों को मारकर अकेले हो जाने की तैयारी में क्या है? जीवन की विडंबनाएं ही न।' [13] हीली के भीतर की पी?! जिसे वह स्त्री के रूप में अपनी अनुपयुक्तता, असफलता, अपराधबोध और अधूरेपन में जी रही है, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की माँग करते हैं। यही कारण है कि इस कहानी को सही अर्थों में मनोवैज्ञानिक कहानी कहा गया।

निष्कर्ष :

कहानी के मध्य 'पहाड़ के भी हृदय है, जंगल के भी हृदय है' [14] का संकेत आता है और अंत में हीली भी अपने आक्रोश में अपनी अहंकार की दीवार को तोड़कर अपनी भावुकता परिवार, प्रेम और दांपत्य के प्रति व्यक्त कर देती है। इस तरह कहानी 'जीवन की त्रासदी का बोध' [15] और करुणा का भाव व्यक्त करते हुए भी प्रकृति और सभ्यता की अर्थवत्ता का संकेत कर जाती है। अत: यह रोचक संयोग ही कहा जाएगा कि अज्ञेय की गणना कभी हिंदी के दुर्बोध्य कवियों में होती रही, किन्तु उनके कथा संसार के लिए ऐसा संशय उत्पन्न नहीं हुआ। कारण यह है कि अज्ञेय उस बोध को, उस फील को हीली के माध्यम

से वर्णन प्रदान करते हैं, जो सभ्यता के विकास में हमारे अनुभव का हिस्सा है इसलिए सांकेतिकता की प्रबल प्रस्तुति के बावजूद संप्रेषण की समस्या सामने नहीं आती। लेखक 'हीलीबोन की बतखें' कहानी को पाठक के करीब ले जाकर कोई निश्चित हल या निष्कर्ष न देकर चिंतन–मनन का अवसर देना चाहता है। संकेतकों की योजना को यदि एक पल के लिए छोड़ दें तो हीली की आत्मपीड़ा मुखर नहीं होती, बत्तखों की टूटी गर्दनों में अटक कर व्यंग्य बन जाती है, किन्तु यह व्यंग्य किस पर है? अज्ञेय मौन रह जाते हैं। इस तरह हिंदी कहानी के विकास में कथ्य के साथ जटिल सांकेतिक योजना की प्रवृत्ति धीरे–धीरे सघन होती गई और परवर्ती कहानियों में संकेत को ही कहानी की सार्थकता के रूप में स्वीकृति प्राप्त होने लगी। ❑

1. चौधरी, सुरेन्द्र (2010) हिंदी कहानी – प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–58
2. यादव, राजेंद्र (2000) कथा यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–14
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप (2008) हिंदी गद्य – विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–257
4. सिंह, नामवर (2005) कहानी – नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–24
5. पालीवाल, कृष्णदत्त (संपा.) (2011) दस प्रतिनिधि कहानियाँ – अज्ञेय, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–71
6. वही, पृष्ठ–72
7. वर्मा, अर्चना (2008) अस्मिता–विमर्श का स्त्री स्वर, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ–18
8. पालीवाल, कृष्णदत्त (संपा.) (2011) दस प्रतिनिधि कहानियाँ – अज्ञेय, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–72
9. चौधरी, सुरेन्द्र (2010) हिंदी कहानी – प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–59
10. पालीवाल, कृष्णदत्त (संपा.) (2011) दस प्रतिनिधि कहानियाँ – अज्ञेय, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–74
11. वही, पृष्ठ–75
12. सिंह,विजयमोहन (अज्ञेय की कहानी – हीलीबोन की बतखें), नया ज्ञानोदय, सितम्बर,2008, पृष्ठ–96
13. पालीवाल, कृष्णदत्त (संपा.) (2011) दस प्रतिनिधि कहानियाँ– अज्ञेय, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–16
14. वही, पृष्ठ–70
15. बांदिवडेकर, चन्द्रकान्त म. (1993) कथाकार अज्ञेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़?, पृष्ठ–227

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

रघुवंश काव्य में चित्रित वर्णव्यवस्था

अंबरीश दास

पीएच.डी स्कॉलर, संस्कृत विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
कालापेट, पुडुच्चेरी-605014
मो. 9800194279
ई-मेल : dasambarish1993@gmail.com

शोध-सार :

वर्ण व्यवस्था को हम प्राचीन काल से देखते आ रहे हैं। वर्ण व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति के विशिष्ट कार्यों का वर्णन किया जाता है। समाज उस क्रिया से संचालित होता है। यदि जाति व्यवस्था का ठीक से प्रबंधन नहीं किया गया तो सामाजिक क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाएँगी, जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक व्यक्ति में देखाई देगा। वेद, मनुसंहिता, अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ वर्ण के बारे में बात करते हैं और यहाँ तक कि हम वर्ण व्यवस्था को रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य में भी देखते हैं। यद्यपि कालिदास के काव्य में जाति व्यवस्था इतनी कठोर नहीं थी। मेरे शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य यह है कि कालिदास के काव्य में वर्ण-व्यवस्था का वर्णन कैसे किया गया है?

बीज शब्द : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

प्रस्तावना :

भारत के सामाजिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ण-व्यवस्था के दो भेद होते हैं - एक कर्म के आधार और दूसरा सभी वर्णों के आधार पर। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृञ् वरणे' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'वरण' करना। पाणिनीय परंपरा के अनुसार 'वृ' धातु औणादिक 'भ' प्रत्यय से वर्ण शब्द की उत्पत्ति मानी गई है। वर्ण शब्द के विविध अर्थ प्रचलित हैं। यथा - जाति, भेद, रूप आदि। प्राचीन काल से वर्तमान तक मानव जाति के मन में यह संशय रहा है कि वर्ण की उत्पत्ति कहाँ से हुई? वर्ण-व्यवस्था का उद्भव विकास के लिए किस वस्तु को आधार मानकर यह व्यवस्था की गई है? यह विचारणीय विषय है। महाकवि कालिदास ने रघुवंशकाव्य में जाति व्यवस्था के बारे में बताया है। प्राचीन भारत में वर्णों की उत्पत्ति को चार भागों में विभक्त गया था, उदाहरणस्वरूप - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। वर्णों की उत्पत्ति के बारे में याज्ञवल्क्य विचार है -

सहस्त्रात्मा मया यो व आदिदेव उदाहृतः।
मुखबाहुरूपज्जाः स्युस्तस्य वर्णा यथाक्रमम।।[1]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की उत्पत्ति क्रम से आदिदेव के मुख, बाहु, ऊरु और पैरों से बताई गई है। ऐसा ही उल्लेख मनु ने भी मनुसंहिता में किया है। वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति विषय ऋग्वेद, गीता, महाभारत आदि में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों को विराट पुरुष के चारों अंगों से उत्पन्न माना गया है। विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई, जिसका वर्णन हम पुरुषसूक्त में देख सकते हैं उदाहरणस्वरूप-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहु राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। [2]

इस तरह महाभारत के शांतिपर्व में विराट पुरुष के स्थान पर ब्रह्मा की कल्पना की गई है। इसके साथ यह देखने को मिलता है कि उनके विविध अंगों से वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है। मनु के अनुसार ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिए मुख, बाहु, ऊरु तथा पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सृष्टि का परिकल्पना की है। गीता में कृष्ण ने बताया है कि चारों वर्णों की उत्पत्ति गुण तथा कर्म के आधार पर की गई है, जिसका उदाहरण निम्नांकित दिया गया है -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।। [3]

कालिदास ने आपनी संपूर्ण कृतियों में मनु का अनुसरण करते हुए, समाज के व्यक्तियों को चार वर्णों में विभाजित किया है यथा - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। उनके भूमिका समाज में इस रूप में दर्शाया गया है। यथा- शिक्षक, रक्षक, व्यवसायी तथा सेवक इन चार भागो में विभक्त है। कालिदास ने वर्ण शब्द का उल्लेख अनेक स्थान पर किया है तथा चातुर्विध्य पर भी प्रकाश डाला है। रघुवंश के अठारहवें सर्ग में महाकवि कालिदास ने चार वर्णो की स्थिति को स्वीकार किया है। रघुवंश में उल्लेख है -

पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम्॥ [4]

कालिदास के अनुसार वर्ण एवं धर्म में दोष आ जाने पर उसे दूर करना अत्यंत आवश्यक है, तभी राज्य चल सकता है। रघुवंश में उल्ले है -

राजन्प्रजासु ते कश्चिदप्रचारः प्रवर्तते।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती।। [5]

राजा को वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के लिए सदा तत्पर होना नितांत अपेक्षित है। इसी प्रकार रघुवंश के पंद्रहवें सर्ग में भी वर्णाश्रम शब्द का उल्लेख हुआ है। रघुवंश के प्रारंभ में राजा दिलीप की शासन व्यवस्था के वर्णनक्रम में कालिदास को यह गर्व है कि उसकी प्रजा में कोई भी मनु द्वारा निर्मित वर्णाश्रम व्यवस्था में तनिक भी कर्तव्य से च्युत नहीं होता है। रघुवंश में रघु के वर्णनक्रम में कवि उसे वर्णाश्रम का गुरु मानकर वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति अपना सम्मान प्रकट करता है -

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे॥ [6]

रघुवंश में महाकवि कालिदास ने निर्वासित सीता के द्वारा राम के वर्णाश्रम की रक्षा करना तथा राजाओं का धर्म कर्तव्य पालन में रत का वर्णन भी है।

ब्राह्मण :

ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से मानी गई है। मुख शब्द से मस्तिष्कयुक्त उत्तमाङ्ग है। इससे यह प्रतीत होता है, जिससे सभी अवयव में शरीर प्रधान है वैसे ही सभी वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। कर्म एवं गुण के आधार पर ब्राह्मण की सृष्टि हुई है। मनु ने ज्ञानवान होने के कारण ही ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना है। इसलिए मनुसंहिता में वर्णन किया गया है - 'विप्राणां ज्ञानतो जैष्ठम'। [7] ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मण: अर्थात अर्थ की दृष्टि से ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण है। समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च है। ऋग्वेद पुरुषसूक्त में वर्णन है, विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण का उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी पर सर्वप्रथम ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई, उसके वाद अन्य वर्णों की। वैदिक काल से ब्राह्मण की श्रेष्ठता मानी गई है। मनुसंहिता में इसलिए वर्णन किया है-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ [8]

अर्थात् अध्ययन, अध्यापना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना एवं दान लेना ब्राह्मण के कर्तव्य रहे हं। अर्थशास्त्रे में वर्णित है –

स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्यायनमध्यापनं यजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। [9]

कालिदास की दृष्टि से वर्ण व्यवस्था में सभी को समान रूप से देखा गया है। अपने किसी भी पात्र को वर्ण विशेष में जन्म के कारण कम या अधिक महत्व नहीं देते हैं। कालिदास के अनुसार ब्राह्मण का परम कर्तव्य वेद अध्ययन करना, ब्राह्मण को दान देने की बात कही गई है।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपाचिह्नेषु यज्वनाम्।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्ध्यानुपदमाशिषः॥ [10]

रघु के काल में ब्राह्मण को इतना अधिक दान दिया जाता था कि उस धन से ही वे दक्षिणा देकर अपना यज्ञ संपूर्ण कर सकते थे। इसलिए रघुवंश काव्य में हम देखते हैं–

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावतैषां समाप्येरनयज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः॥ [11]

ब्राह्मण के कर्मों में अध्यापन प्रथम है। अध्यापन का अर्थ विद्यमान है। यह सभी दानों में कठिन तथा श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों के इस ज्ञान से भारत में ज्ञान का प्रसार हुआ। अध्यापन के लिए अध्ययन बहुत जरूरी है। कालिदास के मतानुसार जब कोई राजा किसी राज्य पर विजय प्राप्त करता है। जब राजा अपने राज्य में प्रवेश करता है तो उसका एक ब्राह्मण विधिवत स्वागत भी करता है। और ब्राह्मणों के कुछ कर्मों का सत्त भी उल्लेख है। ब्राह्मण को कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए। ब्राह्मण को सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए। ब्राह्मण को कृषि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लोहे के मुखवाला हल से भूमि तथा भूमि में स्थित जीव मर जाते हैं। व्यापार और वाणिज्य ब्राह्मणों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि व्यापार में झूठ और धोखा रहता है, जो उसके लिए वर्जित है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है यदि कोई ब्राह्मण अक्षम्य अपराध करता है तो उसे मृत्युदंड नहीं दिया जाना चाहिए। उसके मृत्युदंड के स्थान पर शिर मूँड़ना, संपत्तिहरण तथा देशनिर्वासन का दंड देना चाहिए। गीता में देख सकते हैं–

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।
एवं हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥ [12]

क्षत्रिय :

समाज का दूसरा वर्ण क्षत्रिय, जिसका अवदान प्राचीन काल में देखने को मिलते हैं। क्षत्रिय शब्द का अर्थ है रक्षा या शूरता या शौर्य शूरता और रक्षा करना क्षत्रियों का प्रधान धर्म है। याज्ञवलक्य स्मृति में क्षत्रिय की उत्पत्ति आदिदेव की भुजाओं से मानी गई है। भुजा शक्ति साहस का द्योतक है। जैसे भुजा शरीर का रक्षा करती है, वैसे ही समाज रूपी पुरुष की रक्षा क्षत्रिय या राजा करते हैं। प्राचीन काल में क्षत्रिय ही राजा का पद प्राप्त करते थे और वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना उनका परम कर्तव्य था। सृष्टि विराट पुरुष की बाहुओं से हुई है तथा उसकी उत्पत्ति ब्राह्मण से थी बताई गई है। रघुवंशी शासक राजा दिलीप द्वारा सिंह के **'अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्'** [13] कथन के प्रत्युत्तर में कहा गया कि संकट से सभी प्राणियों की रक्षा करना ही क्षत्रिय का प्रधान कर्तव्य है। दिलीप के समक्ष न तो गाय का प्रश्न है और न ही गुरु का कोप, जिसकी ओर सिंह ने उनका ध्यान आकृष्ट किया है। राजा के समक्ष सबसे बड़ा कर्तव्य है स्वधर्मपालन। प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कार्य स्वधर्म का पालन करना है। 'रघुवंश' में राजा द्वारा स्वधर्म के पालन की बात गई है, जिसमें वह कहते हैं कि यदि आप अपने स्वधर्म का पालन नहीं करते हैं तो जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। एक क्षत्रिय का कर्तव्य सभी प्राणियों की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, स्वाध्याय करना, शौर्य, वीर्य, तेज, त्याग, ब्राह्मणों का आदर करना, सरलता आदि होना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ [14]

ब्राह्मणों और राष्ट्र की रक्षा करना क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए। मनुसंहिता में कहा गया है – 'क्षत्रियस्य च रक्षणम्।' कालिदास के रघुवंश काव्य में राजा दिलीप ने प्रजा और इंद्र को मिलाकर राष्ट्र में बारिश लाने के लिए यज्ञ किया था, जिससे खेत में अन्न पैदा हो सकता है। राजा दिलीप एवं देवराज इंद्र दोनों ने एक-दूसरे की सहायता करके स्वर्ग और पृथ्वी पर राजसत्ता

कायम रखी थी। रघुवंश काव्य में देख सकते हैं –

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
संपद्विनिमयनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥ [15]

रघुवंश काव्य में राजा दिलीप क्षत्रिय के मूर्तिमान धर्म थे। रघुवंश काव्य में देख सकते हैं –

व्यढोरस्को वृष्कन्धः शालप्राशंर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ [16]

राजा हमेशा प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करता है। राजा दशरथ, दिलीप, अज, राम, कुश, आदि चरित्रों को आज भी हमने परोपकारी रूप में देखते हैं। कोई भी दरिद्र व्यक्ति राजा दशरथ के पास से खाली हाथ से नहीं लौटता।

वैश्य :

समाज का तीसरा वर्ण वैश्य है, जिसका अवदान समाज के लिए बहत ही महत्वपूर्ण रहा है। वैश्य शब्द का अर्थ 'बसना' है। मनुस्मृति के अनुसार वैश्यों की उत्पत्ति ब्रह्मा के उदर यानी पेट से हुइ है। जबकि कुछ अन्य विचारों के अनुसार ब्रह्मा जी से पैदा होने वाले क्षत्रिय कहलाए। वैश्य रजगुण एवं तमोगुण संपन्न माने जाते थे। वैश्य कृषि एवं व्यापार–वाणिज्य के द्वारा राजा को समृद्ध बनाए रखने में योगदान देते थे। महाभारत में वैश्य के संबंध में यह कह गया है, वैश्य का प्रधान कर्म अध्ययन, दान देना, यज्ञ करना तथा सही तरीके से धन अर्जित करना बताया गया है। मनु के अनुसार पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य एवं कृषि इन सामाजिक कार्यों का अधिकार मूलतः वैश्य को ही प्राप्त है। हम मनुसंहिता में देख सकते हैं –

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ [17]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार पहले अध्ययन, दान देना, कृषि–वाणिज्य और पशुपालन वैश्य का धर्म था। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के समान ही अध्ययन, यज्ञ करना, दान देना आदि। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के जीविकोपार्जन के उपायों को छोड़कर कृषि, पशुपालन एवं व्यापार ही वैश्य की आजीविका के साधन रहे हैं। भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है, इसलिए कृषि के साथ साथ पशुपालन को भी आवश्यक माना गया। वैश्य का कर्तव्य समाज में अन्य वर्ण की सेवा करना है और वैश्य

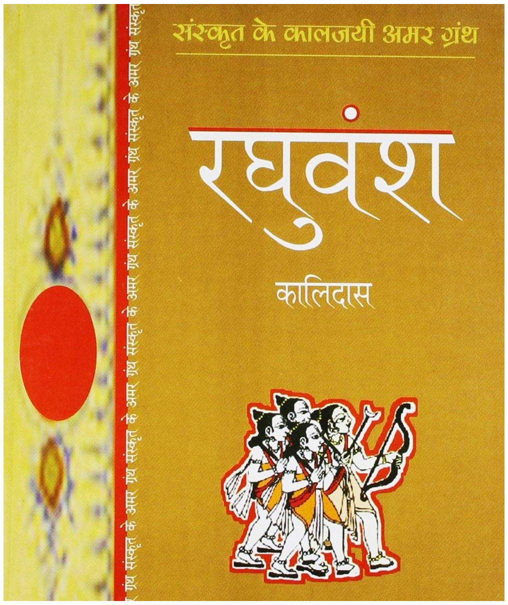

के कुछ निषिद्ध व्यापार हैं, जिन्हें कभी नहीं करना चाहिए। वो हैं – मद्य, मांस, लोहा और चमड़ा जैसी वस्तुएँ वेचना वैश्य के लिए निषिद्ध हैं। कालिदास के रघुवंश काव्य में वैश्य के ये तथ्य देखने को नहीं मिलते हैं। किंतु कालिदास की अन्य कृतियों में वैश्य पात्रों के वर्ण, धर्म का अनवरत पालन करते हुए दृष्टिगत होता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के षष्ठ अंक में नौका दुर्घटना में धनमित्र नामक सार्थवाह की अकालमृत्यु का वृत्तांत मिलता है। राजा दुष्यंत उसके धन संपत्ति को उसके किसी उत्तराधिकारी के मिलने तक बचाए रखने का राज आज्ञा पारित करते हैं।

शूद्र :

शूद्र वर्ण के हिसाब से चतुर्थ श्रेणी में आता है। पुराणों के अनुसार शूद्र शब्द 'शुच्' धातु से संबंधित है। जिसका अर्थ 'सन्तप्त' होना कहा जाता है। शारीरिक श्रम करने में अभ्यस्त थे, जो दीन–हीन थे, उन्हें शूद्र बना दिया गया। धर्मशास्त्र में कहा गया है कि उच्च वर्ण की सेवा शूद्र का धर्म है। पुरुषसूक्त में शूद्र के संबंध में कहा गया है, तीन वर्ण की सेवा के लिए शूद्र की सृष्टि है। मनुसंहिता में भी देख सकते हैं – विराट पुरुष तथा ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न होने के कारण से समाज के सभी

वर्ग का काम करना पड़ता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में शूद्र शब्द का आलेख करते हुए स्पष्ट किया है, जहाँ तपस्या में रत शम्बुक नामक शूद्र का वर्णन मिलता है। जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिए तप और त्याग का जीवन निर्धारित है, क्षत्रिय के लिए पराक्रम का जीवन तथा वैश्य के लिए आर्थिक व्यवस्या उसी प्रकार शूद्र के लिए सेवा धर्म ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। रघुवंश महाकाव्य में इसी विषय में निम्नलिखित वर्णन है –

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम्।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे॥ [19]

निष्कर्ष :

प्राचीन काल से ही ऋग्वेद, याज्ञवल्क्य, मनुसंहिता आदि स्मृतिशास्त्रों में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इस शास्त्रों में जाति भेद को स्वीकार किया गया है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंशकाव्य में जाति का उल्लेख किया है। वह जाति के आधार पर जाति का भेदभाव नहीं करना चाहते थे। उनके अनुसार कर्म के अनुसार वर्ण–व्यवस्था का अनुपालन होना चाहिए। इस शोध–आलेख को लिखते समय मुझे एहसास हुआ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जाति के अनुसार कर्म को विभाजित करने के बजाय, अपने कर्म के अनुसार जाति को विभाजित किया जाना चाहिए। प्राचीन काल में कई ऐसे विद्वान थे, जिन्होंने अपने कर्म के हिसाब से जातियाँ बदलीं। ऋषि विश्वामित्र जाति से क्षत्रिय थे तो अपने कर्मों से ब्राह्मण बने, जिसे सभी कार्य और व्यवहार रूप में अपनाना चाहिए। इससे वर्ण व्यवस्था का सही मूल्यांकन किया जा सकता है और वास्तव में आदर्श समाज गठन में इस मूल्य आधारित वर्ण–व्यवस्था का उपयोग भी हो सकता है। ❑

ग्रंथ सूची :

1. याज्ञवल्क्यस्मृति, संपा. उमेशचन्द्र पाण्डेय, वाराणसी, चौखाम्बा संस्कृत संस्थान, पञ्चम संस्करण 1994
2. दास कालि, रघुवंश, संपा. कपिलदेव गिरि, वाराणसी, चौखाम्बा संस्कृतभवन, प्रथम प्रकाशित 2019
3. दास कालि, अभिज्ञानशकुन्तला, संपा. सत्यनारायण चक्रवर्ती, कोलकाता, संस्कृत पुस्तक भांडार, प्रथम संस्करण 1992
4. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, संपा. यदुपति त्रिपाठी, कोलकाता, वि. एंड पब्लिकेशंस, प्रथम प्रकाशित 2019
5. मनु, मनुसंहिता, संपा. अन्नदाशंकर पाहाड़ी , कोलकाता, संस्कृत बुक डिपो, प्रथम प्रकाशित 2008
6. Vedic upadesh, Commentary Swamiji Maharaj, Madhyapradesh, Shri Pitambara Sanskrit Parishad, vst English Edition 1977
7. आप्ते वामन शिवराम, संस्कृत–हिन्दी–कोश, दिल्ली, नाग पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण 1987

संदर्भ सूची :

1. याज्ञवलक्य – 3.126
2. पुरुषसूक्त – 10.90.12
3. गीता – 4.13
4. रघुवंश – 18.12
5. रघुवंश – 15.47
6. रघुवंश – 5.19
7. मनुसंहिता – 2.155
8. मनुसंहिता – 1.88
9. अर्थशास्त्र – 1.3
10. रघुवंश – 1.44
11. रघुवंश – रघुवंश – 17.17
12. श्रीमद्भागद् महापुराण – 1.7.57
13. रघुवंश – 2.47
14. गीता – 18.43
15. रघुवंश – 1.26
16. रघुवंश – 1.13
17. मनुस्मृति – 1.90
18. अभिज्ञानशकुन्तला – 6.23
19. रघुवंश – 15.51

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

सरोकार

लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में मीडिया और बाजारवाद

मनोज मल्लाह

शोधार्थी, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर
नपाम (असम)-784028
मो. 9547096955

डॉ. अनुशब्द

शोध-निर्देशक
वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर
नपाम (असम)-784028
मो. 8876049200
ई-मेल : anushabda@gmail.com

शोध-सार :

सनातन समय से ही मानव जीवन में मीडिया और उसके विभिन्न माध्यमों की किसी-न-किसी रूप में उपस्थिति रही है। कभी देवर्षि नारद के रूप में, कभी महाभारत के संजय के रूप में, कभी संदेशवाहक कबूतरों के रूप में तो कभी दूत-दूती या गुप्तचरों के रूप में। वर्तमान समय में मीडिया की मौजूदगी कुछ अलग रूपों में है। आज मीडिया मानव जीवन की उन तमाम पहलुओं से जुड़ गया है, जो मनुष्य के मनोरंजन का साधन है। यह टेलीवीजन, अखबार, सोशल मीडिया, सिनेमा इत्यादि कई माध्यमों के रूप में हमारे समक्ष है।

बीज शब्द :

मीडिया, बाजारबाद, भूमंडलीकरण, विज्ञापन, परंपरा, संस्कृति, मानव-मूल्य आदि।

विश्लेषण :

मीडिया मानव की दिनचर्या का अहम हिस्सा बन चुका है। सुबह उठने के साथ अखबार पढ़ने से लेकर रात को सोने से पहले टेलीवीजन, मोबाइल या अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर होने वाली गतिविधियों तक, वह मानव के दैनंदिन क्रियाकलाप का अभिन्न अंग बन चुका है। यह देश-दुनिया की तमाम चीजों की जानकारी यथा - व्यवसाय से लेकर फैशन तक, विज्ञान से लेकर अध्यात्म तक आदि की खबरों से अवगत कराता है। आज हम मीडिया द्वारा परोसे गए तथ्यों को ही सत्य मानकर चलते हैं। यह शिक्षा, संस्कृति का भी प्रमुख माध्यम बना हुआ है। वर्तमान समय में किसी भी देश की संस्कृति, उसकी परंपरा से हम घर बैठे भलीभाँति परिचित हो सकते हैं और यह सिर्फ मीडिया के माध्यम से ही संभव हो पाया है। यह मानव समाज में इस तरह लोकप्रिय हो चुका है कि किसी भी विषय को मिथ्या या सत्य साबित कर

सकता है तथा एक देश में बैठे ताकतवर इंसान को भी धराशायी कर सकता है। इन्हीं वजहों से इसे लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। मीडिया आज के युग में किसी हथियार या विस्फोटक से कम नहीं है। नामवर सिंह मीडिया को परमाणु बम से भी भयानक रूप में देखते हैं। वे लिखते हैं – **''20वीं सदी के अंत और इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ का संचार विस्फोट परमाणु से कहीं ज्यादा भयानक और खतरनाक विस्फोट है। यह क्रांति नहीं विस्फोट है, बम की तरह। और, यह विस्फोट जहाँ अखबार में काम करने वाला आदमी प्रिंट मीडिया में संवाददाता कहलाता है।''** [1]

समकालीन दौर में जहाँ हर तरफ सूचना एवं संचार की क्रांति है तथा विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक गतिविधियाँ देखने को मिलती हैं, वहीं कई चीजों का विकास भी तेजी से देखने को मिलता है। इसमें प्रमुख रूप से मीडिया तथा औद्योगीकरण के विकास को देखा जा सकता है। 1980 के आसपास भारत में आर्थिक संकट का खतरा मँडराने लगता है, जिसका परिणाम 1990 के बाद भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण के रूप में सामने आता है। इस औद्योगीकरण की वजह से बाजारीकरण का प्रभाव भी बड़े पैमाने पर देखने को मिलता है, जिसका पहला तथा मूल शिकार मीडिया बनता है। विज्ञापनों के माध्यम से बाजार को बढ़ावा देने हेतु इसका विस्तार बढ़-चढ़ कर देखने को मिलता है।

विज्ञापन का मूल उद्देश्य एक वृहद जनसमुदाय को किसी भी चीज की जानकारी प्रदान करना है, किंतु आज यह अपने विस्तृत रूप में अनेक उद्देश्यों के साथ अपना काम करता है। मसलन – व्यक्ति को ग्राहक के रूप में किस तरह बदला जाय, ग्राहक को किस तरह आकर्षित किया जाय, विभिन्न उत्पादों की बिक्री को बाजार में किस तरह बढ़ाया जाय, ज्यादा से ज्यादा ग्राहक किस तरह आकर्षित हो सकें, अपने सामान को शीघ्रता से तथा ज्यादा से ज्यादा मात्रा में बेचकर किस तरह लाभ अर्जित किया जाय तथा दूसरे व्यापारियों तथा उनके उत्पादों से किस प्रकार प्रतिस्पर्द्धा की जाय आदि विज्ञापन के मूलभूत लक्ष्य बन गए हैं। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विज्ञापन किसी भी सीमा को लाँघने में लगा रहता है। यह मुख्यत: बाजारीकरण की शाखा के तौर पर कार्य करता है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इससे दिक्कत ही क्या है? बाजारीकरण के दौर में बाजार का विस्तार करने हेतु, लाभ या धन अर्जन करने हेतु विज्ञापनों का सहारा लिया जाता है। विज्ञापन यदि किसी भी वस्तु की जानकारी देने हेतु प्रयुक्त होता है तो वह तब तक बुरा सिद्ध नहीं होता, किंतु वह अपने ही सामान का बढ़-चढ़ कर प्रचार करने हेतु किसी मनुष्य को मनुष्य न समझकर बलि का बकरा समझने लगे तो वह बुरा साबित होता है। यह किसी भी मानव को महज एक ग्राहक के रूप देखना तथा समाज की विभिन्न संस्कृतियों, परंपराओं एवं मानवता का ह्रास करना है। आज विज्ञापन मनुष्य को मनुष्य न समझकर उसे अपने बाजारवादी खेल का प्यादा मानता है। विज्ञापनों की इसी प्रवृत्ति की बात शकेब जलाली अपनी कविता की चंद पंक्तियों के माध्यम से करते हैं। शकेब जलाली ने फलों से ज्यादा छिलकों के महत्व को यहाँ वैश्विकरण के संदर्भ में दिखाया है –

''मलबूस (कपड़े) खुशनुमा है मगर खोखले जिस्म
छिलके सजें हो जैसे फलों की दुकान पर'' [2]

वास्तव में आज यही मीडिया और विज्ञापन का मूल उद्देश्य है। व्यक्ति और समाज का हित नहीं बल्कि व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि ही इनका एकमात्र लक्ष्य है। कह सकते हैं कि इस पूँजीवादी बाजार में मीडिया और विज्ञापन इस मायने में एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते जा रहे हैं।

साहित्य आज के समय में भी मीडिया और बाजारवाद के विज्ञापनों से बिल्कुल भिन्न खड़ा है। वह आज भी उन्हीं मानदंडों पर खड़ा है, जो मानव मन में पशुता का अंत कर संवेदनाओं को जागृत करता है। साहित्य तकनीक, विज्ञान, भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव के दौर में भी मनुष्यता रूपी बीज को अपने अंदर समाए हुए है। मीडिया और साहित्य समकालीन समय में भिन्न-भिन्न रास्तों पर भले ही चले गए हैं, किंतु आज

भी इनके बीच के अंत:संबंधों को देखा जा सकता है। मीडिया पर बाजारीकरण, भूमंडलीकरण का प्रभाव जिस तरह से पड़ा है, वह कहीं-ना-कहीं मानव समाज के प्रतिकूल होता जा रहा है। साहित्य केवल समाज की चुनिंदा समस्याओं को लेकर ही नहीं चलता, अपितु समाज में हो रही उन तमाम गतिविधियों पर भी नजर रखता है, जो मानव समाज में मानवता, संस्कृति, परंपरा आदि का विनाश करती हैं अथवा उसे अमानवीयता की ओर ले जा रही हैं।

लीलाधर जगूड़ी समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। इनका जन्म टिहरी, गढ़वाल जिले में 1 जुलाई 1944 को हुआ था। आजीविका के लिए इन्हें बचपन में ही घर छोड़ना पड़ा। वे देश की सेवा बंदूक और कलम की नोंक पर करते रहे हैं। अज्ञेय के समान इन्होंने भी कविता में भाषा, उपमान, प्रतीक और बिंब आदि को लेकर नए-नए प्रयोग किए हैं। इनकी कविताओं की भाषा इनके जीवनानुभवों की भाषा है, जो कविता को सौंदर्य प्रदान करती है। एक तरफ जहाँ वह अपनी रचनाधार्मिता में छायावाद के कुछ बिंदुओं से जुड़ते हैं तो वहीं दूसरी तरफ प्रगतिशील मूल्यों को अपनी रचना में आत्मसात किए हुए हैं। इनकी रचनाओं की व्यापक फलक को देखकर लगता है कि इनमें महाकवि होने का सामर्थ्य मौजूद है। इनकी सृजनात्मकता पद्य और गद्य दोनों में देखने को मिलती है। इनके कविता-संग्रह हैं - 'शांखमुखी शिखरों पर' (1964), 'नाटक जारी है' (1972), 'इस यात्रा में' (1974), 'रात अब भी मौजूद है' (1976), 'बची हुई पृथ्वी' (1977), 'घबराए हुए शब्द' (1981), 'भय भी शक्ति देता है' (1991), 'अनुभव के आकाश में चाँद' (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1994), 'महाकाव्य के बिना' (1995), 'ईश्वर की अध्यक्षता में' (1999), 'जितने लोग उतने प्रेम' (व्यास सम्मान, 2013) और 'खबर का मुँह विज्ञापन से ढका है' (2014)। इनका एक नाटक 'पाँच बेटे' और एक निबंध-संग्रह 'रचना-प्रक्रिया से जूझते हुए' अभी तक प्रकाशित है। भारत सरकार ने इन्हें पद्मश्री सम्मान से भी सम्मानित किया है।

जिन लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी जा रही थी, उसका विघटन स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। 1960 के आसपास इन मूल्यों का विघटन और भी तेजी से प्रारंभ हो जाता है, जो भारतीय राजनीतिक, आर्थिक गतिविधियों में व्यापक रूप से देखने को मिलता है। इन विघटित मूल्यों का स्वर- 'बची हुई पृथ्वी', 'घबराए हुए शब्द' और 'रात अब भी मौजूद है' आदि कविता संग्रहों में साफ तौर पर सुना जा सकता है।

एक बड़े कवि की पहचान उसकी प्रज्ञा से होती है, जो सामाजिक बदलाव को समय से पहले महसूस करने लगता है। भूमंडलीकरण का जो समय है, उसे जगूड़ी जी ने पहले ही पहचान लिया था। इनके कविता-संग्रह 'भय भी शक्ति देता है' में इस दूरदृष्टि को स्पष्ट ही देखा जा सकता है। भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व को एक गाँव में तब्दील कर दिया, जिसके कारण विज्ञापन और बाजार का संबंध दिन-प्रतिदिन गाढ़ा होता जा रहा है। विज्ञापन के केंद्र में अब सामाजिक मुद्दा नहीं है अर्थात सत्य का मुख अब विज्ञापन से बंद है। दरअसल विज्ञापन के केंद्र में आमजन की भावनाएँ आ गई हैं, जिनसे नए-नए रूपों में सत्ता और पूँजीपति संचालित मीडिया प्रतिदिन खिलवाड़ करता है। इसे हम 'खबर का मुँह विज्ञापन से ढका है' में देख सकते हैं।

आधुनिकता और नवाचार ने लोगों का जीवन सरल और सुलभ कर दिया है। लोग अपने जीवन को आरामदेह और सुंदर बनाने के लिए बैंक से कर्ज लेते हैं। कर्ज लेना पहले की तरह अब भारी बोझ के समान नहीं

है, अब वह सरल हो गया है। लोग कर्ज के सहारे ही तरक्की कर रहें हैं अर्थात विश्व में कर्ज अब विकास का पर्याय हो गया है। 'कर्ज के बाद नींद' कविता इसी बात की तस्दीक करती है। लीलाधर जगूड़ी अपनी कविताओं के माध्यम से मीडिया तथा बाजारवाद के अंत:संबंधों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं तथा इस बात से अवगत कराते हैं कि किस तरह से यह घालमेल मानवता के खिलाफ काम कर रहा है। सिर्फ इतना ही नहीं, मीडिया की लोकप्रियता को देखते हुए लीलाधर जगूड़ी ने कविता में इसकी भाषा को भी माध्यम बनाया है और जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

इसी दृष्टि से कवि लीलाधर जगूड़ी की उन मीडियापरक कविताओं को देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी कविता 'ख़बरें' में बताया है कि मीडिया किस तरह से खबरों को प्रस्तुत करती है। एक ख़बर जिसे प्रत्येक व्यक्ति सुनने को इच्छुक होता है, वही ख़बरों की वरीयता का निर्णय करती है कि लोग इसे सुनें और अपनी संवेदनाओं को महसूस करें। वे लिखते हैं–

''रोज खबरें आती हैं
लांछित और लज्जित होने की खबरें
उनकी कोई खबर नहीं आती
जिनमें लज्जा की भनक हो

* * *

विपदाग्रस्त पीड़ित या मृत व्यक्ति की
असफलता दिखाई जाती है मौत में भी
घबराना खबर है। शर्म कोई खबर नहीं।''[3]

जगूड़ी जी मीडिया को पृष्ठभूमि में रखकर कई बातों को उकेरने की कोशिश करते हैं। एक तरफ जहाँ मीडिया के ऊपर व्यंग्य के माध्यम से बताते हैं कि किस तरह से मीडिया आम लोगों की पीड़ा, उनके दुख–दर्द, लाचारी में की गई उनकी आत्महत्या इत्यादि को नजरअंदाज करके केवल उन्हीं चीजों को दिखाने में लग जाता है, जिसमें न तो समाज का और न ही समाज के लोगों का कोई हित समाहित होता है। राजनीति के चोंचले हों या पूँजीपतियों के ठहाके, हर उस गैर–जरूरी बात (लज्जित, लांछित जो इनके लिए वाहवाही) को पूरी गंभीरता और प्राथमिकता के साथ उभारा और दिखाया जाता है। साथ ही निंदनीय कार्यों को भी बहुत ही उत्तम तरीके से प्रस्तुत किया जाता है, किंतु वे लोग जो दयनीय स्थिति में हैं, जो लाचार हैं, मजबूर हैं उन्हें किसी घबराहट, किसी कायरता, किसी कुंठा का नाम देकर दिखा दिया जाता है। आम जनता का इनके लिए कोई मोल नहीं रहता है। ध्यातव्य है कि कवि ने मीडिया की करतूतों को दिखाना ही मूल उद्देश्य नहीं माना है बल्कि इसके माध्यम से वे उन तमाम घटनाओं को दर्शाते हैं, जो मानव जीवन में अति निंदनीय और दुखदायक सिद्ध होते हैं। मीडिया को आधार बनाना इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह जो आज पल–पल में लोगों के पास पहुँचने का जरिया बनता है वह उनमें थोड़ी चेतना भरे तथा उसे हृदयगामी बनाए।

कवि ने दूसरी ओर मीडिया के उस रूप को भी प्रस्तुत किया है, जिसका प्रभाव देश और समाज में मुख्य रूप से उभर कर सामने आया है। यह प्रभाव है बाजारवाद का। बाजारवाद की दुनिया में विज्ञापन का बहुत महत्व है, जिसे आज खबरों के माध्यम से देखा जाता है। जगूड़ी जीअपनी कविता 'ख़बर का मुँह विज्ञापन से ढका है' में विज्ञापन की दुनिया सेअवगत कराते हैं –

''विश्वचिंता के बीच में पेचिश से परास्त लोगों की खबरें आतीहैं। उसके बाद पेटेंट की हुई दवाओं के उछाले की खबरें, उसके बाद वीभत्स से नरबलियों की। उसके बाद फैशन शो और उसके बाद सारे रंगों को धो–पोंछकर रिनों और पाउडर टिनों का विज्ञापन कितने धवल कमल खिलेंगे इस कीच में।''[4]

कवि लीलाधर जगूड़ी कविता में मीडिया तथा विज्ञापन के अंत:संबंध को बतलाते हैं। वे कहते हैं कि विश्व में मौजूद कई मानवीय समस्याओं तथा चिंताओं इत्यादि से इतर विज्ञापनों की एक अलग ही दुनिया मीडिया के माध्यम से चलती है। कवि यहाँ अत्यंत ही मार्मिक वर्णन करते हैं कि एक तरफ बीमारी से बचने की दवाइयों का विज्ञापन खबरों में दिखता है तो दूसरी तरफ उन्हीं बीमारियों से मरे लोगों के शव दिखते हैं। इसके बावजूद भी तरह–तरह के विज्ञापनों का होड़ शुरू हो जाता है। इसे आज कोरोना के संदर्भ में भी देखाजा सकता है कि किस तरह कई टीकों के

बावजूद दुनिया में लोगों की मृत्यु हो रही थी और अभी भी कमोबेश जारी है।

वहीं मीडिया और बाजार के संबंधों को दर्शाते हुए 'ख़बर का जन्म' कविता में जगूड़ी जी अनचाही खबरों की प्रस्तुति को दिखाते हैं कि किस तरह से एक खबर जो खबर नहीं है, उसे खबर का रूप दे दिया जाता है। कविता कुछ इस प्रकार है –

चौबीस वर्ष के विश्वेश्वर प्रसाद ने चौंका दिया कि यहाँ के अखबार में यह एक दिन पुरानी खबर छपी है लगा कि मेरा सारा ज्ञान एक दिन पुरानी खबरों पर आधारित है।

* * *

और फिर किसी कल को पता चले कि यह आदमी सिर्फ एक मशीन है जो पहले जापानी बनकर कहीं रह चुका है और अब एक अमेरिकन बनकर पुरानी किस्म का हिंदू बनने यहाँ आया है मगर उसे खुद पता नहीं कि किस जाति का हिंदू ? तब जो खबर बनेगी और फैलाई जाएगी उस समय का मीडिया उनसे करेगा लोगों का शिकार।'' [5]

खबर का प्रभाव लोगों पर कुछ इस कदर पड़ता है कि लोगों को यह तक भनक नहीं पड़ती है कि यह खबर नहीं बल्कि उसके आसपास चल रहा दृश्य है तथा जानी हुई बातें हैं। कवि ने यहाँ यह रेखांकित किया है कि बाजारवाद का प्रभाव मीडिया पर किस तरह से पड़ता है और किस तरह से बाजारू मीडिया मनुष्य की भावनाओं को प्रभावित कर उसे विवेकहीन बना देता है। ऐसे में लोगों को दूसरी चीजें दिखाई न देकर सिर्फ वही चीजें दिखाई देती हैं, जो विज्ञापन उन्हें दिखाता है। मीडिया किस तरह से उन सभी चीजों को खबर का रूप दे देता है, जिससे लोगों को यह ज्ञात ही नहीं होता कि वह कोई खबर नहीं बल्कि जीती जागती बातें हैं। कवि यहाँ व्यंग्य भी करते हैं कि कवि जैसे अज्ञानी बन चुका है, उसका सब ज्ञान उन लोगों तथा दिखायी गयी खबरों का गुलाम बन चुका है। पूँजीवादी समाज का भी जिक्र करते हैं, जिसने आदमी को मशीन बना दिया है तथा उनकी अस्मिता पर भी सवाल उठाते हैं कि आखिर किस मानवता तथा समाज के लिए तुम खड़े हो। यह सिर्फ लोगों को शिकार के रूप में देखता है, जिससे उसका स्वार्थ सध सके। 'ख़बर का जन्म' कविता ना केवल खबर की ही उत्पत्ति है बल्कि वह मशीनीकरण, गुलाम बनाने, भावनाओं को चोट पहुँचाने, विवेकहीन बनाने की अहम अभिव्यक्ति है।

कवि बाजारवाद को लेकर अत्यंत गंभीर रूप में दिखाई देते हैं। बाजारवाद ने न केवल मानव की भावना बल्कि उसकी दिनचर्या पर भी गहरा असर डाला है। 'खिलौने' कविता इसी दिनचर्या को दर्शाती है, जिसका सबसे बड़ा शिकार परिवार बनता है। कवि कुछ इस प्रकार लिखते हैं –

''बच्चे आए खिलौनों के पास
जैसे मां-बाप आते हैं
बच्चों के पास
किसी को प्यार से घूरा
किसी को गुस्से से सीधा किया
किसी को दे मारा
किसी को प्यार से पुचकारा
किसी को रास्ते पर पटक दिया
मां बाप आए हैं और बच्चों को डाँटने लगे
ऐसे फेंके जाते हैं खिलौने ?'' [6]

बाजारवाद से ग्रसित लोग इसके प्रभाव से अपने ही घरों में बिखरे पड़े हैं। वह घर जहाँ लोग परस्पर एक-दूसरे से बँधे रहते हैं, संवेदनाओं से घिरे रहते हैं, लेकिन भागदौड़ भरी जिंदगी के कारण वे अपनी ही संतान, अपने ही घर के सदस्यों से दूर हो जाते हैं। खिलौनों की भाँति उनका आचरण हो जाता है। कवि इस बाजारीकरण के युग में उन माता-पिताओं की बात करते हैं, जो इस औद्योगीकरण के माहौल में खपकर अपनी ही संतान को भूल बैठे हैं। उन्हें उन खिलौने की भाँति देखते हैं, जिस तरह से बच्चे अपने खिलौने को देखा करते हैं। जगूड़ी जी कविता के माध्यम से अत्यंत मार्मिक बातें रखते हैं। एक माँ-बाप जिसकी अगर सबसे ज्यादा संवेदना जुड़ी होती है तो वह है उसकी संतान, किंतु उनके दिलो-दिमाग में इस बाजार के भागदौड़ भरे जीवन का प्रभाव इस तरह पड़ा है कि वह जो उसकी अनुभूतियों का अहम हिस्सा है उसे एक वस्तु

की भाँति देखने लगते हैं। यह बाजारवाद का ही दुष्प्रभाव है कि लोग घर-परिवार में एक-दूसरे से कटते जा रहे हैं। समाज के अन्यलोगों के साथ संबंध के बारे में तो क्या ही बात की जाए। आज के समाज में सबसे बड़ा खतरा है लोगों की संवेदनाओं का मर जाना।

जगूड़ी जी उन स्त्रियों पर भी तंज कसते हैं, जिन्होंने अपने स्त्रीत्व को उन सभी विज्ञापनों को सौंप दिया है, जो उन्हें एक उत्पाद, एक आर्थिक वस्तु एवं खिलौनों की तरह सजाकर प्रस्तुत करते हैं। यह नारीवाद की विडंबना ही है कि आधुनिक दौर में वह अपने को बाजारवाद से प्रभावित आधुनिकता की ओर धकेलती जा रही है। आज एक तरफ जहाँ हम नारी के उत्थान को पाते हैं, वहीं दूसरी तरफ उनके कुछ असहज कार्यों पर भी नाहक हमारा ध्यान आकर्षित होता है। कविता 'विज्ञापन सुंदरी' में कवि इसी नारी समाज की ओर इशारा करते हैं-

''विज्ञापन सुंदरी द्वारा प्रस्तुत करने योग्य जीवन में कितने अनुपयोगी और कितने अदर्शनीय हैं हम हमारे अप्रस्तुत जीवन में हर वक्त प्रस्तुत हैं गोबर थापती, उपले थापती गरीब गबरु औरतें उत्पीड़ित कमाऊ बच्चों की अस्थायी नींद और स्थायी बीमारियां जो सफल और सभ्य समाज में साबुन, पाउडर, क्रीम और हिंसक खिलौनों में बदल जाती हैं जिन्हें पुरानी स्त्री के मैल से पैदा नयी स्त्रियां बेचती हैं क्योंकि नई स्त्रियां ही आर्थिक स्त्रियां मान ली गई हैं इनका विवेक प्रायोजित विवेक है'' [7]

नारी चेतना नए समाज का निर्माण करती है। जिस नारी शक्ति की उपेक्षा पुरुष समाज करता आया है, आज यही कार्य एक दूसरे माध्यम से बाजार कर रहा है। यह महिलाओं की मानसिकता के साथ खेलकर उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है तथा उसे निष्क्रिय बना रहा है। जो गबरु औरतें गोबर पाथती थीं, उपले थापती थीं, बच्चों की अस्थायी नींद, स्थायी बीमारियों के साथ जिनका जीवन चलता था, वह इन सभ्य और सफल समाज की आड़ में अपने को भी वही सिद्ध करने में लगी हुई हैं। बाजार के जिन साबुनों, पाउडरों, क्रीमों की शिकार स्त्रियाँ हुई हैं, पुरुष भी उनसे बच नहीं पाए हैं। इस तरह से नारी अपने पुराने रूप से निकलकर पुन: उसी रूप की ओर एक नये रूप में सामने आी है, परंतु यह केवल एक छलावा ही है, क्योंकि आज वह खुद को एक आर्थिक वस्तु की तरह मान बैठी है।

इसका प्रभाव भूत से लेकर वर्तमान तक के सभी पहलुओं पर पड़ता है। यह जितना विज्ञान तथा आधुनिक जीवन के लिए फायदेमंद सिद्ध हुआ है, उससे कहीं अधिक मानव के लिए विनाशकारी साबित हुआ है। 21वीं सदी मुख्य रूप से इसकी चपेट में आई हुई है। वर्तमान समय में हम इतने विकसित हो चुके हैं कि हम अपनी अस्मिता पर ही प्रश्न चिह्न खड़ा करते जा रहे हैं। जिस पूर्वज, जिस लोक से हमारा अस्तित्व जुड़ा हुआ है उन्हें पीछे कहीं धकेल दिया गया है। लोक जीवन से लोक गीत भी शनै:-शनै: विस्मृत और विलुप्त होते जा रहे हैं। 'लोकगीत' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं -

''जितना पीछे देखता हूं उतना पीछे
दिखाई देता है भविष्य
पर लोकगीत को बचाए रखने का तरीका नहीं है
पुरानी दुनिया का ढर्रा बचाए रखना
नई दुनिया में यदि जरूरत है पुरानी दुनिया के सिर्फ
लोकगीतों की
रंग के संकेत से बनी हुई गंध की रेखाएँ नाच का
आख्यान लेकर
लोकजीवन की आवाज लाती है शब्दलोक में
इसी भाषा की खोज में शुरू हुई थी दीवारों पर
गूंजती हुई उकेरन।'' [8]

भूमंडलीकरण तथा बाजारीकरण की यह नई दुनिया इस कदर आगे बढ़ी है कि हमारी पुरानी पीढ़ी, संस्कृति तथा परंपरा को कहीं दूर पीछे छोड़ आई है। यह नई सभ्यता, मानवीय भावना से अलग हटकर इसकी उपेक्षा करती है। कवि 'लोकगीत' कविता के माध्यम से वर्षों से चली आ रही संस्कृति, जो मानव जीवन की पहचान है, जो भारतीय जीवन में लोगों को मर्यादित बनाती है; पर ही प्रश्न खड़ा करते हैं और यह बताते हैं कि उस परंपरा और संस्कृति को बचाए रखने का कोई मार्ग किसी के पास नहीं रह गया है। बुढ़ापे की तरह यह अंतिम समय में स्वयं से जूझ रहा है। आज जिस

भाषा को हम अपनी पहचान बनाए घूमते हैं, उसी के अस्तित्व को हम नष्ट कर रहे हैं। इसलिए विनय विश्वास लिखते हैं – **''यह नया मनुष्य पहले से ज्यादा सफल है, इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन यह पहले से ज्यादा मनुष्य है, पहले से ज्यादा सुंदर है, इसमें संदेह ही संदेह है।''**[9]

निष्कर्ष :

लीलाधर जगूड़ी आज के समय के प्रखर कवि हैं। उन्होंने साठ के दशक तथा भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव का अनुभव किया है और उसे अपनी कविताओं में पिरोकर पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। कवि ने 21वीं सदी के युग की विडंबनाओं का भी प्रत्यक्ष अनुभव किया है। आजादी के बाद भारत में होने वाले परिवर्तनों ने भिन्न-भिन्न साहित्यिक रूपों को जन्म दिया है। वर्तमान समय में जिस मीडिया तथा बाजारवाद का बोलबाला है, उससे कोई भी अछूता नहीं है। इसने न केवल मानवीय पक्ष को ही नुकसान पहुँचाया है बल्कि वर्षों से चली आ रही संस्कृति और परंपरा का भी विनाश किया है। आज हमारे समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न हमारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर है। इंसान और इंसानियत को लेकर है। साहित्य में जहाँ एक ओर कई विमर्शों का दौर शुरू हुआ है, वहीं यह भी एक अहम मुद्दा बन गया है कि मानव और मानव-मूल्यों की रक्षा किस तरह से की जाय। वास्तव में लीलाधर जगूड़ी की कविताएँ इन प्रश्नों से लगातार टकराती हैं और पूरी ईमानदारी से उन पर बहस करती हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. मीडिया और साहित्य अंत:संबंध, (सं) रतन कुमार पाण्डेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 17
2. पानियों पे नाम, शकेब जलाली, चयन एवं लिप्यंतर – मंजूर एहतेशाम, लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन प्रकाशक, दिल्ली, 2006, पृ. 71
3. अनुभव के आकाश में चांद, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चौथा संस्करण, 2017, पृ. 23
4. ख़बर का मुँह विज्ञापन से ढका है, लीलाधर जगूड़ी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति, 2016, पृ. 105
5. वही, पृ. 20
6. भय भी शक्ति देता है, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2017, पृ. 102
7. ईश्वर की अध्यक्षता में, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण,1999, पृ. 20
8. भय भी शक्ति देता है, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2017, पृ. 116
9. आज की कविता, विनय विश्वास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2019, पृ. 40

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

कुँवर नारायण की कविताओं में पारिस्थितिकी-बोध

मनीष कुमार

शोध सार :

कुँवर नारायण वस्तुत: नयी कविता आंदोलन के प्रमुख कवि हैं और कवि की कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ मिथक, इतिहास, प्रेम और प्रकृति है, लेकिन जब हम कवि की कविताओं का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि कवि न केवल देश की अन्य समकालीन परिस्थिति के साथ पारिस्थितिकी समस्याएँ की ओर झांकते हैं बल्कि उस पारिस्थितिकी समस्याओं को समाज के सामने लाकर उजाकर भी करते हैं। हालाँकि मनुष्य जाति के लिए पारिस्थितिकी समस्याएँ कोई नई समस्याएँ नहीं हैं बल्कि यह आदिम काल से ही मनुष्य की उपभोगितावादी संस्कृति के साथ साथ चलती चली आ रही हैं। परिणामस्वरूप वैश्वीकरण की इस दौर में पारिस्थितिकी समस्याएँ मनुष्य जाति के लिये सबसे बड़ी समस्या बनकर खड़ी हैं। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि लोगों ने आर्थिक उद्देश्य और विलासिता की पूर्ति के लिए पर्यावरण के साथ बहुत छेड़छाड़ किया है, जिसके कारण मौजूदा समय में हमारा पर्यावरण भयंकर संकट का सामना कर रहा है। कुँवर नारायण की कुछ कविताओं में पारिस्थितिकी चिंतन का स्वरूप वही है, जो उपभोगितावादी संस्कृति के साथ आयी है तथा समकालीन समय और परिवेश की स्थिति पर मौजूद है।

बीज शब्द :

प्रकृति, प्रकृतिवाद, पर्यावरण, पारिस्थितिकी बोध, संवेदना, उपभोगितावादी संस्कृति इत्यादि।

शोध छात्र, हिंदी विभाग
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी (बिहार)-845401
मो. 6206421764
ई-मेल : manish1992.mgahv@gmail.com

विश्लेषण :

प्रसिद्ध इतिहासकार इरफान हबीब 'मनुष्य और पर्यावरण, भारत का पारिस्थितिकी इतिहास' ग्रंथ में लिखते हैं, 'पारिस्थितिकी वस्तुत: पर्यावरण के साथ हमारे संबंधों के अध्ययन का विज्ञान है। प्राय: हम जिसे प्रकृति कहते हैं, वह पर्यावरण ही है, जो समूचे जीवित पदार्थों (मनुष्य जाति को छोड़कर) और भौतिक परिवेश को घेरे रहता है।

बहुत पहले लगभग 20 लाख वर्ष की अवधि के दौरान अफ्रीका में जब हमारे पूर्वजों का मानव–जाति के रूप में उदय हुआ और वे पूरे यूरेशिया में फैल गए, तब प्रकृति मनुष्यों की गतिविधियों से अप्रभावित थी। अक्षत प्रकृति ही सर्वोच्च थी। यह सिलसिला हमारी प्रजाति, होमो सैपियन्स, जिसका शारीरिक संरचना की दृष्टि से आधुनिक मानव के रूप में दक्षिण अफ्रीका में उदय हुआ, निर्बाध चलता रहा। यह प्रगति गत 1,50,000 वर्षों में दुनियाभर में फैल गई, लेकिन जैसे ही नव प्रस्तर क्रांति का आरंभ हुआ। मनुष्य ने खेती–बारी करना और जानवरों को पालना शुरू कर दिया। उन्होंने अनजाने ही कदम–ब–कदम उस प्राकृतिक पर्यावरण को कई तरह से बदलना शुरू कर दिया, जिसमें वे रह रहे थे। उसके बाद उद्योगों के उदय और जीवाश्म–जनित ईंधन और घातक हथियारों (गन–पाउडर से नाभिकीय अस्त्रों तक) का आधुनिक युग प्रारंभ हुआ। परिणामस्वरूप मनुष्य भौतिक पर्यावरण के स्वरूप के लिए एक गंभीर संकट के रूप में सामने आया है। आज अपने ही हित में वह उस सबको नकारने के लिए विवश है, जिसे उसने प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करके, वनों और वन्य–जीवों को नष्ट करके तथा वायु और जल को प्रदूषित करके अपने हित में प्रकृति के साथ किया था।'[1]

इस प्रकार 'पर्यावरण का संबंध संपूर्ण भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है'[2] और वर्तमान समय में पारिस्थितिकी समस्याएँ से तात्पर्य है – मनुष्य जाति के लिए प्राणवायु गैस (ऑक्सीजन) का अभाव और प्रचुरमात्रा में कार्बन–डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन होना एवं उत्सर्जित संकट से 'प्रकृति के हर प्राणी के जीवन–क्रम में संतुलन लाना'[3] अत्यंत आवश्यक है। कहा जा सकता है कि उपभोगितावादी संस्कृति के इस दौर में लोगों ने अपनी उपयोगिता (विशेषत: आर्थिक उद्येश्य और विलासिता की पूर्ति हेतु) के लिए लगातार पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ किया है, जिसके कारण प्राकृतिक व्यवस्था के अस्तित्व पर ही संकट गहरा गया। 'स्पष्ट है कि इस धरा की मिट्टी, उसका वायुमंडल, नदियाँ, झीलें, तालाब आदि जलश्रोत, पहाड़, धरा का हरियाला आच्छादन उसके वन, धरा पर रहने वाले जीव जंतु आदि सभी को इस पर्यावरण के आयामों (अवयवों) के रूप में देखा जा सकता है। इन्हीं में हम पृथ्वी को जीवनदायनी ऊष्मा से आप्लावित करने वाले सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिंडों या कहें की संपूर्ण अंतरिक्ष की भी गणना कर सकते हैं। ईश्वर ने इन सभी के मध्य एक अत्यंत संवेदनशील संतुलन की स्थापना की है, ताकि मानव का अस्तित्व संकटों से रहित, शांतिपूर्ण एवं अक्षुण्ण बना रह सके।[4]

अब यदि हम साहित्य और साहित्यकार की पारिस्थितिकी के चिंतन या बोध की बात करें तो इससे साफ स्पष्ट होता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' और साहित्य का इतिहास 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब करता है' और 'साहित्यकार समाजविज्ञानी की तरह वर्तमान की जमीन पर खड़े होकर वर्तमान की विभीषिकाओं से जूझने के लिए एक वैचारिक आन्दोलन की शुरुआत ही नहीं करते, समस्या के भीतर छिपी सर्जनात्मक संभावनाओं को संकेतिक करते हुए भविष्य को बुनने की जिम्मेदारी भी पाठक को देता है। वह पात्रों और घटनाओं में बांटकर अपने युग के द्वंद्वों और टकराहटों को कथा–निर्मित संसार में गूँथता अवश्य है, किंतु अपनी एक सुनिश्चित दृष्टि/स्टैंड के साथ पाठक – एक वैयक्तिक इकाई से सब कुछ शेयर कर डालना चाहता है। अपने सपने, संकोच, दुविधाएँ, असफलताएँ, संघर्ष और प्राथमिकताएँ। लेखक से संवाद करते हुए पाठक पाता है कि वह एक इकाई भर नहीं रह गया है। उसके भीतर की अकुलाहटें पहले की तरह सवाल बनकर उसे किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं कर रही हैं बल्कि उसकी दृष्टि को साफ और बोध को पैना करते हुए उससे कर्मठता और सक्रियता की मांग कर रही हैं। आत्म संज्ञान का यह बिन्दु अतिक्रमण और उदात्तीकरण की जिस पीठिका की निर्मिति करता है, वही लेखक – पाठक संबंध को परिभाषित करते हुए रचना की गुणवत्ता का निर्धारण भी करता है। मनुष्य चूँकि हर प्रतिकूलता में भी आस की डोरी थामकर संघर्षरत रहते हुए जिजीविषा को आदिम पहचान का पर्याय बनाये रखता है, इसलिए साहित्य अंधी गली में ठिठकने का आभास देते हुए भी निष्कृति के वैक्लिपक मार्गों का संकेत अवश्य करता चलता है।'[5]

कुँवर नारायण की कविता में विशेषत: सर्वजन्य रूप से जो बातें उभर कर सामने आयी हैं, उसमें सबसे अधिक बल मिथक, इतिहास और प्रेम पर दिया गया है। इसके अतिरिक्त कवि की कविता में सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक व्यंग्य उभर कर सामने आता है, जबकि सत्य यह है कि कवि समाजविज्ञानी की तरह अपनी कविता में पारिस्थितिकी चिंतन की उस छोर तक पहुंचते हैं, जहाँ पाठक साहित्य में अपनी आस्था खोजते हुए नजर आते हैं। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है – 'कुँवर नारायण की कविता में अपनी एक पारिस्थितिकी है। इस पारिस्थितिकी में मनुष्य की आस्था के खो देने की जोखिम है तो उसके बौद्धिक सामर्थ्य और उस सामर्थ्य से आगामी मनुष्य के निर्माण का अंत: साक्ष्य भी है। कविता में कर्म की जिम्मेदारी का बोध कवि का नैतिक दायित्व होता है। इसलिए कुँवर नारायण की कविता की पारिस्थितिकी का भूगोल बेहद विस्तृत है।'[6] कवि अपनी एक कविता में प्रकृतिवाद की विकृति पर प्रकाश डालते हैं, जिसमें आधुनिक युग की पर्यावरणवादी चेतना मनुष्य केन्द्रित नहीं है बल्कि आज का व्यवस्था केन्द्रित पारिस्थितिक चिंतन है – 'हॉर्न की आवाज / सख्त खामोशी को / थोड़ा ही फाड़ पाई थी कि टूट गई: / तेज रोशनी की सलाख / अँधेरे को खरोचती हुई दूर निकल गई... / और उस तहस-नहस वातावरण में / एक सवाल चौंक कर बाकायदा उठ बैठा था- / 'मशीनों को चलाता हुआ आदमी ?- / या आदमी को चलाती हुई मशीनें ?'[7] 'मानव ने प्रकृति की एक निर्जीव शक्ति को अपने लिए उपयोगी शक्ति में बदला' परिणामस्वरूप आज सवाल उठना लाजिमी हो गया है कि मशीन को आदमी चला रहा या आदमी को मशीन ?

सोवियत साहित्य की वैचारिकी के संबंध में हावर्ड फास्ट ने लिखा है कि, 'सोवियत साहित्य दो गुणों से परिपूर्ण है, आशा और जीवन भविष्य के लिए अदम्य आशा और जीवन की प्रक्रिया में अदम्य विश्वास। इन दोनों से मिलकर मनुष्य के सुख का असीमित परिप्रेक्ष्य बनता है। मानव इतिहास में पहली बार भविष्य ने अपने सस्ते, रहस्यात्मक और आदर्शात्मक जाल को उतार फेंका है और पहली बार भविष्य का एक वैज्ञानिक और भौतिकवादी रास्ता बनाया गया है। 'आकाश में लटकती झूठी आशाओं' का स्थान 'मनुष्य के ज्ञान की अपरिमित खोज और सफलता' ने ले लिया है और यह मात्र एक आशा या भविष्य का सपना ही नहीं है बल्कि हमारे समय का केंद्रीय यथार्थ है। इस अंतर की गुणात्मक प्रकृति को पहचानना जरूरी है।'[8] ध्यान देनेवाली बात यह है कि जिस गुणात्मक प्रकृति की ओर हावर्ड फास्ट सोवियत साहित्य की ओर इशारा करते हैं, हमारे यहाँ नयी कविता आंदोलन के सशक्त कवि कुँवर नारायण अपनी कविता में स्पष्टीकरण के साथ 'शहर और आदमी' कविता में लिखते हैं – 'अपने खूंख्वार जबड़ों में / दबोचकर आदमी को / उस पर बैठ गया है / एक दैत्य-शहर / सवाल अब आदमी की ही नहीं / शहर की जिंदगी का भी है / उसने बुरी तरह / चीर-फाड़ डाला है मनुष्य को / लेकिन शहर भी अब / एक बिलकुल फर्क तरह के / मानव-रक्त से / प्रभावित हो चुका है / अक्सर उसे भी / एक बीमार आदमी की तरह / दर्द से कराहते हुए सुना गया है।'[9] प्रश्न उठता है कि मानव द्वारा निर्मित 'एक दैत्य-शहर' आखिर 'एक बीमार आदमी की तरह दर्द से कराहते हुए सुना गया है' क्यों ? क्या मानव निर्मित शहर मानव रक्त की तरह दूषित हो गया है, जिसके कारण शहर को भी 'कोविड-19' वायरस से लड़ना पड़ता है ? जिसका जवाब बिल्कुल सीधे शब्दों में दिया जा सकता है कि '...मनुष्य को जीवन देने वाले प्राकृतिक संसाधनों को हमने खरीद-बिक्री की वस्तु में बदल दिया है। प्रत्येक वर्ष लाखों हेक्टेयर धरती पर कंक्रीट का कफन डालने की प्रक्रिया को विकास कहा जाता है'[10] तो ऐसे भयानक समय आएगा ही। फ्रेडरिक एंगेल्स लिखते हैं, 'प्रकृति चाहे जिस तरह अस्तित्व में आई हो, लेकिन एक बार अस्तित्व में आ जाने के बाद यह, जब तक कायम रहेगी तब तक ऐसी ही बनी रहेगी। ग्रह और उनके उपग्रह, रहस्मय 'पहला धक्का' प्राप्त करके एक बार गतिमान हो जाने पर, अनंत काल तक नहीं तो कम-से-कम प्रलयकाल तक अपनी पूर्वनियोजित दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में परिक्रमा करते रहेंगे। तारे आकाश में हमेशा-हमेशा के लिए स्थिर हैं, 'विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण' के अंतर्गत ये अपनी-

अपनी जगहों पर सुस्थिर रहते हैं। पृथ्वी अनादि काल से, अथवा इसकी सृष्टि के प्रथम दिन से इसी प्रकार बनी हुई है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ...इसमें कहीं कोई परिवर्तन या स्थानांतरण हुआ है तो यह मनुष्य के हाथों हुआ है।'[11]

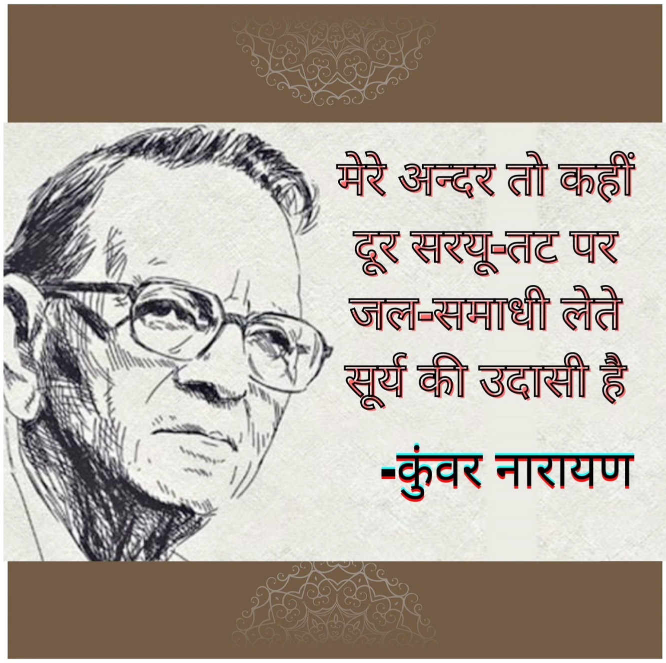

हालाँकि कुँवर नारायण नयी कविता के कवि हैं और नयी कविता आंदोलन के कवियों में पारिस्थितिकी चेतना का स्वरूप डायरेक्ट पर्यावरणीय नहीं है, लेकिन कुँवर नारायण एक अकेले कवि हैं, जिनकी कविता पाठक के मन और मस्तिष्क में पारिस्थितिकी चेतना आस्था के रूप में काम करता हैं, जो बिल्कुल ही अकल्पनीय है। इसी तरह कवि की दूसरी कविता है 'नींव के पत्थर', 'कभी-कभी विद्रोह करते हैं पत्थर / और फूटने लगते हमारे सिर / वे चीखते- मुक्त करो हमें / अपने खोखले प्रतीकों से, / अपनी कीर्ति के अरमानों से, / अपने मंदिरों-मस्जिदों और गुरुद्वारों से / तुम्हारी सदियों पुरानी स्थापनाएं / बिल्कुल निष्प्राण / उनकी बुनियाद से हिलना चाहते / हम पाषाण/ उनकी जड़ों से खुलकर / चिड़ियों की तरह उड़ना चाहते / खुले आकाश में, / घिरना चाहते जैसे कपूरी बादल / और रखना चाहते पृथ्वी की हथेली पर / अपना माथा जैसे वर्षा का आशीर्वाद। / हम चाहते कि अँधेरी तहों से निकल कर / आँधियों की तरह साँस लें एक बार / और लौट जाएँ बर्फ से ढकी / अपनी पर्वतीय ऊँचाइयों पर / रेत बनकर बहें / सागर की ओर झपटती नदियों में, / जीवन बनकर चमकें / प्रकृति की हरियाली में /आपस में जुड़े / जब खुलकर झगड़ते हैं नींव के पत्थर / लड़खड़ाकर ढकने लगते / हमारे ही ऊपर / हमारी सभ्यताओं के शिखर।'[12]

'नींव के पत्थर' से तात्पर्य है विभिन्न धर्मावलंबियों के द्वारा आस्थाओं के मंदिरों-मस्जिदों-गुरुद्वारों में लगी प्राकृतिक संपदा, जिसे मानव ने प्रकृति से जबरन हथिया लिया है। यह कविता उन्नत पारिस्थितिकी नैतिक बोध को उत्खनित करने वाली रचना है, जिसमें एक प्रकार से कवि 'नींव का पत्थर' का पैरवी करते हैं। प्रसिध्द इतिहासकार इरफान हबीब के शब्दों में कहा जा सकता है कि - 'प्राकृतिक प्रचंड आवेगों जैसे वर्षा, बाढ़, सूखा, तूफान, तड़ित तथा दावाग्नि और निर्जन क्षेत्र के खूंखार जानवरों पर नियंत्रण कर पाने की मनुष्य की असमर्थता ने संभवत: पुरा-ऐतिहासिक अंधविश्वासों की जड़ जमा दी थी, जो अंतत: धर्म में फले-फूले तथा जिन्होंने पुरोहितों और कर्मकांड को जन्म दिया।'[13] इसके बाद मनुष्यों ने प्राकृतिक संपदाओं का उपयोग विभिन्न धर्मावलंबियों द्वारा धार्मिक स्थलों के लिए करने लगा। भारत में आजकल जोशीमठ में जो स्थिति है, इससे साफ स्पष्ट होता है कि एक दिन भारत सहित संपूर्ण विश्व में पर्यावरण संकट होगी और मनुष्य इसका प्रतिफलित भी होगा। जोशीमठ की हालिया स्थिति पर कवि की 'पर्यावरण' कविता याद आती है, जिसमें कवि पर्यावरण के सम्पूर्ण परिस्थिति को बड़ी बेवाकी से कह डाली - 'सड़कों की अजगर-लपेट में मकान / 'आ गया, आ गया', चीख रहे प्रेशरहॉर्न। / पहियों की घुर-घुर के नीचे से चीत्कार'[14] आगे चलकर कवि अपनी कविता में मानव जाति के विकसित रूप को सामने रखते हैं और मनुष्य के उन्नत मन को बड़ी बारीकी से

कहते हैं, 'खिड़की दरवाजों से घर में घुस आता / शोहदेपनों का एक पूरा अहाता। / सबको है खुली छूट, हल्लों का मोहल्ला है / अपना सिर गेंद, लाउडस्पीकर बल्ला है। / राम और अल्ला के बन्दों का जंगल है, / कानफो? आवाजों में अखण्ड दंगल है। / धर्म का मतलब अब धंधा है निठल्लों का, / पटरी पर दूकान-व-मकान दो तल्लों का। / आठों पहर जनता की यह भोंपू-सेवा, / यह प्रसाद सोते, काम करते, जान-लेवा।/ सिर में दिमाग नहीं, बची सिर्फ भांय भांय, / कानों में गानों की मची आंय बांय शांय... / लिखने और पढ़ने में अब किसका ध्यान है? / कान हुए हाहाकार, जलजला मकान है। / सिर पकड़े बैठे हैं – कहाँ इसे दे मारे? / जो कुछ कर सकते हैं – बहरे हैं वे सारे।'[15] इस प्रकार कविता में कुँवर नारायण कबीर की तरह फक्कड़पन, आवाज में 'राम और अल्ला के बन्दों' को धर्म का अर्थ तथा निठल्लो का धंधा को स्पष्ट करते हुए धार्मिक पारिस्थितिकी की समस्याएँ को उजागर करते हैं।

डॉ. विरेन्द सिंह यादव 'पर्यावरण : वर्तमान और भविष्य' में लिखते हैं कि 'वर्तमान दौर में पर्यावरण मानवीय चिंता का सर्वाधिक चर्चित मुद्दा है। समूचे विश्व के समक्ष पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकराल रूप में खड़ी है। तात्कालिक लोभ के लिए मानव ने अपने भविष्य को दीर्घकालीन संकट में डाल दिया है।'[16] कुँवर नारायण की कविता 'इसी तात्कालिक लोभ' के कारण भविष्य की दीर्घकालीन संकट की ओर इशारा करती है और भविष्य में घर को लुटेरों से, शहर को नादिरों से, नदियों को नाला हो जाने से, हवा को धुँआ हो जाने से, खाने को जहर हो जाने से, जंगल को मरुस्थल हो जाने, और मनुष्य को जंगल हो जाने से, बचाने का दृढ़ संकल्प लेते है, कवि का यह दृढ़ संकल्प 'एक वृक्ष की हत्या' में देखा जा सकता है – 'अबकी घर लौटा तो देखा वह नहीं था– / वही बूढ़ा चौकीदार वृक्ष / जो हमेशा मिलता था घर के दरवाजे पर तैनात। / पुराने चमड़े का बना उसका शरीर / वही सख्त जान / झुर्रियोंदार खुरदुरा तना मैलाकुचैला, / राइफिल-सी एक सुखी डाल, / एक पगड़ी फूल पत्तीदार, / पाँवों में फटापुराना जूता / चरमराता लेकिन अक्खड़ बल बूता / धूप में बारिश में / गर्मी में सर्दी में / हमेशा चौकन्ना / अपनी खाकी वर्दी में / दूर से ही ललकारता, 'कौन?'/ मैं जवाब देता, 'दोस्त!' / और पल भर को बैठ जाता / उसकी ठंडी छाँव में / दरअसल शुरू से ही था हमारे अन्देशों में / कहीं एक जानी दुश्मन / कि घर को बचाना है लुटेरों से / शहर को बचाना है नादिरों से / बचाना है/ नदियों को नाला हो जाने से / हवा को धुँआ हो जाने से/ खाने को जहर हो जाने से – / बचाना है-जंगल को मरुथल हो जाने से, / बचाना है-मनुष्य को जंगल हो जाने से।'[17] इसी तरह समकालीन कवि उदय प्रकाश अपनी कविता 'बचाओ' में धरती को बचाने का आग्रह करते हैं – 'बचाना ही है तो बचाये जाने चाहिये / गाँव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा, / पेड़ों में घोंसलें, अखबारों में सच्चाई, राजनीति में / नैतिकता, प्रशासन में मनुष्यता, दाल में हल्दी।' (रात में हारमोनियम, पृ. 22) 'वानर से नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका' लेख में फ्रेडरिक एंगेल्स का कथन हैं, 'प्रकृति पर हमारी इन मानवीय विजयों के कारण हमें आत्मश्लाघा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी प्रत्येक विजय का प्रकृति हमसे बदला लेती है। वास्तविकता यह है कि, प्रत्येक विजय के साथ, प्रथम दौर में हमें अपने आशान्वित परिणाम प्राप्त होते हैं, लेकिन दूसरे व तीसरे दौरों में इसके बिलकुल भिन्न, अप्रत्याशित परिणाम प्रकट होते हैं, जो अक्सर पहले दौर के परिणामों को मिटा देते हैं। ...इस प्रकार प्रत्येक ?दम पर हमें यह स्मरण कराया जाता है कि हम प्रकृति पर विदेशी की तरह हरगिज हुकूमत नहीं करते, ऐसा नहीं है कि हम प्रकृति से अलग हों बल्कि हम अपने मांस, रक्त व मस्तिष्क सहित प्रकृति के अंग हैं, प्रकृति में ही हमारा अस्तित्व है और इस पर हमारा समूचा आधिपत्य इस तथ्य में निहित है कि अन्य सभी प्राणियों से हम इस बात में श्रेष्ठ हैं कि हम प्रकृति के नियमों को जान सकते हैं और इसका सही इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तव में, ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों इस प्रकृति के इन नियमों को अधिकाधिक बेहतर समझते जाते हैं ...'[18] अस्तु यही कारण है कि कवि कुँवर नारायण प्रकृति की स्वाभाविक गति की वास्तविकता को जान कर नदी,

हवा, जंगल, पहाड़-पर्वत, खेत-खलिहान आदि को बचाने के लिए दृढ़ संकल्पित होते हैं।

कुँवर नारायण वास्तव में न केवल एक मिथकीय चिंतक व दार्शनिक कवि के रूप में अपनी कविता में उपस्थित होते हैं बल्कि समकालीन संकट की संपूर्ण परिस्थितियों में उपस्थित होते हैं, जिसमें एक पारिस्थितिकी भी है। कवि के यहाँ यह पारिस्थितिकीय चिंतन न तो अधिक पुराना है और न ही कवि का यह पारिस्थितिकी स्वरूपों का विश्लेषण बहुत नया है बल्कि कवि का हृदय जब तब कविता में पर्यावरण के साथ उपस्थित रहता हैं और यही कारण है कि पारिस्थितिकी कवि के रोम-रोम में है, उदहारण के लिए 'मेरा घनिष्ठ पड़ोसी' कविता देख सकते हैं - 'मेरा घनिष्ठ पड़ोसी है/ एक पुराना पेड़ / -न जाने क्या तो है उसका नाम, क्या उसकी जात- / पर इतनी निकट हैं उसकी डालें / कि हमेशा बनी ही रहती हैं / मेरे घर के वरांडे में / कुछ इस तरह कि जब चाहता / हाथ बढ़ाकर सहला सकता उसका माथा / और वह गऊ-सा / मुझे निहारता रहता निरीह आँखों से / मेरी उससे गाढ़ी दोस्ती हो गई है / इतनी कि जब हवा चलती / तो लगता वह मेरा नाम लेकर / मुझे बुला रहा, / सुबह की धूप जब उसे जगाती/ वह बाबा की तरह खखारते हुए उठता / और मुझे भी जगा देता। / अकसर हम घंटों बातें करते / इधर-उधर की बातें / अपनी-अपनी भाषा में / लेकिन भाषा से कोई फर्क नहीं पड़ता - वह कहता / हमारे सुख-दु:ख की भाषा एक ही है, / जाड़ा गर्मी बरसात उसे भी उसी तरह भासते जैसे मुझे, / पतझर की उदासी/ वसंत का उल्लास / कितनी ही बार हमने साथ मनाया है/ एक दूसरे के जन्मदिन की तरह / जब भी बैठ जाता हूँ थककर / उसकी बगल में / चाहे दिन हो चाहे रात / वह ध्यान से सुनता है मेरी बैटन को, / कहता कुछ नहीं/ बस, एक नया सवेरा देता है मेरी बेचैन रातों को। / उसकी बाँहों में चिड़ियों का बसेरा है, / हर घड़ी लगा रहता उनका आना-जाना / कभी-कभी जब अपना ही घर समझकर / मेरे घर में आकर ठहर जाते हैं / उसके मेहमान /तो लगता चिड़ियों का घोंसला है मेरा मकान,/ और एक भागती ऋतू भर की सजावट है मेरा सामान।'[19]

वस्तुत: कहा जा सकता है कि समकालीन समय का पारिस्थितिक चिंतन, व्यवस्था केन्द्रित है। यह संपूर्ण इको-सिस्टम की सुरक्षा पर विचार करता है। यहाँ किसी का वर्चस्व नहीं है। मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-नाले, हवा, पानी, खेत-खलिहान आदि का संरक्षण इसका लक्ष्य है, लेकिन आज परम्परागत संस्कृतियों और जीवनशैलियों का नाश करने में सारा संसार एक हो गया है। यही कारण है कि प्रसिध्द दार्शनिक और शिक्षाविद् रूसो एक जगह लिखते हैं 'मनुष्य का नैतिक पतन उसके सभ्य होने के साथ-साथ हुआ' और 'हम महानगरों में घुमने वाले वनमानुष हैं।' कुँवर नारायण की कविता में साहित्यिक पारिस्थितिकी का वह रूप जो मुख्यत: सुधारवाद के गहन पारिस्थितिवाद (Deep Ecology), सामाजिक पारिस्थितिवाद (Social Ecology), पारिस्थितिक मार्क्सवाद (Ec-Marxism), पारिस्थितिक -स्त्रीवाद (Eco-Feminism) है के बहुत नजदीक है तथा कवि बार-बार भाषा की संस्कृति के साथ पर्यावरण की संस्कृति को एक साथ जोड़कर देखते हैं और स्पष्ट स्वर में कहते हैं, जिस तरह भाषा की संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है, उसी प्रकार कहीं पर्यावरण की संस्कृति विलुप्त न हो जाय। आशंका कवि के हृदय से फूट निकलती है - 'एक पेड़ जब सूखता / सब से पहले सूखते / उसके सब से कोमल हिस्से- / उसके फूल / उसकी पत्तियाँ। / एक भाषा जब सूखती / शब्द खोने लगते अपना कवित्व / भावों की ताजगी / विचारों की सत्यता- / बढ़ने लगते लोगों के बीच / अपरिचय के उजा ? और खाइयाँ... / सोच में हूँ कि सोच के प्रकरण में / किस तरह कुछ कहा जाय / कि सब का ध्यान उनकी ओर हो / जिनका ध्यान सब की ओर है-/ कि भाषा की ध्वस्त पारिस्थितिकी में / आग यदि लगी तो पहले वहाँ लगेगी / जहाँ ठूँठ हो चूँकि होगी / अपनी जमीन से रस खींच सकनेवाले शक्तियाँ।'[20]

अस्तु भाषा और प्रकृति की पारिस्थितिकी कुँवर नारायण की कविता में 'मानवीयता के महावृक्ष के नीचे तक ले जाती है। उसकी शीतल छाया में सुख और शांति का अनुभव जरूर होता है। साथ ही हमें वह सतर्क करती है, संकेत देती है। हमारी मानवीयता को वह

जाग्रत करती है।' [21] चूँकि 'केवल मनुष्य ही प्रकृति पर अपनी छाप डालने में समर्थ हुआ है। उसने न केवल पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तुओं को स्थानांतरित किया है बल्कि अपने निवासस्थल की जलवायु और परिस्थितियों को भी बदला है, और पेड़-पौधों और पशुओं को भी बदला है, ...और, मनुष्य ने यह सब प्रधानत: और मूलत: हाथ के जरिये किया है।' [22]

निष्कर्ष :

जिस प्रकार दुनिया भर के सामाजिक-राजनीतिक-पारिवारिक-धार्मिक परिस्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया है, उसी प्रकार दुनिया भर के पारिस्थितिकी बोध ने साहित्य को प्रभावित किया है। यह पारिस्थितिकी समस्या वस्तुत: आधुनिक मनुष्य की अर्थ और दृष्टि लाभ पर केन्द्रित है, जिसके कारण मानवीय संवेदनाओं से विहीन मनुष्यों में न आपसी प्रेम है और न प्रकृति-प्रेम। फलस्वरूप कवि कुँवर नारायण सहित भारतीय रचनाकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में पर्यावरणीय सामाजिकी को महत्वपूर्ण स्थान दिया। आज जिस तरह दिन प्रतिदिन पर्यावरण की समस्याएँ मानव जाति की समस्याएँ बनती जा रही है, इससे साफ स्पष्ट होता है कि आधुनिक मानव ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु न केवल आवश्यकतानुसार प्राकृतिक संपदा का उपभोग किया बल्कि उसका असंतुलित मात्रा में दोहन भी किया है। प्राकृतिक संपदाओं का प्रचुरमात्रा में क्षरण होना ही पारिस्थितिकी समस्या है और कुँवर नारायण अपनी कविता में इसी अनावश्यक उपभोग को रेखांकित किया हैं, जो वास्तव में हमारी मानवीयता को जाग्रत करती है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. मनुष्य और पर्यावरण भारत का पारिस्थितिकीय इतिहास-इरफान हबीब, अनुवाद राजीवलोचन नाथ शुक्ल, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण 2018, पृ.सं.-9
2. सं, उषा नायर, पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं. 126,
3. वहीं, पृ.सं.-128
4. पर्यावरण दर्शन, डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल, पृ.सं.-14
5. रोहिणी अग्रवाल-समकालीन हिंदी उपन्यास और पारिस्थितिकीय संकट, हिंदी समय डॉट कॉम से
6. बहुवचन पत्रिका अंक 56 जनवरी-मार्च, 2018, पृ. सं.-137
7. परिवेश : हम तुम-कुँवर नारायण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली,तृतीय संस्करण 2006, पृ.सं.-77
8. साहित्य और यथार्थ-हावर्ड फास्ट, सं. कर्ण सिंह चौहान, कामगार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृ.सं.-94
9. इन दिनों-कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृति 2014, पृ.सं.-21
10. वागर्थ पत्रिका, अंक 283 फरवरी, 2019, पृ.सं.-106
11. प्रकृति का द्वंद्ववाद-फ्रेडरिक एंगेल्स, अनुवाद गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2022, पृ. सं. 31-32
12. इन दिनों- कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृति 2014, पृ.सं. 22-23
13. वागर्थ पत्रिका, अंक 283 फरवरी, 2019, पृ.सं-108
14. कोई दूसरा नहीं-कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण 2021. पृ.सं.-121
15. वही, पृ.सं.-121
16. पर्यावरण : वर्त्तमान और भविष्य - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पुस्तक परिचय से
17. इन दिनों - कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृति 2014, पृ.सं. 54-55
18. प्रकृति का द्वंद्ववाद-फ्रेडरिक एंगेल्स, अनुवाद गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2022, पृ.सं. 181-182
19. इन दिनों-कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृति 2014, पृ.सं. 52-53
20. कोई दूसरा नहीं-कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण 2021. पृ.सं.-41
21. ए. अरविंदाक्षण, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - सृजनात्मकता का विस्तार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली : प्रथम संस्करण 2019, पृ.सं.-76
22. प्रकृति का द्वंद्ववाद-फ्रेडरिक एंगेल्स, अनुवाद गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2022, पृ.सं.-40

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

संस्मरण विधा की कसौटी पर 'कितने शहरों में कितनी बार' : एक अध्ययन

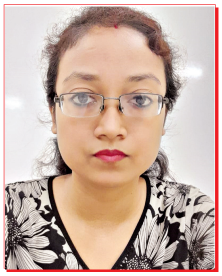

बर्णाली गोगोई

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम
आइजल (मिजोरम)-796004
मो. 9366961215/9774793717
ईमेल : bornaligogoi733@gmail.com

शोध सार :

संस्मरण शब्द संस्कृत से आया है। संस्मरण का अर्थ है स्मरण करना या याद करना। संस्मरण में अतीत की यादों तथा घटित घटनाओं को लिखा जाता है। अर्थात अतीत की बातों को जब कोई लेखक या लेखिका याद करते हुए लिखता है, उस साहित्यिक विधा को संस्मरण कहा जाता है। संस्मरण में केवल अपनी यादें या स्मृतियाँ ही नहीं होतीं, उसमें दूसरों पर आधारित बातें भी हो सकती हैं। लेखक या लेखिका जो लिखता है, वह सत्य और प्रामाणिक होता है, क्योंकि वह जो भी लिखता है, उससे परिचित होता है। इसलिए संस्मरण यथार्थ का साहित्य है। यही कारण है कि बहुत से लोग संस्मरण नहीं लिख पाते हैं। संस्मरण लिखते समय लेखक में तटस्थता का भाव होना आवश्यक है। तभी कोई लेखक सही ढंग से संस्मरण लिख पाता है। संस्मरण लिखते समय अनेक सावधानियाँ ध्यान में रखनी पड़ती हैं। संस्मरण की अपनी विशिष्ट शैली होती है। संस्मरण लिखते समय स्मृति, आत्मीयता, व्यक्तित्व का चित्रण, तथ्यात्मकता, तटस्थता, प्रामाणिकता आदि बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

बीज शब्द :

स्मृति, आत्मीयता, तथ्यात्मकता, तटस्थता, प्रामाणिकता, संस्मरण आदि।

प्रस्तावना :

संस्मरण साहित्यकार की अपनी स्मृति है, जिसे शब्दों में अंकित करता है। महादेवी वर्मा ने अपनी स्मृति के संबंध में लिखा है – ''इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह

स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते है, उसके बाहर तो वे अनंत अंधकार के अंश है।''[1]

संस्मरण हिंदी साहित्य की आधुनिक विधा है। संस्मरण लिखते समय अनेक सावधानियाँ ध्यान में रखनी पड़ती है। संस्मरण की अपनी विशिष्ट शैली होती है। इसे लिखने के लिए निम्नलिखित तत्वों को आधार बनाकर लिखा जाता है, ये तत्वों संस्मरण के आवश्यक तत्व हैं –

1. स्मृति
2. आत्मीयता
3. व्यक्तित्व का चित्रण
4. तथ्यात्मकता
5. तटस्थता
6. चित्रात्मकता
7. प्रामाणिकता

अत: इन्हीं तत्वों के आधार पर ही संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' को परखने का प्रयास किया जाएगा।

1. स्मृति : स्मृति से तात्पर्य है याद या स्मरण। यानी किसी भी बीती बातों को याद करना या स्मरण करना। जब हम किसी बीते बातों को याद करते हैं तो उसे स्मृति कहते हैं। 'कितने शहरों में कितनी बार' में लेखिका स्मृति के जरिए ही अपनी सारी बीते बातों को बताती हैं। वह एक–एक करके हर बात को याद करती है। वह कहती है – ''मथुरा मेरी कहानियों में भी धड़कती रहती है – कभी आवेश बनकर, कभी परिवेश बनकर। मथुरा की यादें, दराज में पड़े मुड़े–तुड़े कागजों की तरह हैं, जिनमें तारतम्य नहीं बैठा पाई हूँ।.... सावन में कमरे में झूला डलता है। हरियाली तीज पर बाबा हरे रंग की छोटी–छोटी धोतियाँ लाते हमारे लिए। झूले गीत, सावन के लोक गीत आज भी अपनी धुन सहित मेरे कानों में गूँज उठते हैं।''[2]

लेखिका ने इस संस्मरण में अनेक स्मृतियों को लिया है। उनकी एक अन्य स्मृति है जमुना के कछुओं की। उनकी दादी उन्हें कछुओं की कहानी सुनाती थी। वह कहती है – ''जमुनाजी की कछुओं की स्मृति है। उनसे जुड़ी अनेक डरावनी कहानियाँ आधी–अधूरी याद आती हैं। यह कभी समझ नहीं आया कि हम बच्चों को जमुनाजी में डुबकी क्यों लगवाई जाती थी जबकि शाम को दादी, बाबा, बुआ, कोई न कोई स्त्री किस्सों की पुरानी पिटारी खोल डालते, 'अरे ध्यान से न्हवइयो। भार्गवती की नतनी को येई बिरासत घाट पर बुड़का मार कै लै गयों थौ।' 'तोते की बहन की तो उंगलियाँ खा गयौ।''[3]

लेखिका ने अनेक स्मृतियों की चर्चा की है। ऐसी ही अन्य एक स्मृति है मथुरा के मामा का घर। लेखिका के चार मामा हैं। लेखिका पहले एबटाबाद में रहती थी। लेखिका के नाना–नानी के देहांत के बाद वे मथुरा आकर रहने लगे। लेखिका एक बार एबटाबाद गई थी। वहीं की एक स्मृति है। वह कहती है – ''एक बार घर में अचानक मेहमानों के आने पर नानी हमें कांछा लोगों के घर अचार लाने भेज दिया। धनसिंह की बीबी ने हमें नींबू की जगह बोटी का अचार दे दिया। रस्ते भर हम आचार चाटते गये। अचार बड़ा स्वादिष्ट लगा। घर पहुँचने पर हमें बड़ी डाँट पड़ी।''[4]

इस तरह से लेखिका ने अपनी स्मृतियों को एक–एक करके इस संस्मरण में मूर्त रूप प्रदान किया है। उन्होंने अपने बचपन से लेकर आज तक की, यानी बड़ी होने तक की हर एक बात को यादों का एक लंबा किस्सा के रूप में इस संस्मरण में प्रस्तुत किया है।

2. आत्मीयता का चित्रण : संस्मरण लेखन के लिए आत्मीयता एक महत्वपूर्ण तत्व है। आत्मीयता से जुड़ी हर स्मृति इसमें देखने को मिलती है। लेखिका ने अपने संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' में भी आत्मीय भावों का चित्रण किया है। लेखिका अपने पिता के बारे में लिखती है – ''वे अपने काम और पद को इतना महत्व देते थे कि हमें लगता हमारे पिता साक्षात भारत सरकार हैं। हिंदी, अंग्रेजी साहित्य के किसी सवाल पर उनके साथ बहस करना उनकी प्रतिभा से टकराना था। लोग जीवन से साहित्य में जाते हैं, वे साहित्य से जीवन में पहुँचते थे। वे किताबों डूबे

रहते।'' [5] वे फिर कहती है – ''मैं पापा की बात की कायल हो जाती। दरअसल पापा के अंदर एक मौलिक क्रांतिकारी रचनाकार जब तब करवट लेता रहता, लेकिन उनका शिक्षक-प्रशिक्षक व्यक्तित्व उसे बार-बार दबा देता है। ऊपर से वे अपनी इतनी ऊर्जा नौकरी में लगा देते। जाने कितने लोगों को उन्होंने वार्ता लिखना सिखाया। वे पहले विषय समझाते फिर भाव समझाते और अंत मे रेडियो की भाषा सिखाते। अगर सिखने वाला राजी हो तो उनके हाथों वह जीवन भर के लिए प्रथम श्रेणी का वार्ताकार बनकर निकलता। पापा अपने शिष्य का बहुत दूर तक साथ देते।'' [6] इस संस्मरण में लेखिका अपने जीवन की घटनाओं को आत्मीय होकर वर्णन करती है।

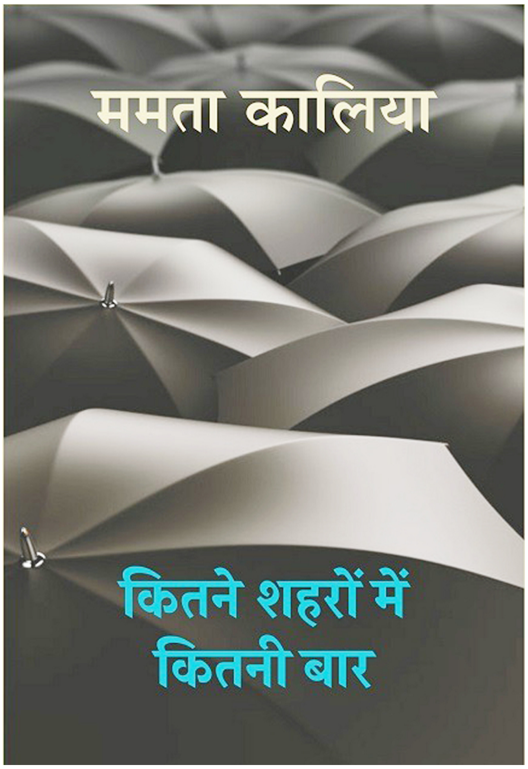

3. तथ्यात्मकता : संस्मरण तथ्य के आधार पर लिखा जाता है। संस्मरण तथ्य पर आधारित होना चाहिए। ममता जी द्वारा लिखित संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' तथ्य पर आधारित विभिन्न किस्सों का एक लंबी शृंखला है। इसमें भी लेखिका ने तथ्यों के साथ अपनी बातों को आगे बढ़ाया है। उदाहरण के लिए- ''सन 1948 की बात है। एक शाम वह बाजार से लौटकर जोर-जोर से रोने लगा। चीख-पुकार के बीच उसने कहा- बीबीजी आज में रोटी नहीं खाऊँगी गांधीजी को गोली लग गयी। गांधी बाबा मरते हुए बोले- 'हे राम'।'' [7]

ममता जी ने अनेक तथ्यों को लिया है। वे अपने बारे में कहती हैं – ''सन 1973 तक में दो बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन के लिए कोशिश कर चुकी थी, हर बार किसी स्थानीय अभ्यार्थी की नियुक्ति हो गई।'' [8]

लेखिका ने इंदिरा गांधी की हत्या की चर्चा की है। वह कहती है – ''सन 1984 में इंदिरा गांधी की हत्यावाले रोज ही इलाहाबाद मे साम्प्रदायिक दंगे हो गए। यह एक तरफा लड़ाई और हिंसा थी, क्योंकि शहर के सिख तो बार-बार कह रहे थे, प्रधानमंत्री के अंत का उन्हें अफसोस है। वे लड़ भी नहीं रहे थे, फिर भी उन्हें घरों से घसीटकर पीटा जाता था। उनकी दुकानें जला दी गईं। उनके घर लूट लिए गए।'' [9] इस तरह के तथ्यों से ही संस्मरण प्रामाणिक बनता है।

4. प्रामाणिकता : प्रामाणिकता से तात्पर्य है, वह तथ्य जो सत्य पर आधारित हो। प्रामाणिकता में कल्पना का स्थान नहीं होता है। जो भी घटनाएँ होती हैं, वह सत्य पर ही आधारित होती हैं। इसमें अपनी और से कुछ भी नहीं जोड़ा जाता। सभी बातें बीती बातों पर आधारित होता है। प्रामाणिकता संस्मरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ममता कालिया द्वारा लिखित संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' भी प्रामाणिकता पर आधारित है। इसमें लेखिका ने जो कुछ भी बताया है, सब यथार्थ पर आधारित है। लेखिका के साथ जो भी घटना घटी, जो बीती उन्हीं का वर्णन इस संस्मरण में लेखिका ने किया है। उदाहरण के लिए देख सकते हैं – ममता ने अपने संस्मरण में रवींद्र कालिया का मोहन राकेश के प्रति जो मोह था उसे इस प्रकार बताया है – ''रवि का मोह केवल एक की प्रतिभा। वह मैंने महसूस किया, मोहन राकेश के प्रति। वे पूजा के हद तक मानते

थे उन्हें। उनका कहा ब्रह्मवाक्य उनका सिखाया दीक्षांत कथन। उनका लिखा सर्वोपरि।'' [10]

यह बात प्रामाणिक है। इस बात के प्रमाण के रूप में रवींद्र कालिया के 'संस्मरण' में रवींद्र कालिया द्वारा कही गईं बातों को आधार बनाया जा सकता है। इसमें वह कहते हैं – ''स्टेशन पर हुआ राकेशजी से वह परिचय धीरे धीरे प्रगाढ़ होता चला गया। उन्हें जालंधर जैसे शहर में नयी उम्र का पाठक मिल गया था। मैं उनके यहाँ आने लगा था। उनके पास हिंदी की तमाम पत्रिकाएँ आती थीं। उमका पुस्तकालय भी बहुत समृद्ध था। मैं उन दिनों खूब कहानियाँ पढ़ता था। उस दौर की कहानियाँ मैंने राकेश जी के वहाँ ही पढ़ी थी। राकेश अपने समकालीन कथाकारों के बारे बताती तो मैं बहुत गौर से सुनता।'' [11] फिर रवींद्र कालिया कहते हैं – ''उन्हें मेरी पढ़ाई की चिंता होती तो रिक्शों में, बियर शॉप में किसी रेस्तराँ में, भाषण दे देते।'' रवींद्र कालिया ने यह भी बताया है कि उन्होंने घर में विरोध करके ही हिंदी में ऑनर्स लिया और वह भी राकेश जी के कहने के कारण। [12]

ममता कालिया ने अपने इस संस्मरण में सन 1965 में पंजाब यूनीवर्सिटी, चंडीगढ़ में 'कहानी सबेरा' नाम से एक गोष्ठी की चर्चा की है। जहाँ मोहन राकेश, अनीता राकेश, कमलेश्वर, नामवर सिंह, रवींद्र कालिया आदि की भी चर्चा करती हैं।

रवींद्र कालिया ने भी अपने संस्मरण 'गालिब छुटी शराब' में इस बात का जिक्र किया है। वे लिखते हैं – ''कुछ दिन बाद राकेश जी के साथ यात्रा करने का भी अवसर मिला। डॉ. मदान ने चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में एक कथा गोष्ठी का आयोजन किया था। गोष्ठी में नये लेखकों के नाम और पते भी मंगवाये गये थे। मैंने केवल एक नाम की सिफारिश की। ममता अग्रवाल के नाम की। जगदीश चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'प्रारम्भ' में ममता की कविताओं ने ध्यान आकर्षित किया था। उसके पिता आकाशवाणी दिल्ली में सहायक केंद्र निर्देशक थे। विद्याभूषण अग्रवाल भारत भूषण अग्रावल के बड़े भाई।'' [13]

इस तरह से ममता ने अपने संस्मरण में जो भी बातें कही हैं, सभी प्रामाणिक हैं, जिसका प्रमाण उसके समकालीन कथाकारों या पति रवींद्र कालिया के कृति में मिल जाता है।

5. व्यक्तित्व का चित्रण : व्यक्तित्व का संस्मरण में महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण में व्यक्तित्व का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना संस्मरण लिखा नहीं जा सकता। ममता कालिया द्वारा लिखा गया संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' में भी व्यक्तितत्व का चित्रण देखने को मिलता है। इसमें लेखिका ने अत्यंत सजीव तरीके से व्यक्तित्व का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए उनके द्वारा मुक्तिबोध के बारे में बताई गई बातों को देख सकते हैं – ''एक दिन वे पापा के साथ रेडियो स्टेशन से घर आए थे। वे बेहद लम्बे और नुकीली हड्डियों वाली देह के थे। वे स्टडी में आकर जमीन पर बिछे बिस्तर पर जब बैठे उनके पैर का पंजा चादर पर जैसे छप गया। अरे बाप रे! इतना लम्बा पंजा था। उनकी गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थी, आँखें फटी–फटी। वे बीड़ी पीते और मुट्ठी बाँधकर कश लगाते। हमारे घर में कोई राखदानी नहीं थी। जब तक मम्मी ने कोई तशतरी इस काम के लिए लाकर रखी वे जमीन पर राख झाड़ चुके थे। बाद में एक बार हम सब राजनांद गाँव उनके घर भी गये थे।'' [14]

ममता कालिया बचपन में खूब शरारती थीं, जिसे उन्होंने अपने संस्मरण में व्यक्त किया है। उन्होंने कस्तूरचंद पार्क में होने वाली नुमाइश के बारे में बताया है। वे वहाँ अपने पिता के साथ गई थीं, पर उन्हें अपने दोस्तों के साथ जाना था। वह कहती हैं – ''आखिरकार हम सबने एक रास्ता निकाला। नुमाइश के चारों ओर चटाई की दीवारें खड़ी की गई थीं। हमने दो चटाइयों को खिसका–खिसकाकर बीच में इतनी जगह बना ली कि हम वहाँ से नुमाइश में घुस जाएँ। चोरी से नुमाइश का मजा लूटने का प्रोग्राम कई दिनों तक चला। अचानक एक दिन हम लोग नुमाइश के चौकीदार कांछा के नजर में आ गए। उसने हमें घुसते हुए पकड़ लिया।'' [15]

6. चित्रात्मकता : किसी विधा के लेखन के लिए चित्रात्मक भाषा की आवश्यकता होती है। संस्मरण साहित्य लेखन के लिए भी चित्रात्मकता महत्वपूर्ण है। यह लेखन को प्रभावशाली बनाती है। चित्रात्मकता से लेखन में मूर्तता आती है। ममता कालिया के संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' में भी हमें चित्रात्मकता की झलक देखने को मिलती है।

एक उदाहरण के लिए ममता कालिया द्वारा लिखे गए अलीपुर जेल के बारे में कह सकते हैं – ''अलीपुर जेल में दोपहर 2.30 की धूप में बैरक में एक विदेशी नौजवान बैठा किताब पढ़ रहा था। गोरा रंग, नीली आँखें, सुतवाँ नाक लगभग नुकीली, उसकी ठोढ़ी पर हल्की ब्राउन दाढ़ी है। वही लोहे के ग्रिल के पास पड़ रहे धूप के चकते में एक बिल्ली बैठी है। बिल्ली का भूरा रंग धूप में चमक रहा है।''[16] इसमें ममता जी ने उस कैदी और बिल्ली के बारे में इस तरह से चित्रण किया है, मानो हम उन्हें अपनी आँखों से देख रहे हैं।

निष्कर्ष :

इस तरह उपरोक्त विवेचन से कह सकते हैं कि संस्मरण के तत्वों के आधार पर ममता कालिया द्वारा रचित संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' संस्मरण विधा की कसौटी पर खरा उतरता है। इस संस्मरण में वे सारे तत्व मौजूद हैं, जो एक आदर्श संस्मरण में होने चाहिए।

ममता जी द्वारा रचित यह संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस संस्मरण ने संस्मरण साहित्य में अपना अलग ही एक स्थान बनाया है। इसमें कई सारी विशेषताएँ एक साथ मिली हुई हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण : 2015, पृष्ठ – 2 (अपनी बात)
2. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन , संस्करण : 2010 पृष्ठ – 11
3. वही, पृष्ठ – 12
4. वही, पृष्ठ – 14
5. वही, पृष्ठ – 16
6. वही, पृष्ठ – 20
7. वही, पृष्ठ – 19
8. वही, पृष्ठ – 150
9. वही, पृष्ठ – 158
10. वही, पृष्ठ – 102
11. गालिब छुटी शराब, रवींद्र कालिया, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2000, पृष्ठ – 24
12. वही, पृष्ठ : 24
13. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन, संस्करण : 2010, पृष्ठ – 89
14. वही, पृष्ठ – 25
15. वही, पृष्ठ – 23
16. वही, पृष्ठ – 201

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

आदिवासी महिला कथा लेखन का विकास और चिंतन

शैलेश यादव

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय,
कांचीपुर, इंफाल - 795003
मो. 8303926846
ई-मेल- shailesh1859@gmail.com

शोध सार :

भारत में संवैधानिक रूप से जनजाति कही जाने वाली आदिवासी सभ्यता के जीवन मूल्य आज भी महान है। भारत में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श की तरह ही आदिवासी विमर्श भी उनकी अस्मिता की लड़ाई के लिए शुरू हुई। जल, जंगल, जमीन - आदिवासी अपनी इसी पहचान और इनसे जुड़ी हुई परंपरा और अपनी इस धरोहर की रक्षा-संरक्षण हेतु जन आंदोलन और साहित्यिक विमर्श की तरफ मुड़े। अन्य लेखन की तरह ही आदिवासी साहित्य सृजन में स्त्री लेखिकाओं ने अपनी आवाज, अपने अनुभव संघर्ष और अपनी वैचारिक दृष्टि को सामने रखने के लिए कलम का सहारा लिया। इसी कड़ी में आदिवासी कथा लेखिकाओं का विषय आदिवासी समुदायों के आदिवासी जीवन दर्शन को बचाने तथा इनके समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, गलत परंपराओं से मुक्त करने का है। आदिवासी लेखिकाएँ आदिवासी महिलाओं के अधिकारों को लेकर सजग नजर आती हैं। इन महिलाओं के लेखन से वह तथ्य उभर कर सामने आये हैं, जो आदिवासी पुरुष व गैर आदिवासी स्त्री-पुरुष के लेखन में अनुपस्थित हैं। इन कथा साहित्य में तथाकथित सभ्य समाज का वर्चस्व तो है ही, साथ ही उसके कारण कहीं न कहीं आदिवासी समाज के रीति-रिवाज, परंपरा दीकू समाज के मानवता के विनाशवादी संस्कृति के अंधानुकरण में लगी हुई हैं, जबकि आदिवासी परंपरा, संस्कृति में प्रेम है, प्रकृति से जुड़ाव है, सहजीविता और सामूहिकता है। आदिवासी समाज में पति मृत्यु के बाद स्त्री का कोई अधिकार नहीं है। इसके लिए इन कथाओं के माध्यम से संघर्ष है। स्त्री की बहु-पत्नी प्रथा में अपने ही समाज की प्रताड़ना है, बलात्कार, अनैच्छिक विवाह है तो वहीं इन कथाओं के माध्यम से आदिवासी की अपने जीवन मूल्य, मानवीयतावादी परंपरा के प्रति जुड़ाव फिर से जागृत करने का संघर्ष है, आह्वाहन है। इसलिए आदिवासी लेखिकाओं की कथाओं को उनकी पृष्ठभूमि सहित देखना अति आवश्यक है और

महत्वपूर्ण भी है। इनका विस्थापन व अंधपरंपरा के प्रति तीव्र प्रतिरोध है, तो इनकी कथाओं में आदिवासी शोषण व स्त्री शोषण के प्रति संघर्ष भी दिखाई देता है।

बीज शब्द :

आदिवासी विमर्श, आदिवासी साहित्य, जंगल, समुदाय, दीकू, मानवीय मूल्य, सभ्यता, संस्कृति, कथा लेखिकाएँ, विकास, औद्योगीकरण, नगरीय सभ्यता, आदिवासी कथा साहित्य, जनजाजियाँ, कहानियाँ, रीति-रिवाज, परंपरा, मौखिक-वाचिक परंपरा, आदिवासी, स्त्री विमर्श, पुरुष सत्ता, विस्थापन, शोषण, प्रकृति समस्या, लोक साहित्य, आदिवासी महिला साहित्यकार, आदिवासी कथा, आदिवासी कथा लेखन, आदिवासी महिला कथा लेखन, बलात्कार, भ्रण-हत्या, आत्महत्या।

मूल आलेख :

कथा साहित्य का प्रादुर्भाव भले ही यूरोप में हुआ हो, लेकिन हिंदी साहित्य मे इसका पूर्ण विकास देखा जा सकता है। हिंदी कथा एक आधुनिक गद्य विधा है। विश्व के हर भाषा में सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन इतिहास एवं पृथ्वी के विभिन्न रहस्यों को लेकर अनेकों कथाएं लिखी गई हैं व लिखी जाती रहेंगी। इन प्रचलित कथाओं से किसी भी समाज या समुदाय की आस्था, विश्वास और मूल्यों का पता चलता है, जिससे सीख एवं सुझाव दोनों प्राप्त होते हैं।

'आदिवासी साहित्य कहने मात्र से ही उन समस्त आदिवासी समुदायों से संबंधित साहित्य का बोध होता है, जो अपने आप में एक विशाल, व्यापक एवं विस्तृत है। इस समुदाय में कई जातियाँ हैं, जो देश के विभिन्न प्रान्तो में बहु संख्या में हैं।'[1] आदिवासी समुदाय की संस्कृति अधिकतर मौखिक ही है, जिसमें कथा, गीत-संगीत एवं नृत्य शामिल हैं। इसी बारे में कमलेश्वर जी कहते हैं – 'भारत के पास बहुत पुष्ट एवं व्यापक लोक संस्कृति की परंपरा है। लोक संस्कृति के विकास का मूल स्त्रोत ही आदिम समाज की बहुआयामी कल्पना, कल्पनाशीलता और उनकी रचनाशीलता से जुड़ा हुआ है। आदिवासियों के पास मन और बुद्धि की मानवीय प्रयोगशाला रही है, जिसमें आदिम कलाओं, उत्कीर्ण

पाषाण चित्रों, प्रकृति के साथ तन्मय उल्लासपूर्ण लास और नृत्य, स्वरों का समायोजन और मौखिक-वाचिक परंपरा का लोक साहित्य प्रारंभ से ही मौजूद है।'[2] आदिवासी हमेशा से प्रकृति के नजदीक रहतें हैं, इसे भी वे परिवार का एक सदस्य के रूप में मानते हैं। इसलिए आदिवासियों के साहित्य में प्रकृति की पूरी छाप है। यह उनकी कविता, कहानियों तथा उपन्यासों में स्पष्ट नजर आता है।

आदिवासी साहित्य पर आज बहुत लोग लिख-पढ़ रहे हैं। आदिवासी साहित्य को अपेक्षाकृत कम विकसित होने का कारण है, इनके अलग-अलग समुदायों का होना, इन्हीं अलग-अलग समुदायों में अलग-अलग भाषा का प्रयोग होता है, जिससे भारत का एक विशाल जनसमूह अनभिज्ञ है। आदिवासी समाज पर लिखने वाले आज बहुत हैं, जिसमें आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों शामिल हैं, लेकिन यह दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि आदिवासी महिला साहित्यकार कम हुई हैं, उसमें भी कथा साहित्य तो बहुत ही कम। इधर बीच कुछ महिलाओं ने आदिवासी कथा साहित्य में अपनी कलम से आदिवासी स्त्री के दुख-दर्द एवं आदिवासियत की उपस्थिती दर्ज की है, वह भी बहुत ही प्रभावकारी ढंग

से। आदिवासियों के रीति-रिवाज की अपनी अलग विशेषता है, जो अन्य समाज की तुलना में बेहतर है, चाहे वह टोटम हो या फिर धन संग्रह संबंधी बात हो। फिर इन्हें तथाकथित सभ्य समाज द्वारा असभ्य क्यों कहा जाता है? बलात्कार हो या प्राकृतिक दोहन मानवता का सारा उल्लंघन, तो दीकू समाज ही करता है फिर कहाँ से सभ्य हुआ? आदिवासी, लोक साहित्य के सुनहरे रंग को अपने शब्दों के माध्यम से साहित्य जगत के समक्ष रखने में तत्पर हैं। 'यह अलग बात है कि भारत बाकी हिन्दू या अन्य धर्मी आबादी अपनी कूपमण्डूकता के कारण खुद को श्रेष्ठ समझकर इन्हें अनदेखा कर रही है और इन्हें जंगली या असभ्य कह कर अपमानित करती है।'[3] कथा के माध्यम से आदिवासी महिलाएँ अपनी समस्याओं को सामने रख पाने मे सक्षम हो पाई हैं। जब तक किसी समस्या को उजागर नहीं किया जाता, तब तक एक अकेला शोषण की समस्या से जूझता रहता है लेकिन जैसी ही वह अपनी बात को बाकी समाज के सामने लाता है तो वह समस्या केवल व्यक्तिगत या उस समाज की ही नहीं, सभी की समस्या बन जाती है, सभी लोग उस संघर्ष में साथ हो जाते हैं। इसी ताकत को पहचानते हुए रमणिका जी कहती हैं कि 'अभिव्यक्ति की ताकत अगर मनुष्य को पशु से भिन्न बनाती है तो साहित्य उसे दिशा देता है और अहसास दिलाता है कि वह मनुष्य अकेला नहीं बल्कि एक समाज का अंग है और प्रतिबद्ध साहित्य समाज को गतिशील बनाता है, जड़ नहीं।'[4] आदिवासी समाज में आदिवासी महिलाओं की पूर्ण स्वतंत्रता कहाँ तक है, इस बात को आदिवासी महिलाएँ ही सही रूप में व्यक्त कर सकती हैं। इसका विभिन्न स्वरूप हमें उपन्यासों और कहानियों में देखने को मिल जाता है। आदिवासी महिला कथाकारों ने महिलाओं के साथ-साथ आदिवासियत को भी उकेरने का प्रयास किया है। गैर-आदिवासी समाज भी इनके दुख पीड़ा को व्यक्त करने का प्रयास किया है, लेकिन वे आदिवासियत व स्त्री समस्याओं के मर्म तक पहुँचने में नाकाम रहें हैं। रोज केरकेट्टा के शब्दों में कहें तो 'गैर आदिवासियों द्वारा रचित आदिवासी विषयक साहित्य में शिल्प है परन्तु आदिवासी आत्मा नहीं। उसमें सर्जक अपनी दृष्टि से अच्छाई-बुराई का कलात्मक विवरण रखता है, लेकिन आदिवासियों का सच उससे अलग है।' आदिवासी महिला लेखन को और भी समृद्धि की आवश्यकता है, जिससे आदिवासी महिलाओं की समस्या व आदिवासी शोषण एवं संघर्ष साहित्य का मेरुदण्ड बन सके। आदिवासी महिला समाज अपेक्षाकृत दीकू समाज से स्वतंत्र है, लेकिन इस समाज में भी महिलाओं के प्रति अलग-अलग समुदाय में अधिकारों की असमानता है, इस असमानता को अभी तक उपलब्ध कथा साहित्य में उकरने का प्रयास किया गया है। फिर भी अभी भी बहुत कुछ कहने के लिए कथा साहित्य को इंतजार है। 'इसलिए जरूरी है कि आदिवासी स्त्री कथा लेखिकाओं के अवदान को तो रेखांकित किया ही जाए, उनके समुचित मुल्यांकन भारतीय साहित्य को समृद्ध किया जाए, क्योंकि आदिवासी स्त्री लेखकों की रचनाएँ न सिर्फ भारतीय समाज के अदेखे बहुभाषाई और बहु सांस्कृतिक संसार को दर्ज करती हैं बल्कि पूर्वाग्रहों और गैर बराबरी से मुक्त एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की पुनर्रचना के लिए उत्प्रेरित करती हैं।'[5]

आदिवासी कथा तो वाचिक परंपरा में ही विकसित है, फिर भी महिला कथा लेखन की शुरूआत लगभग आधी सदी पहले हो चुकी है। 'एलिस एक्का हिंदी की पहली आदिवासी स्त्री कथाकार हैं। उन्होंने पचास के दशक में हिंदी मे लेखन आरंभ किया था और 1947 से शुरू हुई साप्ताहिक 'आदिवासी' की वह नियमित लेखिका थी,'[6] क्योंकि न तो एलिस जी के द्वारा और न ही उनके परिवार द्वारा कोई कहानी संगृहीत की गई इसलिए उनके कहानी संग्रह का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों को संकलित करके वंदना टेटे जी ने 'एलिस एक्का की कहानियाँ' नामक शीर्षक से संपादित किया है। एलिस जी का पूरा नाम एलिस ख्रिस्तयानी पूर्ति है। 'कहानी लिखना और विश्व साहित्य का अनुवाद करना इनकी प्रकृति थी।'[7] इस संग्रह में पहली कहानी 'वनकन्या' में बताया गया है कि प्रकृति प्रदत्त सभी जीव-जन्तु व पेड़-पौधे हानिकारक नहीं होते हैं बल्कि जो ऐसा समझते

हैं वो बहुत बड़ी भूल करते हैं। दूसरी कहानी 'दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ' है। इसके केन्द्र में दो निम्न समझी जाने वाली दलित एवं आदिवासी स्त्रियों की कहानी है। दोनों दुख-सुख में एक दूसरे के साथ खड़ी रहती हैं। यह कहानी सामूहिक अनुभूति की कहानी है। यह कहानी 1962 में प्रकाशित हुई थी। वंदना टेटे के अनुसार 'प्रकाशन के लिहाज से प्रेमचंद के बाद दलित विषय पर लिखी गई यह हिंदी की पहली दलित कहानी भी है।'[8] इनकी अगली कहानी है 'सलगी जुगनी और अंबा गाछ' यह एक बच्चे की निश्छल प्रेम की कहानी है। विकास की आँधी मे आदिवासी समुदाय वंचना का शिकार हो रहें हैं। यह कहानी आदिवासी अस्मिता की ओर संकेत कर रही है। इस संग्रह में संकलित 'कोयल की लाड़ली सुमरी' कहानी में एलिस एक्का जी तथाकथित सभ्य या बाहरी व्यक्ति को शोषक, बलात्कारी के रूप में चित्रित करती है। अपने को सभ्य कहने वाले लोग ही अपनी वासना का शिकार आदिवासी महिलाओं को बना रहें हैं। इस कहानी के माध्यम से बताया गया है कि गैर आदिवासी समाज को आदिवासी स्त्रियो के उघड़े शरीर को मनोरंजन की दृष्टि से ही देखते और उनका शारीरिक शोषण करते हैं। एलिस एक्का जी की अगली दो कहानी 'पंद्रह अगस्त, विलचो और रामू' एवं 'धरती लहरायेगी, झालो नाचेगी गायेगी' है। इसमें लेखिका का आदिवासी जीवन के सामाजिक ढ़ांचा के प्रति, सरकार के योगदान के प्रति आशान्वित दृष्टिकोण दिखाई देता है।

महिला आदिवासी कथा साहित्य की स्तंभ के रूप में जानी जाने वाली रोज केरकेट्टा के दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रोज जी के कहानी संग्रह का नाम 'पगहा जोरि-जोरि रे घाटो' (2011) और 'विरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ' (2016) हैं। इनके पहले कहानी संग्रह 'पगहा जोरि-जोरि रे घाटो' के शीर्षक का अर्थ होता है 'कतार में लौटती हुई चिडिया'। यह कहानी संग्रह हिंदी भाषा में ही लिखित व हिंदी पाठकों में बहुचर्चित भी है। इसमें 16 कहानियाँ संगृहीत हैं। इस पुस्तक से 'भँवर' कहानी विशेष रूप से प्रसिद्ध कहानियों मे से एक है, जिसमें आदिवासी महिलाओं को संपत्ति का अधिकार न देने की प्रथा के विरोध की कथा है। इस कहानी में विधवा महिला के पास कोई बेटा नहीं है, केवल बेटियाँ हैं। उसका अपनी जमीन पर आदिवासी समाज के नियमों के अनुसार भी और कानूनानुसार भी हक है लेकिन पुरुषवादी सत्ता होने के कारण विधवा स्त्री व उसकी बेटी पर अंधेरी रात में हमला कर माँ और एक बेटी को हमलावार रात भर नोचते हैं और जाते समय उसके टुकड़े-टुकड़े करके जाते हैं। छोटी बेटी इन हमलावरों से बचने में सफल होकर भी अपने हक के लिए गवाहों के अभाव में पाँच साल के बाद हाईकोर्ट के चक्कर में अनुत्तरित सवालों के भँवर में घूमती रहती है। आदिवासी समाज में भी स्त्री-पुरुष समानता के दंभ की सच्चाई अलग ही है। रोज जी ने इस कहानी में इस सच्चाई को निर्भीकता के साथ उजागर किया है। इनकी

''आदिवासी साहित्य कहने मात्र से ही उन समस्त आदिवासी समुदायों से संबंधित साहित्य का बोध होता है, जो अपने आप में एक विशाल, व्यापक एवं विस्तृत है। इस समुदाय में कई जातियाँ हैं, जो देश के विभिन्न प्रान्तों में बहु संख्या में हैं।' आदिवासी समुदाय की संस्कृति अधिकतर मौखिक ही है, जिसमें कथा, गीत-संगीत एवं नृत्य शामिल हैं। इसी बारे में कमलेश्वर जी कहते हैं कि 'भारत के पास बहुत पुष्ट एवं व्यापक लोक संस्कृति की परंपरा है। लोक संस्कृति के विकास का मूल स्रोत ही आदिम समाज की बहुआयामी कल्पना, कल्पनाशीलता और उनकी रचनाशीलता से जुड़ा हुआ है। आदिवासियों के पास मन और बुद्धि की मानवीय प्रयोगशाला रही है, जिसमें आदिम कलाओं, उत्कीर्ण पाषाण चित्रों, प्रकृति के साथ तन्मय उल्लासपूर्ण लास और नृत्य, स्वरों का समायोजन और मौखिक-वाचिक परंपरा का लोक साहित्य प्रारंभ से ही मौजूद है।'

ही 'गंध' कहानी में स्त्री, प्रतिरोध की चेतना से जागृत है। इस कहानी में नायिका छेड़खानी पर बदतमीज यात्री पर हाथ उठाती है। इसी तरह 'घाना लोहार का' कहानी में स्त्री अपने अधिकारों के लिए हमला कर जगत सिंघ का सिर और चंदरू का हाथ काट देती है। दूसरी तरफ लेखिका आदिवासी समुदाय के गुणों का उजागर करते हुए 'विरुवार गमछा' कहानी में आदिवासी हथकरघे द्वारा बना गमछा को दूसरे प्रदेश गुजरात में आदिवासी पहचान का कारण बनाती हैं। इनकी भाषा की सहजता के कारण आदिवासी प्रतिरोध भी सहज और शान्त होते हैं। 'रोज केरकेट्टा की कथा शैली सहज है। वे किसी वाद के बोझ तले दबकर नहीं आदिवासी जीवन के सच को आधार बनाकर लिखती हैं।'[9]

फ्रांसिस्का कुजूर के लेखन की भाषा कुड़ुख है। कुड़ुख एवं हिंदी में इनके एक-एक कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। इनकी हिंदी कहानी संग्रह का नाम 'मूसल' है। इनकी कहानी 'मूसल' आदिवासी समाज में संस्कृति और आधुनिकता के द्वंद्व को उभारती है। दूसरी कहानी 'आधी रात को' दो अपाहिज लोगों की कहानी है। नायिका लंगड़ी है तो नायक नपुंसक। लंगड़ेपन के कारण पिता के घर में प्यार नहीं मिला, लेकिन नपुंसक पति के घर खूब प्यार मिलता है तथा वे एक दूसरे की अपाहिजता को स्वीकार भी कर लेते हैं। आदिवासी लेखिका कोमल जी की कविता, कहानी तथा लघु कथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। इनकी चर्चित कहानी 'साहूकार की मछली' और 'पहचान' है। 'साहूकार की मछली' कहानी में मछली के संबंध में साहूकार से लड़ाई दिखाई गई है। दूसरी कहानी पहचान में आदिवासियत की पहचान को बड़ी बारीकी और भद्दे अंदाज मे मुखिया और नायिका के माध्यम से दिखाया गया है। यह एक लघु कथा है।

मेघालय राज्य की खासी आदिवासी समुदाय में विजोया सावियान जी का जन्म हुआ। इनकी भाषा खासी और अंग्रेजी है, लेकिन अनुवाद के माध्यम से हिंदी साहित्य में भी चर्चित हैं। इनका हिंदी में अनुवादित उपन्यास 'धुंध में खोए हुए लोग' है। हिंदी में अनुवादित कहानी 'सौतेला बाप', 'लंगड़ापन' (खासी) और 'बरसात की एक रात' आदि हैं। 'बरसात की एक रात' कहानी में मेघालय की युवाशक्ति के मन में उग्रवाद के पनपने की पीड़ा को एक माँ और बेटे के मनोविज्ञान से जाड़कर व्यक्त किया गया है। इनके उपन्यास 'धुंध में खोए हुए लोग' में सीमित नौकरियों के कारण आपसी संघर्ष यानी की घुसपैठ (अन्य प्रदेश के लोगों का) और मूल निवासी के हिस्से की सुविधाओं को लेकर पनपती वैमनस्यता और असुरक्षाबोध का चित्रांकन किया गया है। इसी उपन्यास में लेखिका ने मातृसत्ता में सौतेले पिताओं के कारण बच्चे के मन पर पड़ रहे असर को उकेरा है। लड़के खुद को फालतू की वस्तु समझने लगते हैं तथा कभी-कभी मातृसत्ता के इसी प्रभाव के कारण वे अनपढ़ भी रह जाते हैं। इनकी कहानी 'सौतेला बाप' और 'लंगड़ापन' खासी जनजाति पर ही आधारित हैं। 'सौतेला बाप' की नायिका लेबिआंगमॉन अपने स्कूल के समय से ही बेरिस नेईलौगस से प्रेम करती थी, लेकिन जाति अलग होने के कारण दोनों की शादी नहीं हो पायी। नायिका बेरिस के बच्चे की माँ भी बन जाती है। नायिका की शादी टोकिन बेरिन से हो जाती है। सौतेला होने के बाद भी टोकिन बच्चे वैंनवॉक को बहुत प्यार करता है तथा दोनों ने मिलकर नायिका की शादी फिर बेरिस से करवा देते हैं। पहले पति को छोड़कर अपने प्रेमी को पति बनाना मेघालय में मतृसत्ता के कारण संभव हो पाया है। वहाँ स्त्री-शक्ति मातृसत्ता के कारण जीवित है। 'लंगड़ापन' कहानी में एक बहादुर औरत कोंगतिशि की है, जो क्षेत्रीय दंगो में नायक की बहन को जान पर खेल कर बचाती है। जब नायक उसके अन्त्येष्टि के लिए जाता है, तो नायक का लंगड़ापन ठीक हो जाता है, इससे नायक की दृष्टि में बहादुर महिला का स्थान और ऊँचा हो जाता है। यह आधुनिक एवं प्रतीकात्मक कहानी है। इनका लेखन स्त्री शक्ति को पहचान दिलाता है। खासी जनजाति की एक और लेखिका एस्थर सीएम हैं। इनकी कहानी का नाम 'पानी में संस्मरण - उमखराह नदी के जीवन का एक अध्याय' है। इस कहानी की नायिका बेम एक घर में नौकरानी का काम करती है तथा उसकी माँ भी नौकरानी है, उसे भी एक पति की तलाश है। बेम कसाई के लड़के के साथ

प्रेम विवश होकर भाग जाती है। आठ साल बाद कसाई पति पाँच बच्चों की माँ बनाकर, उनके पालन पोषण का जिम्मा बेम पर छोड़कर खुद शराब और बिमारी के कारण मर जाता है। बेम किसी तरह भूख और गरीबी से लड़ते हुए वह बच्चों को पालती है। उसकी माँ अपने से बहुत छोटा पति लाती है। माँ को अपनी बेटी से ही खतरा है कि कहीं उसका पति को अपना न बना ले। उसे घर में नहीं रहने देना चाहती थी। बेम एक चाय की दुकान पर काम करते हुए बिना बताए ही कहीं चली जाती है। इस मातृसत्ता के समाज में यह स्वतंत्रता है कि वे अपने लिए पति को किसी भी उम्र चुन कर ला सकती हैं।

अरुणाचल प्रदेश के न्यीशी आदिवासी समुदाय में जन्मी जोराम यालाम नाबाम के हिंदी कहानी संग्रह का नाम 'साक्षी है पीपल' (2012) है। इसमें नौ लम्बी कहानियाँ संकलित हैं। इसमें भी 'यासो' और 'बरसात की वह रात' चर्चित कहानी है। नबाम जी का हाल ही में 'जंगली फूल' (2019) नामक एक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों पर केन्द्रित है। न्यीशी समुदाय में पुरुष, बहुपत्नी रखने वाले समाज को कई सशक्त स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता के संबंध को आदर्श घोषित करती हैं। लेखिका ने प्रगतिशील मानवतावादी दृष्टि से जनजातियों में भी नवजागरण लाने का प्रयास किया है। वीर भारत तलवार के शब्दों में 'प्रेम की महिमा का गुणगान करने वाले इस उपन्यास में कई शक्तिशाली स्त्री चरित्र हैं, जिनकी नैसर्गिकता से प्रभावित हुए बिना हम नहीं रह सकते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता के संबंध को आदर्श घोषित करने वाली यह साहसिक कृति अपनी खूबसूरत और चमत्कारिक भाषा के कारण बेहद पठनीय बन गई है।'[10] इसी तरह इनकी कहानी 'यासो' भी बहुपत्नी प्रथा पर केन्द्रित है। इसमें बहुपत्नी प्रथा की बारीकियों के बारे में बताया गया है, जो पति खेत में जितना अच्छा काम कर सकता है, उसे उतना ही पत्नी रखने की सामाजिक मान्यता है। सब पत्नियाँ पहली पत्नी के आदेशानुसार चलती हैं, पहली पत्नी ही अपने पति के लिए अन्य पत्नियों का चुनाव भी करती है। वहाँ लड़का-लड़की का ब्याह माँ-बाप की मर्जी से ही होता है, इसलिए अधिकतर लड़कियाँ उस पति को छोड़कर भाग जाती हैं। इसके बाद पिता के उम्र वाले पुरुष की दूसरी, तीसरी पत्नी बनना पड़ता है। नाबाम जी इस प्रथा को कहानी में तोड़ने को प्रयास करती हैं। यासो का भी ब्याह में दब्बू व शर्मीला पति मिला था, लेकिन यासो को बलशाली पति चाहिए था, जो उसे सुरक्षा दे सके। इसलिए यासो भागकर तमिन के खेत में मेहनत के लिए जाती है, जहाँ तमिन की पहली पत्नी उसकी मेहनत को देखकर तमिन से शादी करा देती है, उस तमिन की दो पत्नियाँ और भागकर आई थी, लेकिन यासो इस प्रथा से अपनी बेटी को भुगतने नहीं देगी। यासो चाहती है कि बेटी को दूसरी शादी न कर सुखद जीवन बिताए। 'बरसात की वह रात' कहानी सात घायल मजदूरों की कहानी है, जिनका अस्पताल पहुँचना बहुत जरूरी है पर आटो ड्राइवर के नशे में द्युत होने के कारण समय लगता है। इसमें मजदूरों की दयनीय स्थिति को भी दिखाया गया है। साथ ही इस कहानी में ड्राइवर के अनेक पत्नी होने व वैसी प्रथा के कारण स्त्री की प्रताड़ना की कथा भी समाहित है।

'साक्षी है पीपल' कहानी में अनेक पत्नी, अनेक बच्चे होने की न्यीशी समाज की प्रथा को दिखाते हुये इसमें आधुनिकता के आगमन से आदिवासी समाज का विनाश भी दिखाया गया है। जहाँ एक हवाई जहाज देखकर लोग डर जाते हैं, आपसी अंधविश्वास के कारण लड़कर मर जाते हैं, वहीं लेखिका बताना चाहती हैं कि उस स्थान पर अब हवाईअड्डा बन जाने के कारण आदिवासियों की क्या हालात होती होगी? 'उसका नाम यापी था' कहानी में यापी की पैदा होते ही शादी कन्या मूल्य लेकर कर दी जाती है, जिससे यापी के न चाहते, पति को न पसंद होने पर भी पति के घर जाना पड़ता है, क्योंकि माँ-बाप द्वारा लिया गया कन्या मूल्य इतना था कि चाहकर भी वापस नहीं कर सकती थी। इस प्रकार लेखिका बताना चाहती हैं कि स्त्री की स्थिति पति द्वारा खरीदी गयी वस्तु के बराबर हो जाती है। उसे प्रेम पाने और सहयोगिनी होने का अधिकार नहीं होता है। यापी अपने पति द्वार बलात्कृता होती है। शिक्षा के

प्रति जब उसका झुकाव होता है तो वहाँ भी अपने साथी व विश्वासी जामजा द्वारा बलात्कार का शिकार होती है, फिर भी वह जीवन से हार नहीं मानती तो शहर में अपने सहेली के पति द्वारा बलात्कृता होती है। पहले भ्रूण को तो गिरा देती है, लेकिन अंतिम बार सहेली के पति से बलात्कार होने के बाद वह बच्चे को जन्म देना चाहती है, तो आसपास का समाज उसे आत्महत्या करने पर मजबूर कर देता है। अकेली माँ बनना आज भी समाज में मुश्किल है। इसी संग्रह की कहानी 'क्या सच में वे मिले थे' में स्त्री की पति द्वारा प्रताड़ना ही प्रताड़ना है। पति कई पत्नी रख सकता है लेकिन स्त्री यदि किसी गैर पुरूष से बात कर ले, तो उसकी पिटाई व समाज द्वारा सजा बहुत ही कष्टकारी दी जाती है।

वहीं दूसरी तरफ लेखिका जोराम जी 'क्या कहेंगे लोग' कहानी में एक धनवान व बिजनसमैंन आदिवासी की कहानी बताती हैं, जहाँ बाप द्वारा बेटा-बेटी की समानता की बात तो करता है, लेकिन समय आने पर बेटों को बिजनेस में उतारने के लिए बेटी की पढ़ाई छुड़ाकर एक दूसरे बिजनेस मैंन से शादी कर दी जाती है। वही बेटी जब विधवा हो जाती है तो बाप के लिए ही बोझ बन जाती है। बेटी रूनू अपनी पढ़ाई पूरा करने के लिये कोलकाता में बूआ के घर रह देह धंधे में उतर जाती है, क्योंकि अब उसी बाप के पास बेटी से बात करने और खर्च देने के लिए समय नहीं है। लेखिका बताती है कि आधुनिकता इतना हावी हो गई है कि बाप होटल में रहकर ऐय्यासी करने के लिए जिस लड़की को बुलाते हैं, वह और कोई नहीं उसकी बेटी रूनू होती है। इस तरह से लेखिका दिखना चाहती हैं कि आधुनिकता और पैसे के कारण एक दूसरे के लिए समय नहीं है और लोगों का चारित्रिक पतन होता जा रहा है। इसी तरह की आदिवासी के बीच की समस्या लेकर इस कहानी संग्रह में तीन और कहानी संकलित हैं 'चुनौती', 'कामेश्वर बरुवा हालुआ बन गया' और 'मैं यामी हूँ'।

नगपुरिया भाषी कथाकार सरिता सिंह बड़ाईक की कहानी है 'दावेदार'। यह चिक बड़ाईक आदिवासी समूह की कहानी है। यह कहानी गाँव के आदिवासी किसान समाज में व्याप्त विकृतियों को दर्शाती है। दीकू संस्कृति आदिवासी पर हावी हो रही है। पिता के मरने पर कैसे उसके बेटे उसकी संपत्ति के दावेदार बनने के लिए झूठा दिखावा करते हैं। बढ़-चढ़ कर रोते हैं और पिता की सेवा का झूठा दंभ भर रहें हैं, पिता के जीते हुए सभी लोगों ने उन्हें अनदेखा कर दिया था। यहाँ तक की इन्हीं लोगों के कारण वे मर भी जाते हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखिका आदिवासी मूल्यों के अवमूल्यन को बचाने की अवश्यकता पर बल देती हैं। इस कहानी की शैली सुगठित तथा नगपुरिया भाषा के शब्द अधिक मिलतें है, जो आदिवासियों के धरातल से जोड़ने के लिए आवश्यक भी हैं। नगपुरी भाषा की एक और लेखिका हैं मंजु ज्योत्सना। इनके कहानी संग्रह का नाम है 'जग गबू जमीन'। इस संग्रह में चर्चित कहानी है 'प्रायश्चित', जिसमें एक पति अपने पत्नी पर किए गए जुल्मों का प्रायश्चित करता है। ऐसा प्रायश्चित केवल आदिवासी समाज ही कर सकता है, तथाकथित सभ्य समाज नहीं। नायक रिक्शा चालक है, वह नगाड़ा बजाने व नाचने में माहिर है। पूरा परिवार नाचता और गाता है और एक ही कमरे में गुजारा करता है, लेकिन उसकी दुल्हन जो आती है, वह बदसूरत व बेसुरी दोनों है, पर घर के कामों को अच्छे तरीके से करती है। वह खुद कमाकर घर के लिए पैसे लाती है। सास और पास-पड़ोस यहाँ तक की पति भी बॉझ कहता है, जो कि सच भी था तो वह सहन नहीं कर पाती है, पति द्वारा मार खाने के बाद अपने मायके जाकर आत्महत्या कर लेती है। उसके बाद नायक शराब के नशे में धुत होकर शाराब बेचने वाली को ही दुल्हन बनाकर घर लाता है, जिसके पेट में दूसरे का बच्चा है, लेकिन पति अपने अपराध बोध का प्रायश्चित करना चाहता था।

गोंड आदिवासी समुदाय से सुशीला धुर्वे जी महाराष्ट्र की निवासी हैं। इनकी चर्चित कहानी 'गाय चोर दीकू' है। इस कहानी में दीकू (बाहरी लोगो) की वजह से आदिवासी समाज का ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो रहा है, इन आदिवासियों का पशु चुराकर दीकू उन्हीं को फिर बेचते हैं। यही नहीं दीकूओं द्वारा योजनाबद्ध तरीके से जंगलो से लकड़ी चोरी, बाजारों से पशुओं की चोरी और गाँव-घरों से स्त्रियों की चोरी लगातार कर

रहें हैं। आदिवासी समाज की पुरखा परंपरा, अस्तित्व और संस्कृति पर खतरा नजर आ रहा है। इस खतरे से यह कहानी भलीभाँति अवगत कराती है। गोंडी समाज पर महाराष्ट्र की ही लेखिका जीवन उषा किरण अन्नाम ने अपनी कहानी 'भूख' में यह प्रश्न उठाया है कि एक तरफ एक वर्ग विशेष के लिए खाने की प्लेटे सजाई जा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ अधिकांश लोग भूख मिटाने के लिए क्यों तरस रहे हैं? वे सब भूख से मर रहे हैं। रोंगटे खड़े कर देने वाली ऐसी ही सच्ची घटना का चित्रण इस कहानी में किया गया है। यह कहानी बाढ़ में फंसे लोगों की मार्मिक राजनीतिक कहानी है। महाराष्ट्र की ही गोंडी भाषी कथाकार वसुधा मंडावी ने स्त्री सशक्तिकरण की कहानी 'इरुक' है। इरुक नायिका के माध्यम से स्त्री अपने अपमान का बदला स्वयं लेती है, किसी पर निर्भर नहीं होती है। 'यह कहानी अपने शिल्प और भाषा के लिहाज से महत्वपूर्ण बन पड़ी है। यह एक बेमिसाल आदिवासी कहानी है, जो न सिर्फ अपने कटेंट के लिहाज से खूबसूरत है बल्कि शिल्प के लिहाज से भी चकित करती है।' [11]

तेमसुला आओ मूलत: अंग्रेजी भाषा की लेखिका हैं, लेकिन हिंदी अनुवादित चर्चित कहानी 'तीन औरतें' में ऐसी तीन औरतों का वर्णन है, जिनके साथ कोई न कोई घटना जुड़ी है। लियोन्तुला की शादी हो चुकी थी, लेकिन एक दिन मेरेनसाशी उससे बलात्कार करता है, इस बात से लियोन्तुला को अपराधबोध होता है कि वह बलात्कार का विरोध उतनी शिद्दत से क्यों नहीं किया जितना करना चाहिए था। फिर बाद में वह मेरेनसाशी की बेटी को जन्म देती है, नाम है मेदेम्ला। वह बड़ी होकर मेरेनसाशी के बेटे से ही प्रेम करने लगती है। जब लियोन्तुला को पता चलता है तो पिता से बात करके यह शादी नहीं होने देती। मेदेम्ला बिना शादी के ही बच्ची को गोद लेकर रहने लगती है। वह बच्ची मार्था कक्षा आठ में ही अपौंक से शारीरिक संबंध बनाकर उसी से शादी कर लेती है। जम्मू के लेह निवासी संरिंग छोरोल की कहानी 'अखरोट का दरख्त', एक बच्ची के प्रकृति प्रेम की अतिमार्मिक और दिल को छू लेने वाली रचना है। इस कहानी के माध्यम से प्रकृति के मासूमियत और कोमलता को यह आधुनिक सभ्य समाज निर्ममता से रौंद रहा है। यह कहानी इससे सावधान और बचाने की आवश्यकता पर बल देती है। संताली भाषा की कहानी 'सच्चा सुख' प्रीती मुर्मू की कहानी गाँव के बाहर शहरों में जा बसे आदिवासियों और गाँव में रहने वासे आदिवासियों के सोच के अंतर का विस्तृत वर्णन है। शहरी आदिवासियों के जीवन शैली में मूल्यों का ह्रास हो गया है। दमयंती सिंकू की कहानी 'सीने के अजूबे प्रेमी', एक अपाहिज युवती की कहानी है। यह हो आदिवासी समुदाय पर केंद्रित है। इसमें रोज तंग करने वाले दो युवक के सामने जब लड़की शादी की

शर्त रखती है तो वे भाग खड़े होते हैं। यह कहानी मनचलों के प्रेम और छल-कपट को उजागर करती है।

आदिवासियों में भ्रूण हत्या की परंपरा नहीं थी, लेकिन अब धीरे-धीरे फैल रही है इसी को दर्शाते हुए कुडुख भाषी शांति खलको की कहानी 'मेरे बाप की शादी' है। नायिका अपने बाप की दूसरी शादी को लेकर चिंतित है, क्योंकि उसके बाप ने पहली पत्नी से भ्रूण हत्या कराते समय जानबूझकर मार डाला था।

इसके अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कुछ लेखिकाओं की कहानियाँ और उपन्यास समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। अन्य कहानियाँ में ममांग देई कृत 'देवों की वर्षाभूमि', ज्योति लकड़ा कृत 'कोराइन डूबा', मीरा रामनिवास कृत 'अंतिम टारगेट', शोभा लिंबू यल्मों कृत 'कारोबार' और 'नम्चु दाज्यु', येसे दरसे थोंगसी कृत 'आईना' आदि हैं। आदिवासियत को आधार बनाकर वंदना टेटे द्वारा प्रकाशित कहानी संग्रह 'लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ' है। इन लेखिकाओं के अलावा हिंदी कथा साहित्य में अदिवासी समाज की चिंतनधारा को आगे बढ़ाने के लिए वासवी कीड़ो, दयामनी वार्लो, बिटिया मुर्मू, ग्रेस कुजूर, सावित्री बड़ाईक, सुषमा माथुर, अल्मा ग्रेस बारला, वारीपदा, दीपा मिंज, मिलनरानी जमातिया, कुसुम माधुरी टोप्पो, डॉ. मेरी हॉसदा, सुशीला सामद, थसो क्रापी (कार्वी लेखिका) तथा शान्ति सवैया आदि आदिवासी लेखिकाएं प्रयासरत हैं।

निष्कर्ष :

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि आदिवासी साहित्य में आदिवासी महिलाओं का योगदान कम ही सही पर महत्वपूर्ण है। आगे महिला कथाकारों में लोग अपना योगदान दे रहें हैं। आदिवासी महिला कथाकारों ने आदिवासी की प्रकृति प्रेम, उनके जीवन मूल्य, आदिवासी परंपरा को प्रगतिशील बनाने और उनके शोषण के विरुद्ध पुरजोर रूप से आवाज उठाई है। इसके साथ ही आदिवासी समाज में महिलाओं की धरातलीय स्थिति से अवगत कराया है, उनके दैहिक और मानसिक एवं आधिकारिक शोषण के प्रतिरोध स्वरूप अपनी आवाज मुखर की है, इनके न्याय के पक्ष में खड़ी हैं। 'पारिवारिक और सामाजिक जीवन की नित नूतन समस्याएं और प्रकृति से साहचर्य की प्राचीन परंपरा आदिवासी साहित्य का ठोस आधार है, जिस पर आदिवासियों का प्राचीन तथा समकालीन साहित्य टिका हुआ है और अब यह आदिवासी साहित्य हिंदी के माध्यम से देश और दुनिया मे छा जाने की हैसियत बनाने में जुटा है।'[12] ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. भारत का आदिवासी स्वर, रमणिका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2018, पृष्ठ-188
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ- 27
3. पूर्वोत्तर का आदिवासी सृजन का स्वर, सं. रमणिका गुप्ता, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2018, पृष्ठ-10
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2008, पृष्ठ-06
5. एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2015, पृष्ठ-22
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ-9
7. आदिवासी साहित्य के लिए आदिवासी साहित्य जानना जरूरी है, www.prabhatkhabar.com/news/ranchi/story/619540.htm, 03 जुलाई 2017
8. एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण-2015, पृष्ठ-28
9. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगासहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन,दिल्ली, पुनर्मुद्रण-2019, पृष्ठ-73
10. जंगली फूल, जोराम यालाम नाबाम, अनुज्ञा बुक्स पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण-2019, आवरण पृष्ठ
11. आदिवासी कहानी संचयन, सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019, पृष्ठ-22
12. आदिवासी विमर्श : अवधारणा और आन्दोलन, कुमार कमलेश, तेज प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2014, पृष्ठ-239

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

इंतजार

'अरी! तुम कब सोओगी'

'बस थोड़ी देर बाद, ये कुछ सिलाई बची है, तुम सो जाओ।'

प्रभु! कल एक दिन अच्छा बीते, कहकर बूढ़ा गोविंद सो गया।

अभी वृंदा दो घंटे का काम लेकर बैठी है।

सवेरा हुआ।

झटपट कुछ निपटा कर गोविंद शहर जाने को तैयार हो गया है। इतने में आवाज़ आई..

'जाते जाते भोलेनाथ के लिए भोग देते जाना पुजारी जी को, पन्नी में रख दिया है सिलबट्टे के ऊपर वाले ताक में हैं।'

'क्यों? तुम नहीं जा रही आज?'

'कल रात लंबे समय तक लगातार बैठ गई तो ऐसा लग रहा मानो कोई जालिम कमर की हड्डी पर लोहे का कील ठोंक रहा है।'

'अच्छा! आराम कर लो। मैं आते समय पीसी हुई हल्दी ले आऊंगा, इस बार नहीं पीसना पड़ेगा तुम्हें।'

'हाँ, वो तुम्हारे भत्ते का भी पूछ आना, कब तक बढ़वा देंगे।'

'उसी के लिए तो जा रहा हूं खास।'

'अस्सी के हुए आठ महीने हो गए, पहले से ये लोग करा देते तो आठ महीने के पाँच-पाँच सौ ज्यादा मिलते, अब अगर आना-कानी करें तो पलथी मार बैठ जाना, जब काम कुछ आगे बढ़े तभी उठना...बता रही हूं।'

गोविंद चला।

वृंदा अपने में फुसफुसा रही है, 'ये महंगाई और इतनी सी पेंशन, कैसे घर चले, वो भगवान बड़ा है कि मेरी सिलाई कुछ-कुछ चल रही है। खैर, हम लोगों का सुनने वाला कौन है। बेटा हरिश! कब तक तेरे बाबूजी पैसे भेज पाएंगे। भगवान करें तेरी डिग्री जल्दी पूरी हो जाए और कहीं तुझे काम मिल जाए तो मैं तेरी शादी करा के गंगा नहाऊं।'

'पाँच साल होने को आया कोई खबर नहीं दी हरिश ने इस बारे में और ये लोग गरीब की मजबूरी पे तनिक तरस नहीं खाते, बेचारे बूढ़े इंसान को आठ महीने से भगा रहे हैं। ऐसे में कहते हैं झल्लाती हूं, बड़बड़ाती हूं।'

ताई! मैंने बछड़े से दूर गाय को आंगन में बांध दिया है और ढोल के ऊपर घास भी रख दिया है। मैं चलता हूं, आज मेरी सास आ रही है, माँ ने कहा है तुम भी आना दोपहर को।

हाँ, धरम! आऊंगी, पर बेटा मेरी ये गाय और बछड़े दोनों को बेच दूं सोच रही हूं, अब तन में ताकत नहीं बची कि इनको सम्हाल सकूं। देखना कोई ले जाए दोनों को अच्छे दाम में तो बताना।

इतनी भी कमजोर कहाँ हुई हो ताई। ये लो ताऊजी आ गए। ठीक है मैं चलता हूं।

बाहर बरामदे में चारपाई पर गोविंद हाँपते हुए बैठ गया। नीचे रखे लोटे से मुंह धोकर पानी पीया। लेटने ही जा रहा था कि फिर उठकर घर के भीतर चला गया।

वृंदा पूछती है, 'क्या हुआ इतनी जल्दी लौटे? काम हो गया?'

'नहीं, हरिश की माँ। वो बाबू आज छुट्टी पर हैं, सोमवार को जाऊंगा, कह रहे थे कि सोमवार काम हो जाएगा।'

'अच्छा ठीक है। तुमको याद है? हरिश का पाँचवाँ साल इस नवरात्र को पूरा हो रहा है। कुछ बात हुई उससे?'

'हाँ, हुई।'

'क्या बात हुई? कब आ रहा है वो?'

'उसकी डिग्री पूरी नहीं होगी अभी, काम तो रात-दिन एक करके कर रहा है, पर और छह महीने लगेंगे, हो सकता है एक साल..।'

इतना कह कर गोविंद एक लंबी सांस छोड़ता है और वृंदा सामने टंगी कलेंडर में डूब जाती है। ❑

रघुनंदन महापात्र

ग्राम : तरभा, रथपडा
जिला : सुवर्णपुर, उड़िसा
पिन : 767016, मो. 9040210935
ई-मेल : vipul2661995@gmail.com

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতৰ কাব্যিক বিচাৰ ঃ এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন

ড° স্নিগ্ধা কটকী

সহকাৰী অধ্যাপক
স্নাতকোত্তৰ অসমীয়া বিভাগ
ডিমৰীয়া মহাবিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৮৬৬৯১-২৯৮৩৭
ইমেইল-katakysnigdha@rediffmail.com

১. সাৰাংশ ঃ

সাহিত্যত ৰসে পাঠকৰ মন আহ্লাদিত কৰে। ৰস অবিহনে সাহিত্যৰ সোৱাদ উপলব্ধি নহয়। সাধাৰণভাৱে ৰসৰ অৰ্থ আৰু সাহিত্যৰ নন্দনতত্ত্বৰ ক্ষেত্ৰত ৰস শব্দৰ অৰ্থ সুকীয়া। ৰস শব্দই সৰ্বসাধাৰণৰ মনত স্বাভাৱিকতে সোৱাদ বা আনন্দক নিৰ্দেশ কৰে। আনহাতে ছন্দ শব্দৰ সাধাৰণ অৰ্থ হ'ল লয়। ই বন্ধনৰ কাম কৰে। যিকোনো সাহিত্যকৰ্মৰ বাবে ছন্দ অপৰিহাৰ্য। পদ্য বা কবিতা সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰত ছন্দই গুৰুত্বপূৰ্ণ অৱদান আগবঢ়াই আহিছে। সাহিত্য আলোচনাত অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰা অলংকাৰ চৰ্চাই গুৰুত্ব লাভ কৰি আহিছে। কাৰণ অলংকাৰ এনে এক মাধ্যম যাৰ জৰিয়তে সাহিত্যৰ বাহ্যিক, আভ্যন্তৰীণ সৌন্দৰ্য প্ৰকাশ পোৱাৰ উপৰি উৎকৃষ্টতাৰ মানো নিৰূপন কৰা হয়। যিয়ে যিকোনো এবিধ সাহিত্যক অলংকৃত কৰিছে এক অৰ্থত সিয়ে অলংকাৰ। বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতবোৰত ৰস, ছন্দ, অলংকাৰ কেনেধৰনে প্ৰতিফলিত হৈছে তাৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন উক্ত প্ৰবন্ধটোত আলোচনা কৰা হ'ব।

২. সূচক শব্দ ঃ বিহুগীত, ভাওৱাইয়া, চট্‌কা, ৰস, ছন্দ, অলংকাৰ।

২.১. আৰম্ভণি ঃ

উৰ্বৰতা আৰু প্ৰজননৰ প্ৰতীকী লোক উৎসৱ হ'ল বিহু। প্ৰকৃতিৰ লগত সংগতি ৰাখি কৃষিজীৱী সমাজে ব'হাগ মাহত বিহুগীত গাই নাচে। এক অৰ্থত নতুন বছৰ এটাক গীত গাই নাচি আদৰি আনে যাতে পুনৰ নৱ উদ্যমেৰে সৃষ্টি কাৰ্যত আত্মনিয়োগ কৰিব পাৰে। গ্ৰাম্য কৃষক জীৱনৰ পটভূমিত ৰচিত বিহুগীতবোৰ ক্ৰমে জনজাতীয় স্তৰৰ পৰা সামন্তযুগীয় ইতিহাস অতিক্ৰম কৰি বৰ্তমান বিশাল আয়তন লাভ কৰিছে। ব'হাগ বিহুৰ অনুষংগত গোৱা বিহুগীত আৰু নাচ ঘাইকৈ উজনি অসমত প্ৰচলিত যদিও এই গীতখিনি বৰ্তমান সমগ্ৰ অসমলৈ সম্প্ৰসাৰিত হৈছে। আহোম ৰজাঘৰৰ পৃষ্ঠপোষকতা আৰু পৰিৱেশনৰ থলী মঞ্চ-অনাতাঁৰ দূৰদৰ্শন আদি আধুনিক প্ৰচাৰ মাধ্যমেই হ'ল ইয়াৰ মূল কাৰণ। বিহুগীতত কৃষিজীৱী লোক জীৱনৰ লগতে সমসাময়িক জীৱন চিত্ৰৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। আনহাতে ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰ প্ৰাচীন কামৰূপৰ নামনিৰ

পশ্চিম অংশৰ জনমানসৰ হৃদয়ৰ গান। কোচ-ৰাজবংশী জনগোষ্ঠী আৰু পশ্চিম অসমৰ শ্ৰমজীৱী লোকৰ ভাবোচ্ছ্বাস প্ৰকাশৰ সহজ মাধ্যম স্বৰূপে এই গীতিশৈলীৰ প্ৰবহমানতা আছে। মাহুত, মৈষাল, গাড়ীয়াল, নাৱৰীয়া আদি শ্ৰমভিত্তিক ৰূপত বিভাজিত ব্যক্তিসকলৰ জীৱন পৰিক্ৰমা কেতিয়াবা ভাবগধুৰ হৈ ভাওৱাইয়া ৰূপেৰে আৰু কেতিয়াবা দৈনন্দিন জীৱনৰ কাজিয়া-পেচাল, আসক্তি আদি চতুলতাৰে চট্‌কা ৰূপে প্ৰকাশ পাইছে।

৩. তুলনামূলক অধ্যয়ন ঃ

৩.১. ৰস ঃ

বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতৰ কেন্দ্ৰীয় বিষয় প্ৰেম। প্ৰেমগীত হোৱা সত্বেও সাংঘাতিক ধৰণে প্ৰাচীন অসমৰ প্ৰকৃতি জগত, সম্পদ, জীৱনশৈলী আদি সকলোবোৰ প্ৰেমৰ লগত যুক্ত হৈ পৰিস্ফুট হৈছে। স্বাভাৱিকতে চহাকবিয়ে শৃংগাৰ বা প্ৰেমৰ বিভিন্ন ভাবানুভূতি প্ৰকাশৰ বাবে প্ৰকৃতিৰ ভিন্ন পৰিৱেশ শব্দালংকাৰ আৰু অৰ্থালংকাৰৰ মাজেৰে প্ৰকাশ কৰিছে। এই কথাও সত্য যে চহা কবিয়ে কোনো নিৰ্দিষ্ট অলংকাৰ শাস্ত্ৰৰ নীতি প্ৰয়োগ নকৰাকৈ ভাবৰ স্বতঃস্ফূৰ্ত ৰূপ প্ৰকাশ কৰিছে। পৰৱৰ্তী সাহিত্য আলোচকসকলেহে অলংকাৰৰ প্ৰয়োগ নীতি অনুসাৰে হৈছেনে নাই সেয়া আলোচনা কৰিছে।

এই দুই শৈলীৰ গীতত শৃংগাৰ ৰসৰ ভিন্নৰস্থা পৰিলক্ষিত হৈছে। তুলনামূলকভাৱে বিহুগীতত পূৰ্বৰাগৰ সংখ্যা অধিক পোৱা গৈছে। কাৰণ বিহুগীতবোৰ প্ৰাক্ বৈবাহিক স্তৰৰ গীত। সেয়ে বসন্তৰ সময়ছোৱাত ডেকা-গাভৰুয়ে কোনো এক ঠাইত দেখা-দেখি হোৱাৰ পাছত দুয়ো-দুয়োৰে গুণ, ৰূপ-লাৱণ্য স্মৰণ কৰি হৃদয়ত প্ৰেম ভাবৰ সঞ্চাৰ হোৱা গীতৰ সংখ্যাই অধিক। যেনে —

লুইতৰ বালি বগী ধকেধকি
কাছুই কণী পাৰে লেখি,
গাতে জুই জ্বলে সৰিয়হ বাগৰে
ধনক পানী ঘাটত দেখি। (ভূএ৷ ৫১)

ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতত পানী আনিবলৈ যোৱা ঘাটত নাৱৰীয়াজনক বা কোনো পল্লী যুৱকক দেখি জন্মা অনুৰাগৰ ছবি আছে যদিও তাৎপৰ্যপূৰ্ণভাৱে কমকৈ পৰিলক্ষিত হয়। কাৰণ শৃংগাৰ ৰস প্ৰধান যদিও এই গীতৰ মূল ৰস হ'ল করুণ। সেয়ে অনুৰাগৰ ছবি থকাতকৈ বিচ্ছেদৰহে ছবি অধিক ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। প্ৰকৃতিয়ে নিজে সৃষ্টি কৰি দিয়া পৰিৱেশৰ গইনা লৈ ডেকা-গাভৰুৰ দেহ-মনে জীৱনসংগী বিচাৰে আৰু তাৰ ফলত মনে বিচৰাজনক দেখা পাই তেওঁৰ ৰূপ মানস কল্পনাত অংকন কৰি থকা দৃশ্য সৰ্বাধিকভাৱে বিহুগীতত থূপ খাই আছে।

আনহাতে, মান অৱস্থাৰ চিত্ৰণ দুয়োবিধ গীতত চহাকবিয়ে চিত্ৰধৰ্মীৰূপত উপস্থাপন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। সাধাৰণীকৰণৰ মাজেৰে জনা যায় যে, প্ৰিয়জনৰ ওচৰত সাধাৰণতে নাৰীৰ মান-অভিমান কিছু পৰিমাণে পুৰুষতকৈ বেছি। উভয় গীতবোৰত বিশেষকৈ নায়কজনৰ আগত নায়িকাৰ মান-অভিমানহে প্ৰকাশ পোৱা দেখা গৈছে। বিহুগীতত যিহেতু চাৰিশাৰীৰ মাজতে প্ৰতিপাদ্য ভাবটো ফুটাই তোলা দেখা যায়, সেয়ে নায়িকাগৰাকীয়ে যে নায়কৰ প্ৰতি মনে মনে অভিমান কৰি আছে সেয়াহে কেৱল জানিব পাৰি। কি কথা বা কেনে পদ্ধতিৰে নায়কে নায়িকাৰ অভিমান নিৰাময়ৰ চেষ্টা কৰে তাৰ কোনো ছবি বিহুগীতত প্ৰস্ফুটিত হোৱা দেখা নাযায়। তাৰ পৰিৱৰ্তে ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতত অতি কম সময়তে অভিমানী নায়িকাৰ অভিমান ভাঙিবলৈ নায়কে কৰা প্ৰচেষ্টাৰ ছবিও দেখা গৈছে। এনে ভাবৰ উদাহৰণ পূৰ্বে উল্লেখ কৰা হৈছে। প্ৰবাস অৱস্থাৰ চিত্ৰণ বিহুগীতত আছে যদিও তাৰ বেদনাবোধে শ্ৰোতা-পাঠকৰ মনোজগত ভাবগধুৰ কৰি চিন্তাম্বয়ৰ গভীৰতালৈ লৈ যোৱা পৰিলক্ষিত নহয়। তদুপৰি বিহুগীতবোৰত প্ৰবাস অৱস্থাৰ চিত্ৰণ ইংৰাজৰ আগমনৰ পাছত চৰকাৰী কামত গাঁৱলীয়া ডেকা নিয়োজিত হোৱাৰ সময়ত প্ৰিয়জনক এৰি জীৱিকাৰ উদ্দেশ্যে চহৰত থাকিবলগীয়া হওঁতেহে দৃষ্টিগোচৰ হৈছে। কিয়নো বিহুগীতবোৰ অধ্যয়ন কৰিলে ইয়াৰ নায়ক-নায়িকা একেখন গাঁৱৰ বা কাষৰীয়া গাঁৱৰ বাসিন্দা বুলি অনুধাৱন কৰিব পাৰি। কিন্তু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতবোৰৰ বিষয়বস্তুৱে প্ৰমাণ কৰিছে যে ইয়াৰ নায়কে হাতী বশ কৰা, ম'হৰ পাল ৰখীয়া, দূৰণিলৈ বণিজলৈ যোৱা ইত্যাদি কৰ্মসম্পাদনৰ বাবেই যাবলগীয়া হৈ আহিছে। সেয়ে প্ৰবাস অৱস্থাৰ অনেক চিত্ৰণ এই গীতবোৰত প্ৰকাশ পাইছে। পুনৰ মিলনৰ

আকাংক্ষাত বাট চাই ৰোৱা নায়িকাৰ হৃদয়ৰ ভাবগধুৰ অৱস্থাৰ চিত্ৰণে শ্ৰোতা-পাঠকক গভীৰ বেদনাৰে সিক্ত কৰি পেলোৱা দেখা গৈছে। এনে কাৰণতেই বিহুগীততকৈ ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতত প্ৰবাস অৱস্থাৰ পৰিমাণ বেছি হোৱাৰ উপৰি গভীৰ ব্যঞ্জনাময়ীও।

একেদৰে কৰুণ বিপ্ৰলম্ভ শৃংগাৰ ৰস উভয় গীতত উদ্ৰেক হোৱা দেখা গৈছে। বিহুগীতৰ নায়ক-নায়িকাৰ প্ৰেমৰ মাজত সমাজ, জাতি-কুল, ধনী-দুখীয়া ইত্যাদি কাৰণবোৰে প্ৰাচীৰৰ সৃষ্টি কৰাৰ বাবে প্ৰেমিকযুগলৰ মনেৰে কৰুণ বিপ্ৰলম্ভ শৃংগাৰ ৰস নিৰ্গত হয়। অৰ্থাৎ অথন্তৰ হোৱাৰ কাৰণটোৰ প্ৰতি খেদোক্তি প্ৰকাশ পোৱা পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে দুবেলা-দুমুঠি খুৱাব নোৱাৰাৰ বাবে নায়কৰ পৰা ঘৰখনে নায়িকাক বিচ্ছেদ কৰোৱা দেখা যায়। তাৎপৰ্যপূৰ্ণভাবে ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতবোৰত পূৰ্বোল্লিখিত কাৰণতে নায়ক-নায়িকাৰ বিচ্ছেদ ঘটাই ঘৰখনে নায়িকাক অন্য পুৰুষৰ সৈতে বিবাহপাশত আবদ্ধ কৰায় যদিও নায়িকাই সঞ্চিত যৌৱন কেৱল তেওঁৰ পূৰ্বপ্ৰেমিকৰ বাবেহে বুলি গীতত ভাব প্ৰকাশ কৰিছে। কৰুণ বিপ্ৰলম্ভই পুনৰ্মিলনৰ ইংগিত দিয়ে বুলি ইতিমধ্যে উল্লেখ কৰা হৈছে। পূৰ্বে উল্লেখ কৰি অহা কৰুণ বিপ্ৰলম্ভৰ গীতটোত নায়িকা গৰাকীয়ে পিঞ্জৰাত মইনা চৰাই বন্দী কৰি থোৱাৰ দৰে তাইৰ ৰূপ-যৌৱনো বান্ধি প্ৰেমিক বন্ধুৰ বাবে সঞ্চয় কৰি থোৱা কথাই কেতিয়াবা হ'বলগীয়া পুনৰ্মিলনৰ ইংগিতৰ দ্যোতনা বহন কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। সম্ভোগ শৃংগাৰ ৰস উভয় গীতত কম পৰিমাণে দেখা গৈছে যদিও সেয়াও আংশিক বুলিহে ক'ব পাৰি। প্ৰেমৰ ভিন্নৱস্থা গীতবোৰত প্ৰকাশ পালেও সম্ভোগ অৱস্থাৰ বৰ্ণনা তুলনামূলকভাৱে কম।

উভয় গীতত কৰুণ ৰস প্ৰকাশ পাইছে যদিও ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতৰ মূল আবেদনস্বৰূপে কৰুণ ৰসে আগস্থান লাভ কৰিছে। বিহুগীতত প্ৰকাশিত কৰুণ ৰস ক্ষন্তেকীয়া। কিন্তু ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতত নিৰ্গত হোৱা কৰুণ ৰসে শ্ৰোতা মাত্ৰকে সাগৰৰ গভীৰতাৰ দৰে ভাবৰ গভীৰ স্থানলৈ লৈ যাবলৈ সক্ষম হৈছে। কিয়নো দৈনন্দিন জীৱন-যাত্ৰাত পুৰুষ-নাৰী উভয়ে সংগবিহীন ৰূপত আগবাঢ়িবলগীয়া অৱস্থাৰ চিত্ৰণ এই গীতবোৰত প্ৰকাশ পাইছে। পংকিলময় পথ অতিক্ৰম কৰি জীৱিকাৰ তাড়নাত কৰ্মৰত অৱস্থাত বাৰুকৈয়ে প্ৰিয়জনৰ ভাব-চিন্তাই নায়কক আমনি কৰি ভাবগধুৰ সুৰ নিৰ্গত কৰায়। নাৰীয়েও সমস্ত ত্যাগ স্বীকাৰ কৰি প্ৰিয়জনক কৰ্মক্ষেত্ৰলৈ পঠিয়ায় কিন্তু ভিতৰি নিজে দহি মৰা সুৰো স্বাভাৱিকতে ভাবগধুৰ। সেয়ে শৃংগাৰ ৰসৰ ভিন্ন অৱস্থা এই গীতবোৰত মূৰ দাঙি উঠিলেও সেইবোৰে মূল কৰুণ ৰসক অতিক্ৰম কৰি উচ্চস্থান লাভ কৰিব পৰা নাই। আনহাতে, অৱস্থাভেদে দুই-এঠাইত উভয়গীতৰ মাজেৰে বীৰ, অদ্ভুত, হাস্য ৰস নিৰ্গত হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। কিন্তু চট্‌কাৰ বিষয়বস্তু ব্যংগধৰ্মী হোৱা বাবে এইবোৰত পোনপটীয়াভাৱে হাস্যৰস নিৰ্গত হোৱা দেখা যায়।

৩.২. ছন্দ ঃ

লোকগীত বা কবিতামাত্ৰেই ছন্দোময় ৰূপৰ সমষ্টি। ছন্দৰ লয়লাসৰ বাবেই যিকোনো লোকগীত এবাৰ শুনিলে সি স্বাভাৱিকতে মনোজগতৰ পৰা সততে আঁতৰি নাযায়। এইক্ষেত্ৰত বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰৰো ছন্দৰ মোহনীয়তা ব্যতিক্ৰম নহয়। উভয় গীতবোৰত চহা কবিয়ে ছন্দৰ অক্ষৰ সংখ্যাৰ প্ৰতি মন নিদিয়া পৰিলক্ষিত হয়। যিহেতু লোকগীত মাত্ৰেই স্বতঃস্ফূৰ্তভাবৰ প্ৰকাশ মাথোন; সেয়ে ছন্দৰ অক্ষৰ সংখ্যাৰ প্ৰতি মন নিদিয়াটোৰেই স্বাভাৱিক বুলিব পাৰি।

স্বয়ংসম্পূৰ্ণ চাৰিশৰীয়া বিহুগীতবোৰত ছন্দৰ বিচিত্ৰতা দেখা নাযায়। সচৰাচৰ দেখা গৈছে যে ছন্দ মিলাবৰ বাবে বিহুগীতৰ প্ৰথম চৰণত উপৰুৱা কথা দি দ্বিতীয় চৰণতহে অভিপ্ৰেত ভাবটো প্ৰকাশ কৰা হয়। এনেদৰে ছন্দ মিলাবৰ হেতুকে চহাকবিয়ে দুলড়ী ছন্দকে ব্যৱহাৰ কৰিছে। দুলড়ী ছন্দৰ আৰ্হিত ৰচিত বিহুগীতবোৰত ছন্দ বা বান্ধনীৰ ৰক্ষা কৰা কৰ্ম চহাকবিয়ে হঠাৎ দেখা বা মনলৈ অহা কিছুমান শব্দ বা বাক্যৰ জৰিয়তে কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ উপৰি বিহুগীতৰ ছন্দই সুৰ নিয়ন্ত্ৰণ কৰাতো ভূমিকা লৈছে। নকুল চন্দ্ৰ ভূঞাৰ মন্তব্য এইক্ষেত্ৰত প্ৰণিধানযোগ্য। "... সেই সুৰবিলাক ধৰোঁতে কিছুমান শব্দ বা বাক্য যেনে, ৰহিলা ঐ, অ কলী বান্ধৈ ঐ, জয় মালতী ফুলে ল, হায় মইনা, ধন আদি গাওঁতাই যোগ কৰি লয়।" (ভূঞা ২২৫)

ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰৰ ক্ষেত্ৰত ছন্দৰ কিছু ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হয়। অৰ্থাৎ পদ আৰু দুলড়ী দুয়োবিধ ছন্দৰ আৰ্হিত এই গীতবোৰ ৰচিত হোৱা দেখা গৈছে। গহীন ভাওৱাইয়াবোৰ গাওঁতে কোন ঠাইত ছন্দ পৰিব বা উঠিব সেয়া শ্ৰোতাগৰাকীয়ে শুনি থকা অৱস্থাত হে অনুধাৱন কৰিব পাৰে। বিলম্বিত লয়েৰে ভাওৱাইয়াবোৰ আগবাঢ়োঁতে দোতৰাৰ ধ্বনিৰ সৈতে ছন্দ একাত্ম হৈ থাকে। টানি টানি সুৰৰ গতিয়ে ছন্দ নিয়ন্ত্ৰণ কৰা সময়ত শ্বাস-প্ৰশ্বাসৰ ভূমিকাৰ প্ৰাধান্যও যে সৰ্বাধিক সেয়া গীতবোৰ শুনি সাধাৰণীকৰণৰ মাজেৰে জানিব পাৰি।

৩.৩. অলংকাৰ ঃ

শব্দালংকাৰ আৰু অৰ্থালংকাৰৰ বৈচিত্ৰ্যময় ৰূপ বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰত প্ৰয়োগ হৈছে। ধ্বনিগত আৰু ৰূপগত ভিন্ন দিশ অতি সূত্ৰৈ আৰু কৌশলপূৰ্ণভাৱেৰে সু-সমন্বয় সাধি চহা কবিয়ে অনুপ্ৰাস অলংকাৰৰ সৃষ্টি কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। এইক্ষেত্ৰত দুয়োবিধ গীতে প্ৰতিনিধিত্ব কৰা ভাষাৰ বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ ৰূপ উল্লেখযোগ্য বুলিব পাৰি। বিহুগীতবোৰ বসন্ত ঋতুভিত্তিক হোৱাৰ বিপৰীতে ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰ বিভিন্ন ঋতুৰ অধীন আৰু তাতে নাৰীসংগতিবিহীন কোনো বন্ধু বা সখীৰ ৰসোত্তীৰ্ণ প্ৰকাশ হোৱা বাবে অলংকাৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হয়। উপমা অলংকাৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত ভিন্নতা প্ৰস্ফুটিত হোৱা দেখা গৈছে। বিহুগীতত বিশেষকৈ ভাবৰ গভীৰতা কমকৈ প্ৰকাশ পাইছে। প্ৰণয়ীযুগলৰ প্ৰেমে শ্ৰোতা-পাঠকক ভাবগধুৰ আৱৰণেৰে ঢাকি ৰাখিবলৈ বিহুগীতত সক্ষম হোৱা নাই। এইখিনিতে পদ্মধৰ চলিহাই *বহাগী* গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰা মন্তব্য প্ৰণিধানযোগ্য। “কিছুমান গীতত প্ৰণয়ৰ গভীৰতা আৰু ভাবপ্ৰৱণতা (sentimentalism) প্ৰকাশ পাইছে; কিন্তু আনবিলাকত এই প্ৰণয় মাত্ৰ এটি ক্ষণস্থায়ী আবেগ (passion) স্বৰূপেহে ফুটি উঠিছে মাথোন।” (ভূঞা, পাতনি) বিহুগীতত প্ৰণয়ী ডেকাজনে নায়িকাক নাপাই খৰি শুকুৰাদি শুকাই যোৱা অৱস্থাৰ অথবা বেজাৰত হোৱা দেহৰ ছট্‌ফটনি নিৰ্দেশ কৰিবলৈ জালুক-জলকিয়াৰ পোৱণিৰ সৈতে ৰিজনি দিয়া দেখা গৈছে। এনে ৰিজনিবোৰে শ্ৰোতা-পাঠকৰ মনত ক্ষন্তেকীয়া ক্ৰিয়া কৰি পখিলাৰ দৰে আঁতৰি যায়। কিন্তু ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰৰ উপমাই পাঠক-শ্ৰোতাৰ মন-মগজুত ক্ষণিকৰ বাবে ক্ৰিয়া কৰি গভীৰ ব্যঞ্জনাময়ী জগতলৈ লৈ যোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে ভাওৱাইয়া গীতৰ এফাঁকি তলত তুলি ধৰা হ'ল —

(ওৰে) খোপতে নাই ৰে কৈতৰ, কি কৰে তাৰ খোপে,
যেই না নাৰীৰ স্বোৱামী নাই কি কৰে তাৰ ৰূপে ৰে।
আকাশতে নাই ৰে চন্দ্ৰ কি কৰে তাৰা,
যেই নাৰীৰ স্বোৱামী নাই তাৰ দিনে আন্ধিয়াৰা ৰে।

(দত্ত ২২০)

আকাশৰ চন্দ্ৰমাৰ সৌন্দৰ্য তৰাৰে পৰিপূৰ্ণ হৈ থাকিলেহে প্ৰকাশ পায়। ঠিক একেদৰে স্বামীবিহীন নাৰীৰ জীৱন সকলো শূন্য, দিনতে আন্ধাৰ। উপমাৰ চলেৰে চহাকবিয়ে পাঠকৰ মন ভাবেৰে ভৰাই তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে।

বিহুগীতৰ উৎস পথাৰখন ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰজাপতি নিবন্ধৰ গন্ধৰ্ব প্ৰথাৰ স্থলী। সেয়ে এই গীতবোৰত পুৰুষসংগতিবিহীন বা নাৰী সংগতিবিহীন ডেকা-গাভৰুৰ ভাবোচ্ছ্বাসৰ পৰিমাণ যথেষ্ট কম।

ৰূপক অলংকাৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত ভাওৱাইয়া-চট্‌কা গীতৰ সৈতে ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হৈছে।

আগবাৰী শুৱনি কাকিনী তামোল
পাছবাৰী শুৱনি পাণ,
বৰঘৰ শুৱনি জীয়ৰী ছোৱালী
উলিয়াই দিবলৈ টান। (গোস্বামী ২৬৩)

ঘৰ এখনৰ আগফালখন শুৱনি কৰি ৰাখে কাকিনী তামোলে। ঠিক একেদৰে বৰঘৰ এখনৰ শুৱনি হ'ল জীয়ৰী-ছোৱালী। এই কথা চহা কবিয়ে পোনে পোনে কৈছে যদিও তেওঁৰ ব্যঞ্জিত অৰ্থ বেলেগ। সেয়া হ'ল কাকিনী তামোলডাল বেছি দীঘল কৈ বাঢ়ি যোৱাৰ ফলত যেনেকৈ তললৈ ভিৰ খাই পৰে ঠিক তেনেকৈ জীয়ৰী ছোৱালীয়ে ঘৰ এখন শুৱনি কৰি ৰখাটো সঁচা হ'লেও বেছিদিন থাকিলে হালি পৰিব বা বয়সে গৰকি যাব। অসমৰ সামাজিক জীৱনৰ চিত্ৰ সম্বলিত গীতটোৰ মাজত ৰূপকাত্মকভাৱে গভীৰ ব্যঞ্জনা সোমাই থকা দেখা গৈছে। ইয়াৰ পৰিৱৰ্তে ভাওৱাইয়া-চট্‌কাবোৰত এনে গভীৰ ব্যঞ্জনা প্ৰকাশ পোৱাৰ উপৰি নাৰী মনৰ বলিষ্ঠ কণ্ঠ মুক্ত বা সবল

ৰূপত প্ৰতিভাত হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে —

বালুতে ৰান্ধিনু বালুতে বাঢ়িনু জলে ভাসাইয়া দিলাম হাড়ি।
আৰে বিয়াৰ স্বামী মইলে খাব ৰে মাছ আৰ ভাত
আৰ প্ৰাণ বন্দুয়া মইলে মুই হ'ব আড়ি।।

(জয়মতী ৰায়, সংগ্ৰহ)

হৃদয়ে বিচৰা বন্ধুজনৰ মৃত্যুত হে নায়িকাগৰাকী আচলতে বিধৱা হ'ব। অৰ্থাৎ বাহ্যিকভাৱে জীয়াই থাকিলেও হৃদয়ৰ মৃত্যুয়ে নায়িকাৰ জীৱন সাৰশূন্য কৰি পেলাব বুলি গীতটোৰ মাজেৰে গভীৰ ৰূপকাত্মক চিত্ৰ ব্যঞ্জিত হৈছে। কিন্তু এইধৰণৰ সাহসী উপস্থাপন বিহুগীতত তেনেই কম। অৱশ্যে সামাজিক বন্ধন অতিক্ৰম কৰিব বিচৰা দুই-এক প্ৰগতিশীল প্ৰৱণতা বিহুগীতত পৰিলক্ষিত হোৱাও দেখা গৈছে। যেনে— *তোৰো মনে গ'লে/মোৰো মনে গ'লে/কি কৰিব কলিতা কুলে।*

৪. উপসংহাৰ ঃ

উল্লেখযোগ্য যে দুয়োবিধ গীতৰ মাজেৰে নিৰ্গত সুকীয়া সুকীয়া ৰসৰ মাধুৰ্যই শ্ৰোতা-পাঠকক ৰসাস্বাদনৰ বিচিত্ৰতা প্ৰদান কৰিছে। গীতবোৰৰ মাজেৰে শ্ৰমজীৱনৰ সৈতে চহাকবিৰ প্ৰেমৰ নিবিড়তা প্ৰকাশ পাইছে। চহাকবিয়ে যুৱীয়া জীৱনৰ কল্পনাক কেতিয়াবা শৃঙ্গাৰ ৰস আৰু নোপোৱাৰ বিৰহত বা পাই হেৰুওৱাৰ বিচ্ছেদত কৰুণ ৰসৰ নিষ্পত্তি কৰি উভয় কলাৰ মাজেৰে কাব্যানন্দ প্ৰকাশ কৰিছে। ছন্দৰ নিয়ন্ত্ৰণ ক্ষমতা চহাকবিয়ে গীতবোৰৰ সুৰৰ ওপৰত ন্যস্ত কৰি যোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। লোকগীতত ছন্দ ৰক্ষা পৰে গীতৰ সুৰ আৰু বাদ্যযন্ত্ৰৰ সামঞ্জস্যত। বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্কা গীততো সুৰক কেন্দ্ৰ কৰি গীতিকাৰে ছন্দ পেলোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। ধ্বনি অনুৰণন আৰু ভাষাৰ সুন্দৰ গাথনিক শৈলীয়ে শব্দালংকাৰ আৰু অৰ্থালংকাৰৰ সৃষ্টি কৰি বিহুগীত আৰু ভাওৱাইয়া-চট্কাবোৰৰ নান্দনিক গুণ অব্যাহত ৰাখিছে। চহাকবিয়ে অলংকাৰ প্ৰয়োগেৰে দুয়োবিধ গীতৰ শৰীৰ নিৰ্মাণ কৰাৰ লগতে গীতৰ আত্মাৰূপেও অলংকাৰে কৰ্ম সম্পাদন কৰিছে। উল্লেখযোগ্য যে, প্ৰকৃতিজগতৰ সমস্ত সৌন্দৰ্য একেথূপতে প্ৰকাশ কৰিবৰ বাবে ব্যঞ্জনাময়ী অভিধা প্ৰয়োগ কৰাত চহাকবিসকল সিদ্ধহস্ত; সেয়া উভয় গীতৰ অধ্যয়ন কৰি জানিব পৰা গৈছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসমীয়া ঃ

১. গগৈ, লীলা। *বিহুগীত আৰু বনঘোষা*। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০০৮। মুদ্ৰিত।
২. গোস্বামী, প্ৰফুল্লদত্ত। *বাৰ মাহৰ তেৰ গীত*। দিল্লী ঃ সাহিত্য অকাদেমী, ১৯৬২। মুদ্ৰিত।
৩. দত্ত, বীৰেন্দ্ৰনাথ সং.সম্পা.। *গোৱালপৰীয়া লোকগীত সংগ্ৰহ*। গুৱাহাটী ঃ অৰুণোদই প্ৰকাশন, ২০১০। মুদ্ৰিত।
৪. নেওগ, মহেশ্বৰ। *অসমীয়া গীতি সাহিত্য*। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০০৮। মুদ্ৰিত।
৫. *অসমৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য*। ডিব্ৰুগড় ঃ কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ২০০৩। মুদ্ৰিত।
৬. *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। গুৱাহাটী ঃ লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, ১৯৬৫। মুদ্ৰিত।
৭. ভূঞা, সৰলা। *অসমীয়া গীতি-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। যোৰহাট ঃ অসম সাহিত্য সভা, ২০১১। মুদ্ৰিত।
৮. ভূঞা, নকুলচন্দ্ৰ। *বহাগী*। শ্বিলং ঃ চপলা। ১৯৬৩। মুদ্ৰিত।
৯. মেধি, ৰত্নেশ্বৰ আৰু মজুমদাৰ পৰমানন্দ সংক.। *অসম আৰু বংগৰ লোকসংগীত সমীক্ষা*। গুৱাহাটী ঃ জাৰ্ণাল এম্পৰিয়াম, ১৯৯০। মুদ্ৰিত।
১০. ৰায়চৌধুৰী, অনিল। *নামনি অসমৰ সামাজিক পটভূমি*। গুৱাহাটী ঃ অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১২। মুদ্ৰিত।
১১. শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ। *অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস*। গুৱাহাটী ঃ বাণী প্ৰকাশ, ২০০৭। মুদ্ৰিত।
১২. *লোক সংস্কৃতি আৰু অবিভক্ত গোৱালপাৰা জিলাৰ পৰিৱেশ্য কলা*। ধুবুৰী ঃ ধুবুৰী শাখা সাহিত্য সভা, ২০০১। মুদ্ৰিত।

ৰাংলা ঃ

১৩. আহমদ, ওয়াকিল। *বাংলা লোকসংগীতের ধারা*। ঢাকা ঃ বাতায়ন প্রকাশন, ২০০৬। মুদ্রিত।
১৪. চট্টোপাধ্যায়, বিমলচন্দ্র। *উত্তরবঙ্গের লোকসংগীত ঃ ভাওয়াইয়া-চটকা*। কলকাতা ঃ ১৯৯২। মুদ্রিত।
১৫. বৰ্মা, সুখবিলাস। *ভাওয়াইয়া-চট্কা*। কলকাতা ঃ সোপান, ২০১১। মুদ্রিত।
১৬. ভৌমিক, নির্মলেন্দু। *প্রান্ত-উত্তরবঙ্গের লোকসংগীত*। কলকাতা ঃ কলকাতা বিশ্ববিদ্যালয়, ১৯৭৭। মুদ্রিত।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমৰ টাইমূলীয় ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ড° চৰনম হাজৰিকা

সহকাৰী অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ
লক্ষা মহাবিদ্যালয়
ডাক ঃ লক্ষা, পিন ঃ ৭৮২৪৪৬
ম'বাইল : ৮৬৩৮৪২৩১৪০
ই-মেইল ঃ sabnamhazarika.nhk@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত 'টাই' জনগোষ্ঠী অন্যতম। টাইসকল মূলত মঙ্গোলীয় প্ৰজাতিৰ আৰু ভাষা-পৰিয়ালৰ দিশৰ পৰা 'টাই-কাদাই' শাখাৰ অন্তৰ্গত। অসমৰ টাইমূলীয় ভাষা বুলি ক'লে অসমত প্ৰচলিত আহোম, ফাকে, খামতি, খাময়াং, আইতন, টুৰুং-এই ছটা জনগোষ্ঠীৰ মাজত প্ৰচলিত ভাষাকেইটাক ধৰা হয়। টাইগোষ্ঠীয় লোকসকল ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ পৰা অষ্টাদশ শতিকাৰ ভিতৰত অসমত প্ৰৱেশ কৰে। টাইগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ প্ৰত্যেকৰে মাজত নিজস্ব ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি বিদ্যমান। অতি পৰিতাপৰ বিষয় বৰ্তমান সময়ত সীমিত জনসংখ্যাৰ বাবে টাইমূলীয় ভাষাকেইটা বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকাত অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। টাইমূলীয় খাময়াং ভাষাটো প্ৰায় পঞ্চাছগৰাকী লোকৰ মুখৰ ভাষা হৈ থকাৰ বিপৰীতে টাই-আহোম ভাষাটো কেৱল তেওঁলোকৰ পুৰোহিত শ্ৰেণীৰ লোকে ব্যৱহাৰ কৰে। সেয়েহে বৰ্তমান সময়ত সচেতন ব্যক্তিসকলে বিভিন্ন প্ৰচেষ্টাৰে টাইমূলীয় ভাষাসমূহ বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকাৰ পৰা পুনৰুদ্ধাৰৰ কৰি ভাষাকেইটা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাণৰ বাবে বহুতো পদক্ষেপ হাতত লোৱা পৰিলক্ষিত হয়। টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ পুনৰুদ্ধাৰৰ বাবে বৰ্তমান সময়ত বিভিন্ন গ্ৰন্থ প্ৰণয়ন, গৱেষণা, পাঠ্যক্ৰম প্ৰৱৰ্তন আদিৰ দৰে কাৰ্য্যসূচী হাতত লোৱা হৈছে। গৱেষণা-পত্ৰখনত টাইমূলীয় ভাষাকেইটা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰহণ কৰা এই প্ৰচেষ্টাসমূহ কিমান দূৰ সফল হৈছে আৰু ভাষাকেইটা পুনৰুদ্ধাৰৰ ক্ষেত্ৰত কেনেধৰণৰ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে এই বিষয়ৰ আলোচনাক গুৰুত্ব দিয়া হৈছে। লগতে, টাই-ভাষাৰ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত ল'বলগীয়া পদক্ষেপ সমূহ দাঙি ধৰাৰ প্ৰচেষ্টা কৰা হৈছে। গৱেষণা-পত্ৰখনত প্ৰধানকৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে যদিও বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ আহোম, খামতি, বিপন্নপ্ৰায়, টাই, খাময়াং।

০.১ অৱতৰণিকা

অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰে পৰিপূৰ্ণ এখন বহুভাষিক ৰাজ্য। প্ৰাচীন কালৰে পৰা অসমলৈ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীলোকৰ আগমন ঘটিছে। এই জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ স্বকীয় পৰিচয়ৰে অসম জনগোষ্ঠীয় আবাসভূমিলৈ

ৰূপান্তৰ ঘটিছে। অসমত প্ৰধানকৈ ইন্দো-ইউৰোপীয়, চীন-তিব্বতীয়, অষ্ট্ৰিক আৰু দ্ৰাবিড় এই চাৰিওটা ভাষা পৰিয়ালৰ লোক বসবাস কৰা দেখা যায়। অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত টাইসকল অন্যতম। টাইসকল মূলত মঙ্গোলীয় প্ৰজাতি আৰু ভাষা-পৰিয়ালৰ দিশৰ পৰা 'টাই-কাদাই' শাখাৰ অন্তৰ্গত। টাই-কাদাই শাখাৰ মূল দুটা শাখা হৈছে- উত্তৰ আৰু দক্ষিণ। টাই-কাদাই শাখাৰ দক্ষিণ শাখাৰ পৰাই অসমত প্ৰচলিত আহোম, ফাকে, খামতি, খাময়াং, আইতন, টুৰুং ভাষাকেইটাৰ উৎপত্তি হৈছে। অসমত বসবাস কৰা টাইমূলীয় ছটা জনগোষ্ঠীৰ ভিতৰত পাঁচটা জনগোষ্ঠীৰ বসতি স্থান হ'ল অসম। খামতিসকলেহে অসম আৰু অৰুণাচল উভয় প্ৰদেশত বসবাস কৰে। টাইগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ ভিতৰত প্ৰথমে খ্ৰীষ্ট্ৰীয় ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত আহোমসকলৰ অসমলৈ আগমন ঘটে।

টাইমূলীয় শাখাৰ অন্যকেইটা জনগোষ্ঠী অষ্টাদশ শতিকাত অসমত প্ৰৱেশ কৰে। ত্ৰয়োদশ শতিকাৰ পৰা অষ্টাদশ শতিকাৰ ভিতৰত অসমত প্ৰৱেশ কৰা টাইগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ প্ৰত্যেককৰে মাজত নিজস্ব ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি বিদ্যমান। টাইমূলীয় আহোম লোকৰ বাহিৰে অন্য পাঁচটা ভাষা ব্যৱহাৰ কৰা জনগোষ্ঠীৰ জনসংখ্যা সীমিত। সেয়েহে বৰ্তমান সময়ত এই ভাষাকেইটা কোৱা লোকৰ সংখ্যা ক্ৰমান্বয়ে কমি আহিছে। তদুপৰি বিশ্বায়ন আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ আগ্ৰাসনৰ ফলত এই ভাষাকেইটা বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকাত অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। আনহাতে, টাই-আহোম লোকসকল জনসংখ্যা অন্য টাইগোষ্ঠীয় লোকৰ তুলনাত অধিক যদিও তেওঁলোকৰ মাজত টাই-আহোম ভাষাটো কথিত অৱস্থাত নাই।

মহন, দেওধাই, বাইলুং এই তিনি পুৰোহিত শ্ৰেণীয়ে বিভিন্ন পূজা-পাত, বিধি আদি পঢ়াৰ ক্ষেত্ৰতহে ভাষাটো প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। টাই-আহোম ভাষাটো ইউনেস্কৰ বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকাৰ সমীক্ষাত EDIDS level 10a অৱস্থিত। অৱশ্যে স্বাধীনতাৰ পিছত অৰ্থাৎ যাঠিৰ দশকৰ পৰা আহোম ভাষাটো পুনৰুত্থান আৰু সংৰক্ষণৰ বাবে পণ্ডিত তথা সচেতন লোকসকলে বিভিন্ন পদক্ষেপ হাতত লোৱা দেখা যায়। এই গৱেষণা-পত্ৰখনত টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ বাবে গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপসমূহৰ সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য

"অসমৰ টাইমূলীয় ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক গৱেষণা-পত্ৰখনৰ আলোচনাৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ থকা উদ্দেশ্যসমূহ এনেধৰণৰ—

- টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ পুনৰ সংৰক্ষণৰ বাবে হাতত লোৱা প্ৰচেষ্টাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা।
- এই প্ৰচেষ্টাসমূহে ভাষাকেইটাৰ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত কিদৰে সহায়ক হৈছে এই বিষয়ে অৱগত কৰা।
- ভাষাকেইটাৰ পুনৰ সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে ল'বলগীয়া পদক্ষেপসমূহ আলোচনা কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব

এই গৱেষণা-পত্ৰখনৰ যোগেদি টাইমূলীয় ভাষাকেইটা বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকাৰ কোনটো স্তৰত আছে আৰু ভাষাকেইটা সংৰক্ষণৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপসমূহৰ ভূমিকাৰ সম্পৰ্কে জ্ঞাত হ'ব পাৰিব। টাই-আহোম ভাষাটো মৃতপ্ৰায় ভাষাত উপনীত হৈছে যদিও ভাষাটো কথিত ৰূপৰ পৰিবৰ্তে লিখিত ৰূপত জীয়াই ৰখাৰ প্ৰচেষ্টাৰ বিষয়েও অৱগত হ'ব পাৰিব।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ

"অসমৰ টাইমূলীয় ভাষাৰ সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক এই গৱেষণা-পত্ৰখনত প্ৰধানতঃ টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ সংৰক্ষণৰ বাবে অব্যাহত ৰখা প্ৰচেষ্টাসমূহক অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰা হৈছে। গৱেষণা-পত্ৰখনত এইসমূহ প্ৰচেষ্টাৰ ফলপ্ৰসুতাৰ দিশ আলোচিত হোৱাৰ লগতে ভাষাটোৰ সংৰক্ষণৰ বাবে ল'বলগীয়া পদক্ষেপসমূহক আলোচনাৰ আওতালৈ অনা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি

গৱেষণা-পত্ৰখনিৰ মূল বিষয়ে আলোচনা কৰোঁতে প্ৰধানতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে যদিও প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক আৰু ঐতিহাসিক পদ্ধতিও গ্ৰহণ কৰা হ'ব।

১.০ টাইমূলীয় ভাষা সংৰক্ষণৰ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপসমূহ

অসমত প্ৰচলিত অন্যান্য জনগোষ্ঠী ভাষাসমূহৰ

ভিতৰত টাইমূলীয় ভাষা অন্যতম। অযোগাত্মক-অৰূপাত্মক তথা সুৰাশ্ৰয়ী এই ভাষাকেইটা বৰ্তমান সময়ত EDIDS level 10a (বিশেষকৈ আহোম ভাষা)-ৰ অন্তৰ্ভুক্ত ভাষা। এই ভাষাকেইটা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে যাঠিৰ দশকৰ পৰাই নানা প্ৰচেষ্টা হাতত লোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে।[১] গৱেষণা-পত্ৰখনত টাইমূলীয় ভাষাকেইটা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপসমূহ আলোচনা কৰাৰ যত্ন কৰা হ'ল।

১.১ গ্ৰন্থ প্ৰণয়ন

টাইমূলীয় আহোম,খামতি ফাকে,খাময়াং, টুৰুং আৰু আইতন ভাষাকেইটা সংৰক্ষণৰ হেতু অভিধান, ব্যাকৰণ, ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়নৰ লগতে ভাষা বিষয়ক বিবিধ গ্ৰন্থ-প্ৰবন্ধ আদি প্ৰণয়ন হোৱা দেখা যায়। অভিধানৰ ক্ষেত্ৰত লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, আহোম ভাষাত ১৭৯৫ শকত গৌৰীনাথ সিংহৰ পৃষ্ঠপোষকতাত টেঙাই পণ্ডিতে *বৰ-অম্ৰ* আৰু ৰমাকান্ত মোলাইঘৰীয়া বৰুৱাই *লতি-অম্ৰ* নামেৰে দুখন অভিধান প্ৰণয়ন কৰিছিল। সাঁচিপাতত লিখা এই অভিধান দুখন ১৯৬৪ চনত বিমলাকান্ত বৰুৱা আৰু নন্দনাথ দেওধাই ফুকনৰ যুটীয়া সম্পাদনাত Ahom Lexicon নামেৰে প্ৰকাশ পায়। ২০১০ চনত বিনন্দ মহনৰ সম্পাদনাত পুনৰ *বৰ-অম্ৰ* প্ৰকাশ হৈ ওলায়। এই সম্পাদিত *বৰ-অম্ৰ*খনিত বিনন্দ মহনে সকলোৰে চাব পৰাকৈ শিৱসাগৰৰ বকতা পাৰিজাত গাঁৱৰ নিবাসী জোনাৰাম চাংবোন ফুকনৰ ঘৰত উদ্ধাৰ হোৱা সাঁচিপতীয়া *বৰ-অম্ৰ* পুথিখনৰ ডিজিটেল ফটোকপি এটা সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। পৰৱৰ্তী সময়ত এই অভিধান দুখনক আধাৰ হিচাপে লৈ কেইবাখনো অভিধান, শব্দকোষ, পৰিভাষিকোষ আদি ৰচনা হোৱা দেখা যায়। আহোম ভাষাত ৰচিত এই অভিধান দুখনৰ উপৰি ১৯২০ চনত গোলাপ চন্দ্ৰ বৰুৱাৰ *Ahom-Assamese English Dictionary*, নোমল চন্দ্ৰ গগৈৰ *অসমীয়া ইংৰাজী-তাই অভিধান* (১৯৯০),পোনাৰাম মহন ফুকনৰ *টাই-আহোম শব্দকোষ* (১৯৯৮), গিৰীণ মহুং বৰুৱাৰ *লতি-অম্ৰ* (তাই আহোম শব্দকোষ (১৯৯৯), বিমল বৰপাত্ৰ গোহাঁইৰ *তাই-অসমীয়া অভিধান* (২০০২) , পুষ্প গগৈৰ *তাই অসমীয়া-ইংৰাজী অভিধান* (২০০৭), সোনাৰাম মহন ফুকনৰ প্ৰাথমিক *তাই আহোম শব্দকোষ* (২০১০), ফণীধৰ চাংবুন ফুকনৰ *লিক্ চাম তু খাম টাই পয় কা না* (টাই আহোম শব্দকোষ আৰু গণনা), মেদিনী মাধৱ মহনৰ তাই আহোম পৰিভাষা (২০১৩) আৰু *অসমীয়া-আহোম-ইংৰাজী-অসমীয়া শব্দকোষ* (২০১৭) আদি অন্যতম। এই অভিধান আৰু পৰিভাষাসমূহৰ উপৰি টাইমূলীয় ভাষাৰ প্ৰথম ব্যাকৰণ জে.এফ. নীডহামে (J.F Needham) *Outline Grammar of the Khamti Language* (১৮৯৪) নামেৰে প্ৰণয়ন কৰে। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ত টাই-আহোম ভাষাত ১৯৩৫ চনত ঘনকান্ত বৰুৱাই আহোম ভাষাৰ প্ৰথমখন ব্যাকৰণ *আহোম প্ৰাইমাৰ*ৰচনা কৰে। তেওঁ এই ব্যাকৰণখন লিখি উলিওৱাৰ পূৰ্বে ১৯৩৪ চনত আহোম ভাষা পুনৰুদ্ধাৰৰ বাবে যোৰহাটত 'আহোম ভাষা আৰু বুৰঞ্জী অনুসন্ধান সমিতি' স্থাপন কৰিছিল।[২] তেওঁ নিজে আহোম ভাষাটো শিকিবৰ বাবে নন্দৰাম ফুকন দেওধাই লগতে ইউথিৰিন্দা, ইউছিলাউনছা নামে দুজন বাপুৰ পৰা টাই ভাষা শিক্ষা গ্ৰহণ কৰে। এই দুজন বাপুৰ সহযোগতে আহোম প্ৰাইমাৰ নামৰ পুথিখন প্ৰণয়ন কৰি উলিয়ায়।[৩] পৰৱৰ্তী সময়ত এই পুথিখনক আধাৰ হিচাপে লৈ কেইবাখনো ব্যাকৰণ ৰচনা কৰা পৰিলক্ষিত হয়। আহোম প্ৰাইমাৰখন ৰচনা হোৱাৰ ৩৭ বছৰৰ পাছত বিমলাকান্ত বৰুৱাই *টাই-ভাষা* নামেৰে আন এখন ব্যাকৰণ সদৃশ পুথি প্ৰণয়ন কৰে। ইয়াৰ উপৰি টাই-আহোম ভাষাত প্ৰিয়বৰ কোঁৱৰে তাই আহোম প্ৰাইমাৰ (১৯৮৪), নোমল চন্দ্ৰ গগৈয়ে তাই ভাষাৰ ব্যাকৰণ (১৯৯০), তিলো হাতীবৰুৱাই তাই আহোম প্ৰাইমাৰ ১ম আৰু ২য় খণ্ড (১৯৯০), ৰত্নেশ্বৰ বুঢ়াগোহাঞিয়ে প্যুঙ খম টাই (১৯৯৪) বাবুল ফুকনে লিট প্যুঙ খম ত্তাই (২০১৩), ষ্টিফেন ম'ৰে *Tai Phake Primer* আৰু বিজু মৰাণে *টাই ফাকে শব্দকোষ* আদি উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ ৰচনা কৰিছে। ঙিপেথৌন গোঁহাই, আমচন গোঁহাই, পেইমথি গোঁহাই, ঙিয়ত ৰেইংকেনৰ প্ৰচেষ্টাত টাই-ফাকে ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি বিষয়ক কেইবাখনো গ্ৰন্থ আৰু কিছুসংখ্যক প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। এই ব্যাকৰণ আৰু অভিধানসমূহৰ উপৰি টাই ভাষা শিক্ষণৰ বাবে ভাষা শিক্ষাৰ পাঠ আৰু কথোপকথন সম্পৰ্কীয় পুথি প্ৰণয়ন হোৱা দৃষ্টিগোচৰ হয়। এই ভাষা শিক্ষাৰ পাঠ আৰু কথোপকথন সম্বন্ধীয় পুথিসমূহে টাই ভাষা সংৰক্ষণত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। বিদ্যায়তনিক দিশটো টাইমূলীয় ভাষাকেইটা ভাষাবিজ্ঞানৰ তাত্ত্বিক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰি গৱেষণামূলক কৰ্ম সম্পাদন কৰা হৈছে। অসমৰ

লগতে দেশী-বিদেশী গৱেষকসকলেও টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ লগতে থাই ভাষাৰ তুলনামূলক আলোচনা অব্যাহত ৰাখিছে। এনেদৰে ভাষা সচেতন গৱেষক-পণ্ডিতে বিবিধ অধ্যয়নৰ যোগেদি টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ সংৰক্ষণৰ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে।

১.২ টাই ভাষাৰ অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ

বৰ্তমান সময়ত টাই ভাষা সংৰক্ষণৰ বাবে কেইবাটাও ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ স্থাপন হৈছে। ১৯৬৪ চনত প্ৰথমটো ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ 'কেন্দ্ৰীয় টাই একাডেমী' শিৱসাগৰ জিলাৰ পাটসাকোঁত স্থাপন কৰা হয়। এই প্ৰতিষ্ঠানটোৰ প্ৰথম অধ্যক্ষ আছিল চাই খং লেট গোহাঁই। 'কেন্দ্ৰীয় টাই একাডেমী' প্ৰতিষ্ঠানটোৰ উদ্যোগত টাই ভাষা শিক্ষাৰ প্ৰশিক্ষণ দিয়াৰ লগতে এই ভাষাৰ শিক্ষণৰ সুবিধাৰ বাবে তিনিবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰমৰ ব্যৱস্থা কৰি পাঠদান অব্যাহত ৰাখিছে। বৰ্তমান এই একাডেমিখনৰ অধ্যক্ষ চাও বাবুল ফুকন। ফুকনে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক টাই ভাষা শিক্ষাৰ পাঠদান কৰাৰ লগতে টাই ভাষা শিক্ষাত সহায় হোৱাকৈ ভালেমান পাঠ্যপুথি আৰু প্ৰবন্ধ ৰচনা কৰিছে। এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰটোৱে টাই ভাষাত বহুতো পাঠ্যপুথি, ব্যাকৰণ, পৰিভাষাকোষ আদি প্ৰকাশ কৰা দেখা যায়। 'কেন্দ্ৰীয় তাই একাডেমী'টোৰ উপৰি ১৯৭৪ চনত বিমলাকান্ত বৰুৱাৰ নেতৃত্বত ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ত 'ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ' স্থাপন কৰা হয়। এবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰমেৰে টাই ভাষা শিক্ষা প্ৰদান আৰম্ভ কৰা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰটোৱে ১৯৯২ চনৰ পৰা দুবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰমৰ ব্যৱস্থা কৰা হয়। বৰ্তমান ইয়াত দুবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰমৰ লগতে তিনিমহীয়া ভাষা শিক্ষাৰ পাঠ্যক্ৰমৰ পাঠদান অব্যাহত আছে। প্ৰথম অৱস্থাত এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰটোত ঘনকান্ত বৰুৱাৰ *আহোম প্ৰাইমাৰ* খনেই প্ৰধান পাঠ্যপুথি আছিল যদিও পাছলৈ যোগেন্দ্ৰ নাথ ফুকনৰ *An Introductory primer & Grammer of Ahom (Tai) Language* নামৰ পুথিখনক পাঠ্যক্ৰমত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হয়। অৱশ্যে এই দুয়োখন পুথিয়ে টাই ভাষা শিক্ষাৰ পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ পূৰণ কৰিব নোৱাৰৰ বাবে শিক্ষাৰ্থীসকলৰ সুবিধা হোৱাকৈ আইম্যাখেং গোহাঁইয়ে টাই ভাষাৰ প্ৰাথমিক পাঠ ব্যাকৰণৰে সৈতে আৰু ঙিপেথৌন গোহাঁই আৰু আমছুন গোহাঁইয়ে টাই ভাষাৰ কথোপকথন নামৰ দুখন পুথি প্ৰণয়ন কৰিছে। বৰ্তমান এই পুথি দুখন টাই ভাষাৰ তিনিমহীয়া পাঠ্যক্ৰমৰ পাঠ্যপুথিৰূপে প্ৰচলিত হৈ আছে। এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰকেইটাৰ উপৰি ১৯৯৭ চনত টাই-ভাষা-সংস্কৃতিৰ গৱেষণা কেন্দ্ৰ Institute of Tai Studies and Research Centre মৰাণত প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰে। প্ৰতিষ্ঠাকালৰে পৰা গিৰিন ফুকনৰ নেতৃত্বত এই অনুষ্ঠানটোৱে টাই ভাষা শিক্ষা-প্ৰশিক্ষণ দিয়াৰ উপৰি বিবিধ কৰ্মশালা, বক্তৃতানুষ্ঠান, সভা-সমিতিৰ যোগেদি ভাষাটোৰ সংৰক্ষণৰ বাবে প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে। এই কেন্দ্ৰটোয়ে ২০০১ চনৰ পৰা প্ৰতি বছৰে অসমীয়া ভাষাত *পু-লান-চি* আৰু ইংৰাজী ভাষাত Indian Journal of Tai Studies নামৰ দুখন গৱেষণা-পত্ৰিকা প্ৰকাশ কৰি আহিছে। এই দুয়োখন গৱেষণা-পত্ৰিকাৰ জৰিয়তে অসমৰ টাই ভাষা আৰু সংস্কৃতি সম্পৰ্কীয় ভালেমান গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ নিয়মীয়াকৈ প্ৰকাশ পাই আছে। তদুপৰি আহোম ভাষাৰ কেইবাখনো সাঁচিপতীয়া পুথি এই অনুষ্ঠানৰ উদ্যোগত অসমীয়ালৈ অনুবাদ হৈছে। এই পুথিসমূহৰ ভিতৰত *বৰ-অম্ৰ, লাই মৌন, পুন্ ক্ল মৌন, লিট-ছাঙ হান* ইত্যাদি বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰটোৱে টাইমূলীয় ভাষাৰ ব্যাকৰণ, অভিধান আদিৰ লগতে পূজা-পাতলৰ বিধি বিষয়ক, চিকিৎসা সম্পৰ্কীয় পুথি, সাধুকথা ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয়ক গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰি আহিছে। বৰ্তমান এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰটোত টাই ভাষা শিক্ষণৰ তিনিমহীয়া আৰু এবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰমৰ ব্যৱস্থা আছে। 'Institute of Tai Studies and Research Centre' প্ৰতিষ্ঠানটোৱে টাই ভাষাৰ বহুতো সাঁতিপতীয়া পুথি সংৰক্ষণ কৰি ৰখাৰ লগতে বিবিধ বিষয়ক গ্ৰন্থও সংগ্ৰহ কৰি ৰাখিছে। 'Purnakanta Buragohain Institute Tai and South East Asian Studies' নামৰ আন এটা ভাষা শিক্ষাকেন্দ্ৰ ২০০১ চনত গুৱাহাটীত প্ৰতিষ্ঠা কৰে। প্ৰতিষ্ঠানটোত টাইমূলীয় ভাষা শিক্ষাৰ তিনিমহীয়া আৰু এবছৰীয়া পাঠ্যক্ৰম প্ৰৱৰ্তন আছে। এই অনুষ্ঠানটো টাইমূলীয় ভাষাৰ লগতে দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ ভাষা-সংস্কৃতিৰ শিক্ষণৰ বিভিন্ন কৰ্মশালা আৰু প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰিছে। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ নামচাই জিলাৰ চৌখামৰ পালি বিদ্যাপীঠত খামতি ভাষাৰ পাঠ্যক্ৰম প্ৰথম শ্ৰেণীৰ পৰা অষ্টম শ্ৰেণীৰ পাঠ্যক্ৰমত সন্নিৱিষ্ট কৰা দেখা গৈছে। ই ভাষাটোৰ সংৰক্ষণৰ প্ৰতি সচেতনতা বৃদ্ধি কৰাৰ সমান্তৰালভাৱে খামতি নৱ-প্ৰজন্মক ভাষাটোৰ প্ৰতি আকৃষ্ট কৰাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে বুলি ক'ব পাৰি। পালি বিদ্যাপীঠৰ বৰ্তমান ভান্তে Bhikkhu Pannasila-এ খামতি ভাষা শিক্ষণ আৰু সংৰক্ষণ হেতু Tai-Khamti

Dictionary প্ৰস্তুত কৰাৰ কাম অব্যাহত ৰাখিছে। এই অভিধানখনত ইংৰাজী, খামতি, চিংফৌ, অসমীয়া আৰু হিন্দী এই চাৰিওটা ভাষাৰ শব্দাৰ্থ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। বৃহৎ কলেবৰৰ এই বহুভাষিক অভিধান Oxford Dictionaryৰ আৰ্হিত প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। সেইদৰে ৰজত নামচুমে খামতি ভাষা সংৰক্ষণ বাবে শব্দকোষ প্ৰণয়ন কৰি খামতি সাহিত্য-সংস্কৃতি বিকাশৰ বাবে অহৰহ প্ৰচেষ্টা চলাইছে ।

১.৩ বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠান

টাই ভাষা সংৰক্ষণৰ হেতু বৰ্তমান সময়ত টাই ভাষাৰ প্ৰতি সচেতন ব্যক্তিসকলে বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠান যোগেদি ভাষাটো সংৰক্ষণৰ লগতে প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত প্ৰথমে নাম ল'ব লাগিব পূৰ্বাঞ্চল তাই সাহিত্য সভা বান অক্ পাপ লিক্ ম্যুং তাই (১৯৮১) চনত প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰা অনুষ্ঠানটোৱে জন্মৰে পৰা টাই ভাষা আৰু সংস্কৃতি সংৰক্ষণৰ আৰু বিকাশৰ হেতু প্ৰতি দুই বছৰৰ মূৰত ৰাজ্যিকভিত্তিত সভা আয়োজন কৰি আহিছে। এই সভাত দেশী-বিদেশী বিভিন্ন টাই ভাষী লোকসকলৰ বক্তৃতানুষ্ঠান যোগেদি টাই ভাষা-সাহিত্য বিকাশৰ বাবে বহুতো আঁচনি গ্ৰহণ কৰা হয়। টাই ভাষাত বিভিন্ন প্ৰতিযোগিতা আয়োজন কৰি যুৱ প্ৰজন্মক ভাষাটোৰ প্ৰতি আকৰ্ষণ বৃদ্ধি কৰা আৰু ভাষা সচেতনতা জগাই তোলাৰ ক্ষেত্ৰতো অনুষ্ঠানটোৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। ইয়াৰ উপৰি অনুষ্ঠানটোৱে তাই সাহিত্য সভাৰ প্ৰচেষ্টাত বিভিন্ন গ্ৰন্থ আলোচনী আদি প্ৰকাশ কৰি আহিছে। *খামছেং* আলোচনীখন এই সাহিত্য সভাৰ মুখপত্ৰ। এই আলোচনীখনত টাই ভাষাৰ লগত সাংস্কৃতিক দিশৰ প্ৰবন্ধসমূহে প্ৰকাশ লাভ কৰিছে। এই সভাই বিবিধ আলোচনা-চক্ৰ, টাই সাংস্কৃতিক দল আদি গঠন কৰি অসমৰ বিভিন্ন অঞ্চলসমূহৰ টাই ভাষা-সংস্কৃতি বিকাশ তথা সংৰক্ষণৰ চেষ্টা চলাইছে। তাই সাহিত্য সভাৰ বিভিন্ন শাখাসমূহেও নিজ নিজ অঞ্চলত ভাষা বিকাশৰ বাবে নৃত্য-গীতৰ কৰ্মশালাৰ লগতে ভাষা বিষয়ক কৰ্মশালাৰো আয়োজন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। টাই ভাষাত বক্তৃতা প্ৰদান, টাই গীত, কবিতা আবৃত্তি, সাধুকথা কোৱা আদি প্ৰতিযোগিতাৰ যোগেদি নৱপ্ৰজন্মক ভাষাটো প্ৰতি আৰ্কষণ কৰাৰ বাবে পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিছে। এই শাখাসমূহেও নিজাববীয়াকৈ গ্ৰন্থ, আলোচনী আদিও প্ৰণীত হৈছে। তাই সাহিত্য সভাৰ দৰে তাই আহোম ছাত্ৰ সন্থায়ো টাই-আহোম ভাষা সংৰক্ষণ আৰু প্ৰচাৰৰ বাবে নতুন নতুন পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। তাই আহোম ছাত্ৰ সন্থাই আহোমসকলৰ হেৰাই যাব ধৰা বিবিধ পূজাসমূহ অনুষ্ঠিত কৰাৰ লগতে বিভিন্ন ভাষা সম্বন্ধীয় সভা, আলোচনা-চক্ৰ, কৰ্মশালা আদিও অনুষ্ঠিত কৰিছে। উক্ত অনুষ্ঠান দুটাৰ উপৰি ফুৰালুং সংঘ, মোহন-দেওধাই-বাইলুং সমিতি আদি বিভিন্ন অনুষ্ঠানৰ যোগেদি টাই ভাষা আৰু সংস্কৃতি সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে বহুতো পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰাৰ পৰিলক্ষিত হৈছে। মান টাই স্পিকিং পৰিষদে টুৰুং ভাষাৰ লগতে আইতন ভাষাৰ বিকাশৰ বাবে গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে। এই পৰিষদৰ মুখপত্ৰ আৰংৱানৰ ভূমিকা প্ৰশংসনীয়। অৱশ্যে আৰংৱানত টাই ভাষা সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত ল'বলগীয়া ব্যৱস্থা সম্পৰ্কে সীমিত সংখ্যক প্ৰবন্ধহে প্ৰকাশ হোৱা দেখা গৈছে। টাই ভাষাৰ শিক্ষক বিদ্যাধৰ থাউমুঙেও ভাষাটো সংৰক্ষণ তথা বিকাশৰ অৰ্থে বিভিন্ন লেখা-মেলাৰ কাম হাতত লোৱা দেখা গৈছে। তদুপৰি গোলাঘাট জিলাৰ শাখা সাহিত্য সভাৰ দ্বাৰা প্ৰস্তাৱিত ধনশিৰি প্ৰজেক্টে টাই শাখাৰ কেইবাটাও ভাষাৰ অধীনত ভাষা-শিক্ষাৰ ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিছে। টুৰুং ভাষাৰ উন্নয়নহকে অনন্ত টুৰুঙে টুৰুং ভাষাৰ অভিধান প্ৰণয়নৰ প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে। সেইদৰে লেচাম টুৰুঙে টুৰুঙসকলৰ চমু ইতিবৃত্ত (টুৰুংফান) ৰচনা কৰি উলিয়াইছে। সোনাধৰ শ্যাম টুৰুঙে ভাষা শিক্ষণৰ বাবে কৰা প্ৰচেষ্টাও লেখত ল'বলগীয়া।[৪] খামতি ভাষা-সংস্কৃতিৰ উন্নতিৰ অৰ্থে খামতি লিটাৰেৰী কমিতি গঠন হয় যদিও এই পৰিষদখনৰ ভূমিকা বৰ্তমান সময়ত সক্ৰিয় অৱস্থাত দেখা নাযায়। অৱশ্যে খামতি ভাষাৰ প্ৰতি সচেতন ব্যক্তিসকলৰ প্ৰচেষ্টাত ভাষাটোৰ ব্যাকৰণ তথা শব্দকোষ প্ৰণয়ন আৰু কেইবাটাও গৱেষণা-কৰ্ম ইতিমধ্যে সম্পন্ন হোৱা দৃষ্টিগোচৰ হৈছে।

১.৪ ইণ্টাৰনেট আৰু ছচিয়েল মিডিয়া

সম্প্ৰতি গণসংযোগৰ মাধ্যমৰূপে পৰিচিত ইণ্টাৰনেট, ছচিয়েল মিডিয়া আদিতো টাই-ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ প্ৰচেষ্টা অব্যাহত থকা পৰিলক্ষিত হৈছে। বৰ্তমান ইণ্টাৰনেটত টাই ভাষা শিক্ষণৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় প্ৰাথমিক তথ্য লাভ কৰিব পাৰি। ইণ্টাৰেনটত উপলব্ধ eap373, sealane আদি ৱেবচাইটত টাই ভাষাৰ বিবিধ তথ্য, অনলাইন ডিক্সনেৰী উপলব্ধ হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে,

ষ্টিফেন ম'ৰেৰ http.//sealang.net/ahom/-ৰ Online Computer Dictionary খনৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিব পাৰি। অষ্ট্ৰেলিয়াৰ গৱেষক তথা লাত্ৰ'বে বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধ্যাপক ষ্টিফেন ম'ৰেৰ ঐকান্তিক প্ৰচেষ্টাত কম্পিউটাৰত টাই ভাষাৰ আখৰ উদ্ভাৱিত হৈ আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ত টাই ভাষা চৰ্চা আৰু বিকাশ সুচল হৈছে। বিপন্নপ্ৰায় নৃগোষ্ঠীয় ভাষা-সাহিত্যক অস্তিত্বৰ সংকটৰ পৰা ৰক্ষা কৰাৰ হেতুকে ইংলেণ্ডৰ বৃটিছ লাইব্ৰেৰীয়ে কিছুমান কাৰ্যকাৰী পদক্ষেপ হাতত লৈছে। বিশ্বৰ বিভিন্ন দেশত প্ৰচলিত টাই ভাষাৰ সুৰক্ষা প্ৰদান, তুলনামূলক অধ্যয়ন, সংৰক্ষণ আদিৰ ক্ষেত্ৰত আশাসুধীয়া প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে।[৫] মেছ-কছাৰী, টাই আহোমকে ধৰি অসমৰ বিভিন্ন নৃগোষ্ঠীয় ভাষাৰ অমূল্য গ্ৰন্থসমূহ বৃটিছ লাইব্ৰেৰীৰ 'আৰ্কাইভ' কৰা হৈছে। তদুপৰি বৃটিছ লাইব্ৰেৰীয়ে অসমৰ পুৰণি জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভাষা-সাহিত্য পুনৰুদ্ধাৰৰ ক্ষেত্ৰত গৱেষক আৰু বিদ্যাৰ্থীসকললৈ সহায়ৰ হাত আগবঢ়াইছে।[৬] তেওঁলোকে ইণ্টাৰনেটত টাই জনগোষ্ঠীৰ পাণ্ডুলিপিসমূহৰ বিষয়ে তথ্য আহৰণ কৰিব পৰাকৈ ৱেবচাইটত মুকলি কৰিছে। ষ্টিফেন ম'ৰে আৰু অসমৰ কেইবাজনো যুৱকৰ উদ্যোগত শেষতীয়াকৈ টাই আহোম ভাষাই ইউনিক'ডত স্থান লাভ কৰিছে। ই টাই আহোম ভাষা সংৰক্ষণৰ আটাইতকৈ উল্লেখনীয় পদক্ষেপ বুলিব পাৰি। ইউনিক'ডত স্থান লাভ কৰাৰ হেতুকে টাই লিপি লিখাৰ অসুবিধা এতিয়া নাইকিয়া হ'ব বুলি আশা কৰিব পাৰি। ইয়াৰ উপৰি ছচিয়েল মিডিয়াত বিভিন্ন গ্ৰুপসমূহ যেনে-Tai Ahom Words (Dictionary), Universal Tai Ahom Association, Tai Ahom Ami, Tai Ahom Jagaran Mancha, Tai Khamti Youth, Tai Khamyamg Channel আদিৰ যোগেদি ভাষাটো সংৰক্ষণ আৰু পুনৰুদ্ধাৰৰ বাবে বিভিন্ন কাৰ্যপন্থা হাতত লৈছে। বৰ্তমান ফেচবুকতো STAR, Doi paat kai নামৰ গোটে জন্ম লাভ কৰিছে। এই গোটসমূহে টাই ভাষা-সংস্কৃতি সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে আশাশুধীয়া প্ৰচেষ্টা অবিৰতভাৱে চলাই গৈছে। ইন্টাৰনেটত প্ৰথিতযশা গৱেষক ষ্টিফেন ম'ৰে টাই ভাষাৰ লিপি আৰু অভিধান সম্পৰ্কীয় কেইবাটাও প্ৰকল্প আৰম্ভ কৰা দৃষ্টিগোচৰ হৈছে।

২.০ সামগ্ৰিক আলোচনা

টাইমূলীয় ভাষাৰ সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ পদক্ষেপসমূহে টাইমূলীয় ভাষাটো সংৰক্ষণৰ আৰু পুনৰুদ্ধাৰৰ বাবে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে যদিও বহুক্ষেত্ৰত ইয়াৰ কিছুমান দুৰ্বলতা নথকা নহয়। ব্যাকৰণসমূহৰ ক্ষেত্ৰত লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে টাই ভাষাৰ ব্যাকৰণসমূহৰ গাঁথনিক দিশটো এতিয়াও প্ৰাথমিক পৰ্যায়তে আছে। ভাষাসমূহৰ সম্পূৰ্ণ বিজ্ঞানসন্মতৰূপত ভাষাৰ গঠন পদ্ধতিৰ আলোচনা এতিয়াও ব্যাকৰণসমূহত পৰিলক্ষিত নহয়। তদুপৰি তেওঁলোকৰ বিশেষকৈ বিশিষ্ট বৰ্ণ, আখৰ আদিৰ মাজৰ পাৰ্থক্যসমূহ নিৰ্ণয় কৰি নেদেখুৱা, স্বৰচিহ্ন সংখ্যা আদিৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰন্থবোৰত এটা নিৰ্দিষ্ট মত প্ৰকাশ নকৰাই বিভ্ৰান্তিৰ সৃষ্টি কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে, ঙিপেথৌন গোহাঁই আৰু আমছন গোহাঁইৰ *টাই ভাষাৰ কথোপকথন (প্ৰাথমিক পাঠ)* নামৰ গ্ৰন্থখনত স্বৰচিহ্ন বাইশটা বুলি উল্লেখ কৰাৰ বিপৰীতে সোনাৰাম মহন ফুকনৰ *প্ৰাথমিক তাই পাঠ* নামৰ পুথিখনত স্বৰচিহ্ন ওঠৰটা থকাৰ কথা কৈছে। তদুপৰি অভিধানৰ ক্ষেত্ৰতো একে কথাই প্ৰযোজ্য হয়। পুষ্প গগৈ অভিধনখনলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, এই অভিধানত টাই-আহোম ভাষাৰ লগতে টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ উপৰি থাই আৰু শ্বান ভাষাৰ শব্দ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। সেয়েহে এই অভিধানখনত শব্দসমূহ কোন টাইমূলীয় ভাষাৰ এই বিষয়ে সহজে বুজি পোৱাত সাধাৰণ পাঠকৰ অসুবিধা হ'ব পাৰে। টাই ভাষাৰ ব্যাকৰণ আৰু অভিধানসমূহৰ বহুততে টাই লিপিৰ অসমীয়া বা ইংৰাজী লিপ্যন্তৰকৰণ কৰা নাই। ফলস্বৰূপে, ন-শিকাৰুসকলে ভাষাটো শিক্ষণত অসুবিধাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। গতিকে টাই ভাষাৰ অধ্যয়ন কেন্দ্ৰসমূহে একেলগে সন্মিলিত হৈ বিজ্ঞানসন্মত চিন্তা-চৰ্চাৰে এক নিৰ্দিষ্ট গাঁথনিক সজ্জা প্ৰণয়ন কৰিব পাৰিলে ভাষাসমূহৰ শিক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত থকা এনে আসোঁৱাহসমূহ দূৰ হ'ব। প্ৰাসংগিকভাৱে অভিধান আৰু ব্যাকৰণসমূহতো টাই ভাষাৰ অসমীয়া বা ইংৰাজী লিপ্যন্তৰ সন্নিৱিষ্ট কৰিলে ভাষাবোৰ সহজে পঢ়িব আৰু আয়ত্ত কৰাত সুবিধা হ'ব।

ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰসমূহৰ ক্ষেত্ৰত লক্ষণীয় যে, এই অনুষ্ঠানসমূহত টাই ভাষাৰ পাঠ্যক্ৰম প্ৰৱৰ্তিত হ'লেও ভাষা শিক্ষা গ্ৰহণ কৰা শিক্ষাৰ্থী পৰিমাণ তেনেই সীমিত। গতিকে এই অধ্যয়ন কেন্দ্ৰসমূহে টাই ভাষাক আৰ্কষণীয়ৰূপত উপস্থান কৰি পাঠদানৰ ব্যৱস্থা কৰাতো প্ৰয়োজনীয়। ভাষাটো অধ্যয়নৰ জৰিয়তে হ'ব পৰা লাভালাভ সম্পৰ্কে নতুন প্ৰজন্মক জ্ঞাত কৰাব পাৰিলে ভাষাটোৰ প্ৰতি নিশ্চয় আৰ্কষিত হ'ব। বৰ্তমান সময়ত বহুকেইটা অধ্যয়নকেন্দ্ৰ

আৰ্থিক অভাৱ আৰু অপৰ্যাপ্ত শিক্ষকৰ বেতনৰ ফলতো সূচনীয় অৱস্থাৰ সন্মুখীন হৈছে। তদ্ৰূপে অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠানসমূহেও নিজৰ ভিন্ন মতসমূহক আওকাণ কৰি সকলোৱে একগোট হৈ টাই ভাষা সংৰক্ষণৰ পদক্ষেপসমূহৰ সফল ৰূপায়ণৰ বাবে চেষ্টা কৰিব লাগে। উঠি অহা যুৱ প্ৰজন্মক ভাষাটোৰ প্ৰতি আগ্ৰহী আৰু সচেতন হৈ উঠিলে টাইমূলীয় ভাষাকেইটাই বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰ তালিকা পৰা পুনৰুদ্ধাৰ হ'ব বুলি আশা কৰিব পাৰি।

৩.০ উপসংহাৰ

"অসমৰ টাইমূলীয় ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক গৱেষণা-পত্ৰখনৰ অন্তত উপনীত হোৱা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ—

- টাইমূলীয় ভাষাকেইটা বিপন্নপ্ৰায় ভাষাৰূপে পৰিচিত হ'লেও টাই ভাষাৰ সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণ বাবে ব্যাকৰণ, অভিধান, বিবিধ গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ প্ৰণয়ন আৰু ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন সম্পন্ন হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। বহু ভাষাপ্ৰেমীয়ে দুই-এক দোষ-ত্ৰুটি থাকিলেও ব্যাকৰণ প্ৰণয়নৰ যোগেদি ভাষাটোৰ গাঁথনিক দিশটো বিজ্ঞানসন্মত ৰূপত তুলি ধৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। সেইদৰে বিভিন্ন টাই অভিধানসমূহে টাই ভাষাসমূহৰ শব্দসম্ভাৰক সংৰক্ষণ কৰাত অৰিহণা যোগাইছে। বৰ্তমান সময়ত প্ৰণীত পৰিভাষাকোষসমূহে ভাষাটোৰ কথোপকথনত সহায়ক হোৱাকৈ আধুনিক শব্দবোৰ নিজাধৰণেৰে সাজি লৈ ব্যৱহাৰ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। ইয়াৰ ফলত টাইমূলীয় ভাষা শিক্ষণ, সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ পথ সুগম হৈ উঠিছে।
- ভাষা অধ্যয়ন কেন্দ্ৰ, বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠান, ৱেবচাইট, ছচিয়েল মিডিয়া আদিয়ে টাইমূলীয় ভাষা সংৰক্ষণ আৰু সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে বিভিন্ন পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা দৃষ্টিগোচৰ হৈছে আৰু বহুপৰিমাণে সফলো হৈছে। আনুষ্ঠানিকভাৱে টাই ভাষা শিক্ষা গ্ৰহণ নকৰিলেও টাইমূলীয় ভাষা-সংস্কৃতিক ভালপোৱা বহুলোকে গ্ৰন্থ অধ্যয়ন, ইণ্টাৰনেটৰ মাধ্যমত ভাষা শিকাৰ লগতে ছচিয়েল মিডিয়া আদিতো নিজা মনোভাৱ টাই ভাষাৰ টাই লিপিত প্ৰকাশ কৰিবলৈ যত্নৱান হোৱা পৰিদৃষ্ট হয়।

সামৰণিত ক'ব পাৰি যে, টাইমূলীয় ভাষা বৈশিষ্ট্যসম্বলিত স্বতন্ত্ৰ ভাষা। অযোগাত্মক আৰু অৰূপাত্মক টাই ভাষা সংৰক্ষণৰ বাবে শব্দৰ সুৰসমূহৰ উপযুক্ত চৰ্চাৰ প্ৰয়োজন আছে। উপযুক্ত কাৰ্যপন্থা হাতত লৈ শব্দৰ সুৰসমূহ নিৰ্দিষ্টকৈ নিৰ্ণয় কৰিব পাৰিলেহে টাই ভাষা পুনৰুদ্ধাৰ সহজ হ'ব বুলি আশা কৰিব পাৰি। টাই আহোম ভাষাৰ যিহেতু অসমত প্ৰচলিত অন্য টাইমূলীয় ভাষাকেইটাৰ লগত যথেষ্ট সাদৃশ্য আছে, সেয়েহে এই ভাষাৰ শব্দৰ সুৰ অন্য টাইমূলীয় ভাষাৰ পৰা গ্ৰহণ কৰি যথোপযুক্তৰূপত খাপ খোৱাই লৈ শব্দৰ সুৰসমূহ নিৰ্ধাৰণ কৰিলে ভাষাটো পুনৰ কথিত অৱস্থালৈ ঘূৰাই অনাৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সুবিধা হ'ব। এইক্ষেত্ৰত আহোম ভাষাত ৰচিত বুৰঞ্জীসমূহ অন্য প্ৰচলিত ভাষালৈ অনূদিত হোৱাতো অতি প্ৰয়োজনীয়। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১. অপৰ্ণা কোঁৱৰ, অসমত টাইমূলীয় ভাষাৰ অধ্যয়ন, পৃ. ৩৪
২. ঘনকান্ত বৰুৱা, আহোম বুৰঞ্জী, পাতনি
৩. উল্লিখিত
৪. নৰমী গগৈ 'টুৰুং আৰু আইতন ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব : এক বৈপৰীত্যমূলক অধ্যয়ন পৃ. ২৩
৫. উল্লিখিত, পৃ. ২২
৬. দেৱব্ৰত শৰ্মা, প্ৰথম অসমীয়া আভিধানিক দামচাও টেঙাই মহন পণ্ডিত পৃ. ৩০

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কোঁৱৰ, অপৰ্ণা. *অসমত টাইমূলীয় ভাষাৰ অধ্যয়ন ম'লুঙ পোনাৰাম মহন ফুকনৰ স্মাৰক বক্তৃতা*, মৰাণ ঃ টাই ভাষা অধ্যয়ন আৰু গৱেষণা প্ৰতিষ্ঠান, ২০১৮

গগৈ, নৰমী. *টুৰুং আৰু আইতন ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব : এক বৈপৰীত্যমূলক অধ্যয়ন*, পিএইছডি গৱেষণা-গ্ৰন্থ , ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১৩

দাস বিশ্বজিৎ আৰু ফুকন চন্দ্ৰ বসুমতাৰী (সম্পা.). *অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা*, ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা,২০১০

বৰুৱা, ঘনকান্ত, আহোম প্ৰাইমাৰ (প্ৰাথমিক পাঠ), গুৱাহাটী ঃ অসম চৰকাৰৰ বুৰঞ্জী আৰু পুৰাতত্ত্ব বিভাগ, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০১০

শৰ্মা দেৱব্ৰত, *প্ৰথম অসমীয়া আভিধানিক দামচাও টেঙাই মহন পণ্ডিত*, যোৰহাট ঃ অসম জাতীয় প্ৰকাশ, ২০১৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

দেশ বিভাজন আৰু অমৃতা প্ৰীতমৰ 'পিংজৰ' ঃ এটি আলোচনা

ড° অনামিকা ৰাজবংশী

অংশকালীন অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ
পাণ্ডু মহাবিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১২
ম'বাইল ঃ ৮০১১৫-২৫০২২
ইমেইল ঃ rajbonshianamika@gmail.com

০.০১ প্ৰস্তাৱনা ঃ

দেশ বিভাজন স্বাধীনতা প্ৰাপ্তিৰ প্ৰাকমুহূৰ্তত সমগ্ৰ দেশখনক জোকাৰি যোৱা এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ ঘটনা। এই বিভাজনে অবিভক্ত ভাৰতবৰ্ষৰ অন্তৰ্গত ভৌগোলিক পৰিবেশৰ লগতে মানুহৰ চিন্তা-চৰ্চা, আশা-আকাংক্ষা, ভাব-বিনিময়, ধৰ্ম-আদৰ্শ আদিৰ লগতে সামাজিক সাংস্কৃতিক উভয় দিশতেই পৰিৱৰ্তন আনিলে। যাৰ ফলত সামাজিক, সাংস্কৃতিক দিশৰ লগতে মানুহৰ মানসিক জগতখনতো দেশ বিভাজনে গভীৰ প্ৰভাৱ পেলাবলৈ সক্ষম হ'ল। সমাজ জীৱনৰ লগতে সাহিত্যৰ জগততো এই প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। দেশ বিভাজনক আধাৰ হিচাপে লৈ বিভিন্ন ভাৰতীয় ভাষাত বিভিন্ন সাহিত্য ৰচনা হৈছে। সাহিত্যৰ বিভিন্ন ৰূপৰ ভিতৰত উপন্যাস সাহিত্যত দেশ বিভাজনক আধাৰ হিচাপে লৈ ভাৰতবৰ্ষৰ বিভিন্ন ভাষাৰ ঔপন্যাসিকে ভালেসংখ্যক উপন্যাস ৰচনা কৰিছে। সেইসমূহৰ ভিতৰত খুছৱন্ত সিঙৰ 'ট্ৰেইন টু পাকিস্তান', ভীষ্ম চাহানীৰ 'তমস', চামন নাহালৰ 'আজাদী', মনোহৰ মালগনকাৰৰ 'এবেণ্ড ইন দ্য পেংচ', বি ৰাজনৰ 'দ্য ডাৰ্ক ডান্সাৰ', অমিতাভ ঘোষৰ 'দ্য চ্যেদো লাইনচ', অমৃতা প্ৰীতমৰ 'পিংজৰ', বাপচী সিধৱাৰ 'আইচ ক্যেণ্ডি ম্যেন' আদি অন্যতম। ইয়াৰে অমৃতা প্ৰীতমৰ 'পিংজৰ' উপন্যাসত দেশ বিভাজনৰ প্ৰভাৱ কিদৰে পৰিছে, সেই প্ৰভাৱে কিদৰে উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰু চৰিত্ৰৰ সৈতে সম্পৰ্কিত হৈ আছে আদি বিষয়সমূহ এই আলোচনাত সামৰি লোৱা হৈছে।

০.০২ আলোচনাৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য ঃ

দেশ বিভাজনৰ প্ৰাকমুহূৰ্তলৈকে অবিভক্ত ভাৰতবৰ্ষৰ অন্তৰ্গত ভৌগোলিক পৰিবেশৰ লগতে সাহিত্য ৰচনাৰ পটভূমিয়েও আপেক্ষিকভাৱে অসংকুচিত পৰিবেশৰ মাজত গঢ় লৈ আছিল। পিছে বিভাজনৰ পিছত সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তন হবলৈ ধৰিলে। ভাব-বিনিময়, ধৰ্ম, চিন্তা, আদৰ্শ সকলো দিশতেই সংঘাতৰ সৃষ্টি হ'ব ধৰিলে। আগৰ বহল সমাজখনৰ ঠাইত নতুনকৈ গঢ় লোৱা সমাজখনে মানুহৰ মানসিকতাৰ ওপৰতো গভীৰ প্ৰভাৱ পেলোৱা দেখা গ'ল। এই আটাইবিলাক দিশৰ উপলব্ধিৰ বাবে এই আলোচনাটি অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ। বিশেষকৈ, বিভাজনৰ বিভিষিকাই মানুহৰ মনৰ ওপৰতো গভীৰ সাঁচ বহুৱাইছিল। সেই সময়ৰ ভয়ানক পৰিস্থিতিত জনসাধাৰণ হৈ পৰিছিল ভীতিগ্ৰস্ত। অগণন

লোক গৃহহাৰা হৈ পৰিছিল, তেওঁলোকৰ জীৱনলৈ নামি আহিছিল অস্তিত্বৰ প্ৰতি ভাবুকি। এই দিশসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাটোৱেই এই আলোচনাৰ উদ্দেশ্য।

০.০৩ আলোচনাৰ পদ্ধতি ঃ

দেশ বিভাজনৰ সময়ছোৱাত দেশখনৰ সামাজিক পৰিস্থিতি অস্থিৰ হৈ পৰিছিল। সমাজখন হত্যা, হিংসাৰ জুইত জাঁহ গৈছিল। যাৰ বাবে লাখ লাখ মানুহে প্ৰাণৰ ভয়ত অন্য ঠাইলৈ প্ৰত্যাৰ্পন কৰিছিল। আনকি, একলগ হৈ বসবাস কৰা সমাজখনত ভাতৃত্ববোধৰ এনাজৰীৰ বান্ধ হঠাতেই খোল খাই গ'ল। তাৰ ফলশ্ৰুতিত ইজন আনজনৰ শত্ৰু হৈ পৰিল। বিভাজনে সমাজৰ প্ৰতিজন ব্যক্তিৰ জীৱনত কিদৰে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছে সেই বিষয়ে এই আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। এই আলোচনাৰ বাবে বৰ্ণনামূলক তথা বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৪ লেখক পৰিচয় ঃ

অমৃতা প্ৰীতম (১৯১৯-২০০৫) পাঞ্জাৱী সাহিত্যৰ এগৰাকী জনপ্ৰিয় সাহিত্যিক। পাঞ্জাৱৰ গুজাৰাৱাল জিলাত জন্মগ্ৰহণ কৰা এইগৰাকী লেখিকাই মাত্ৰ ১৬ বছৰ বয়সত লিখা কবিতাৰ পুথি 'অমৃত লেহৰান'ৰ যোগেদি সাহিত্য জগতত প্ৰৱেশ কৰিছিল। ইয়াৰ লগতে তেওঁ ভালেমান কবিতা, গল্প, উপন্যাস আৰু এখন আত্মজীৱনী লিখিছিল। সেইবোৰ হ'ল-

কবিতা সংগ্ৰহ ঃ মে জমা তু, লামিয়া বতন, সুনেহেড়ে, কস্তুৰী, পাঞ্জাৱ দি আৱাজ, একবাত, পাথৰ গিতে, অমৃত লেহৰান আদি।

গল্প সংগ্ৰহ ঃ হীৰে কী কণী, লাতিয়া দী চৌকৰী,ইক চহৰ দী মৌত, তীসৰী ঔৰত আদি।

উপন্যাস ঃ ডাক্টৰ দেৱ, পিংজৰ, অহলনা, আশু, এক সিনোহী, বুলাৱা, এক সী-অনীতা, একতে এৰিয়েল, জলাৱতন, জেৱকতৰে, যঅগ দা বুটা, তেহৰৱা সুৰজ আদি।

আত্মকথা ঃ 'ৰছীদী টিকট' - এই আত্মজীৱনীখন ১৯৭৬ চনত প্ৰকাশ হয়। কৃষ্ণ গোৱাৰাৱাই এই আত্মজীৱনীখন "The revenue stamp" নামেৰে ইংৰাজীলৈ অনুবাদ কৰে। ইয়াত অমৃতা প্ৰীতমৰ জীৱনৰ মনোৰম বৰ্ণনাৰ লগতে সেই সময়ৰ সমাজ জীৱন, সেই সময়ত সংঘটিত দেশ বিভাজনৰ চিত্ৰ স্পষ্টভাৱে প্ৰকাশি উঠিছে।

উল্লেখনীয় যে, তেওঁৰ ভালেসংখ্যক কবিতাৰ মাজত স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু দেশ বিভাজনৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। ১৯৪৮ চনত বিভাজনৰ পিছত ডেৰাডুনৰ পৰা দিল্লীলৈ যাত্ৰা কৰি থকা সময়ত তেওঁ "অজজ আখা ৱাৰিছ শ্বাহ ন" (I ask waris shah today) নামৰ এটি কবিতা ৰচনা কৰিছিল। চুফী কবি ৱাৰিছ শ্বাহৰ হীৰ আৰু ৰাঞ্জাৰ মৰ্মান্তিক কাহিনীক অনুভৱ কৰি, নিজৰ জন্মভূমি পাঞ্জাৱৰ এই প্ৰথিতযশা সাহিত্যিকজনৰ মহৎ কৃতিলৈ সন্মান জনাই এই কবিতাটো ৰচনা কৰা হৈছিল। কবিতাটো হ'ল—

আজ আখা ৱাৰিছ শ্বাহ নু
কিতোন কাবৰান ভীচন বোল
তে আজ কিতাব য়ে ইস্ক দা কোই অগ্ লা ভৰকা ফুল
ইক ৰই চি ধী পাঞ্জাৱ দী টুন লিখ্ লিখ্ যাতে ভায়ে

x x x x x

তে আজ কিতাব য়ে ইস্ক দা কোই অগ্ লা ভৰকা ফুল।

এই কবিতাটোৰ মাজেদি বিভাজনৰ সুস্পষ্ট বিৱৰণ পোৱা যায়। কবিতাটো ভাৰত আৰু পাকিস্তান উভয় দেশতে যথেষ্ট সমাদৰ লাভ কৰিছিল। আনফালে, ১৯৬০ চনত দেশ বিভাজনক মূল আধাৰ হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা পিংজৰ উপন্যাসখনৰ ভূমিকাত লেখিকাই কৈছে—'এই উপন্যাসখনৰ কাহিনীয়ে ভাৰত বিভাজনৰ সেই মৰ্মান্তিক দুখ বহন কৰি আছে, যি ইতিহাসৰ বেদনা আৰু চেতনা দুইটাকে প্ৰকাশ কৰে।'

মূল চৰিত্ৰ পুৰোৰ সহায়ত এই ধাৰণাটি অধিক স্পষ্ট হৈছে যিয়ে ঘটনাপ্ৰবাহৰ জুইত উমি উমি ঢিমিক-ঢামাককৈ জ্বলি নুমি এই চেতনাক বিচাৰি পাইছে। মূল পটভূমি আৰু মূল চৰিত্ৰৰ যোগেদি বিভাজনৰ মৰ্মব্যথাক প্ৰকাশ কৰিবলৈ গৈ ঔপন্যাসিকে কৈছে 'যিকোনো ছোৱালী যিয়ে নিজৰ ঠিকনালৈ গৈ পাইছে, তাই হিন্দু হওঁক বা মুছলমান বুজিবা যে তাতেই মোৰ আত্মাই নিজৰ ঠিকনা বিচাৰি পাইছে।' মনকৰিবলগীয়া কথা যে, এইখন উপন্যাসখন পৃথিৱীৰ আঠোটা ভিন্ন ভাষালৈ অনূদিত হৈছে। ২০০৩ চনত এইখন উপন্যাসৰ আধাৰত চন্দ্ৰপ্ৰসাদ দ্বিবেদীয়ে একে নামৰেই এখন চিনেমা প্ৰস্তুত কৰি উলিয়াইছিল। উপন্যাসখনৰ নিচিনাকৈয়ে এই চিনেমাখনেও সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষত জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

০.০৫ নিৰ্বাচিত উপন্যাসৰ চমু পৰিচয় ঃ

এই উপন্যাসৰ পৃষ্ঠভূমি দেশ বিভাজনৰ সময়ৰ পৰা লোৱা হৈছে। পিংজৰৰ মূল চৰিত্ৰটো হ'ল 'পুৰো'। তাই পাঞ্জাৱৰ চত্তুৱানী জিলাৰ শ্বাহৰ ঘৰৰ ছোৱালী। গাভৰু বয়সত দেউতাকে তাইৰ বিয়া চত্তুৱানীৰ গণ্য-মান্য ঘৰৰ ৰামচন্দ নামৰ যুৱক জনৰ লগত ঠিক কৰে। পৰিয়ালৰ লগতে পুৰো নিজেও এই মতত বহুত আনন্দিত হৈছিল। পিছে এদিনাখন পুৰোৱে তাইৰ ভনীয়েক ৰজ্জোৰ লগত নিশ্চিন্তমনে ফুৰিবলৈ যোৱাৰ সময়ত এজন ৰহস্যময় যুৱকে তাইক অপহৰণ কৰে। তাৰ নাম হ'ল ৰছীদ। ৰছীদ আছিল মুছলমান সম্প্ৰদায়ৰ ব্যক্তি। ৰছীদৰ পৰিয়াল আৰু পুৰোৰ পৰিয়ালৰ মাজত পৰিয়ালগত বিবাদ আছিল। পুৰোৰ পৰিয়ালে ৰছীদহঁতৰ পৰিয়ালৰ সম্পত্তিৰ ওপৰত বে-আইনীভাৱে অধিকাৰ সাব্যস্ত কৰি সিহঁতক ৰাস্তাৰ ভিকহু বনাইছিল। আনকি পুৰোৰ খুৰাকে ৰছীদৰ খুড়ীয়েকৰ অপহৰণ কৰি নি ধৰ্ষণ কৰিছিল যাৰ বাবে ৰছীদৰ পৰিয়ালে এই অপমানৰ প্ৰতিশোধ ল'বৰ বাবে ৰছীদক প্ৰতিজ্ঞা কৰাইছিল। এই প্ৰতিশোধ পূৰণৰ বাবে ৰছীদে পুৰোক অপহৰণ কৰি নিয়ে যাতে পুৰোৰ পৰিয়ালে সমাজত মুখ উলিয়াব নোৱাৰা হয়। অপহৰণৰ পিছত এদিন ৰাতি পুৰোৱে ৰছীদৰ ঘৰৰ পৰা নিজৰ ঘৰলৈ পলাই আহিবলৈয়ো সক্ষম হৈছিল। পিছে তাইৰ মাক-দেউতাকে তাই ঘৰলৈ উভতি অহা বুলি সমাজত জনাজাত হ'লে সমাজচ্যুত হোৱাৰ অজান আশংকাত পুনৰ গ্ৰহণ কৰিবলৈ অমান্তি হ'ল। সেয়ে মনৰ বেজাৰত তাই আত্মহত্যা কৰিবলৈ বিচাৰিলে। কিন্তু ৰছীদে সেই বিপদৰ পৰা ৰক্ষা কৰি তাইক নিজৰ ঘৰলৈ লৈ গ'ল। ৰছীদ অৱশ্যে এই বিষয়ে আগেয়ে অৱগত আছিল কাৰণ সি জানিছিল যে এবাৰ অপহৰণ হোৱা ছোৱালীক কোনো কাৰণতে তাইৰ পৰিয়ালে গ্ৰহণ নকৰে। সেই ঘটনাৰ কেইমাহমান পিছত পুৰোৰ ভনীয়েক ৰজ্জোৰ বিয়া ৰামচন্দৰ খুৰাকৰ পুতেক লঞৈণৰ লগত আৰু ৰামচন্দৰ ভনীয়েক লাজোৰ লগত পুৰোৰ ভায়েক ত্ৰিলোকৰ বিয়া হয়। এই সময়খিনিৰ ভিতৰতে পুৰো আৰু ৰছীদৰো নিকাহ হয়। সমাজে বান্ধি দিয়া নিয়ম অনুসৰি পুৰোৱে মুছলমান সম্প্ৰদায়ৰ ব্যক্তিৰ লগত বিবাহপাশত আৱদ্ধ হোৱা বাবে ধৰ্ম পৰিৱৰ্তন কৰিবলগীয়া হয়। যাৰ বাবে তাই নিজৰ নাম সলনি কৰি 'হমীদা' নাম লয়। পৰৱৰ্তী সময়ত পুৰোৱে তাইৰ ওচৰলৈ প্ৰায়ে আহাৰ বিচাৰি অহা মানসিকভাৱে বিকাৰগ্ৰস্ত ছোৱালীজনীৰ মৃত্যু হোৱা বুলি গম পাই তাইৰ সন্তানটোক নিজৰ সন্তানৰ দৰে মৰম চেনেহেৰে তুলি তালি ডাঙৰ-দীঘল কৰিবলৈ লয়। যেতিয়াই গাওঁৰ মানুহে গম পায় যে সেই ছোৱালীজনী হিন্দু আছিল আৰু বৰ্তমানে ৰছীদ আৰু পুৰো (হামিদা) ই লালন-পালন কৰা সন্তানটো হিন্দু পৃষ্ঠভূমিৰ তেতিয়াই সেই সন্তানটোকো সিহঁতৰ পৰা দূৰ কৰি দিয়া হয়। একেটা সময়তে ব্ৰিটিছ চৰকাৰে ভাৰতবৰ্ষ এৰি গুচি যায় আৰু ব্ৰিটিছে এৰি

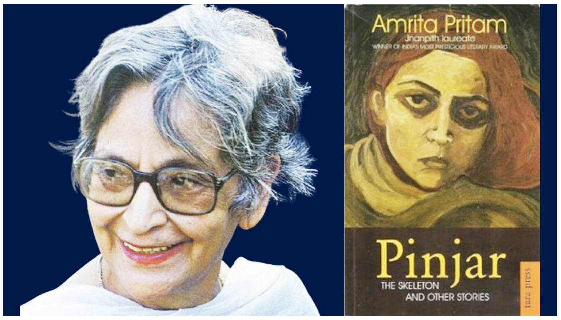

যোৱা বিষাক্ত ধুমুহাত ভাৰতবৰ্ষই বিভাজনৰ প্ৰবল জুইত জাঁহ গৈ থাকে। ৰামচন্দৰ খুৰাক, খুৰাকৰ ল'ৰা আৰু ৰজ্জো নতুনকৈ চিহ্নিত হোৱা ভাৰতভূমিলৈ আগতীয়াকৈ গুচি যায় বাবেই তেওঁলোক সুৰক্ষিত হয়। বিভাজনৰ এই সময়ছোৱাত লাহোৰৰ চাৰিওফালে মৰা-কটা আৰম্ভ হয়। ৰামচন্দ, তাৰ পিতৃ-মাতৃ আৰু লাজোৱে বিভাজনৰ এই বিভীষিকাময় পৰিস্থিতিত সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ মুখামুখি হয়। ৰামচন্দৰ পিতৃ ইপিনে নিৰুদ্দেশ হয় আৰু লগে লগে ৰামচন্দে মাক আৰু ভনীয়েক লাজোক লগত লৈ ভাৰতলৈ যোৱাৰ প্ৰস্তুতি চলায়। এনে সময়তেই মুছলমান যুৱক এজনে লাজোক অপহৰণ কৰে। ঘটনাৰ পাকচক্ৰত পৰি ভাৰতলৈ যোৱা হিন্দু মানুহখিনিক প্ৰশাসনে পুৰোৱে বসবাস কৰা অঞ্চলৰ আশে-পাশে কেম্প সাঁজি জিৰণি লোৱাৰ ব্যৱস্থা কৰি দিছিল। তাতেই পুৰোৱে ৰামচন্দক লগ পায় আৰু লাজো যে তাইৰ ভাই বোৱাৰী আৰু তাইৰ অপহৰণ হৈছে সেই বিষয়ে গম পায়। পুৰোৱে লাজোৰ বিচাৰ খোচাৰ আৰম্ভ কৰে। তাই ৰছীদৰ সহায়েৰে লাজোক বিচাৰি উলিয়াবলৈ আৰু পলাই পঠিয়াবলৈ সক্ষম হয়। পুৰো আৰু ৰছীদে লাজোক লাহোৰলৈ লৈ যায় য'ত ত্ৰিলোক আৰু ৰামচন্দে তাইক ভাৰতলৈ নিবলৈ ৰৈ থাকে।

ত্ৰিলোক আৰু তাৰ ভনী পুৰোৰ পুনৰ্মিলন হয় আৰু ত্ৰিলোকে তাইক কয় যে ৰামচন্দে এতিয়াও পুৰোক গ্ৰহণ কৰিবৰ বাবে সাঁজু হৈ আছে। কাৰণ পুৰোৰ বাবে বাট চাই চাই ৰামচন্দে এতিয়ালৈ কাকো বিয়া পতা নাই আৰু ইচ্ছা কৰিলে পুৰোৱে পুনৰ নিজৰ ভগ্ন জীৱনটোক নতুনকৈ সজাই পৰাই ল'ব পাৰে। পিছে আটাইকে আশ্চৰ্যান্বিত কৰি পুৰোৱে কয় যে তাই এতিয়াও সেই ঠাইত আছে য'ত তাই প্ৰকৃত অৰ্থত থকা উচিত। সেইদিনাই পুৰোৱে ৰচীদক সম্পূৰ্ণ ৰূপত গ্ৰহণ কৰি লোৱাৰ বিষয়টোও অৱগত কৰে। ৰামচন্দেও তাইৰ মনৰ কথা বুজি পাই তাইৰ এই সিদ্ধান্তক সন্মান জনাই নতুন জীৱনৰ বাবে শুভেচ্ছা দিয়ে। এনেতে ৰছীদে পুৰোক তাইৰ নিজৰ মানুহৰ মাজত এৰি মনে মনে গুচি যাব বিচাৰে পিছে সি দুখত ভাগি পৰে কাৰণ সি মনে প্ৰাণে কেৱল পুৰোকে ভাল পায়। ওচৰত ৰছীদক নেদেখি পুৰোৱে এইবাৰ ৰছীদক বিচাৰি তাৰ ওচৰ পায় আৰু দুয়ো কান্দোনত ভাগি পৰে। এফালে নিজৰ পৰিয়ালৰ মানুহক এৰাৰ দুখ, আনফালে নিজৰ মনৰ মানুহজনক বিচাৰি পোৱা- এই দুই দোদ্যুল্যমান পৰিস্থিতিত পুৰোৱে নিজৰ মনক সংযত কৰি ভায়েক, ৰামচন্দ আৰু লাজোক দুখমনেৰে বিদায় দিয়ে। দেশ বিভাজনক পটভূমি হিচাপে লৈ ৰচনা হোৱা এই উপন্যাসখনত পুৰোৰ জৰিয়তে বিভাজনৰ সময়ছোৱাৰ ৰাজনৈতিক, সামাজিক, মনস্তাত্ত্বিক আদি বিভিন্ন দিশ জীৱন্ত ৰূপত প্ৰকাশি উঠিছে।

০.০৬ উপস্থাপিত বিষয় ঃ

দেশ বিভাজনৰ আগমুহূৰ্তলৈ এক হৈ বসবাস কৰা জনসাধাৰণৰ মাজত ধৰ্মৰ ভিত্তিত যি বিভাজনৰ সৃষ্টি হ'ল সিয়ে স্বাভাৱিকতে জনসাধাৰণৰ জীৱনলৈ অস্তিত্বৰ প্ৰতি ভাবুকি আনি দিছিল। উপন্যাসখনত বিভাজনৰ সময়ৰ সমাজখনত ধৰ্মৰ ভিত্তিত গঢ় লৈ উঠা সাম্প্ৰদায়িক সংঘৰ্ষৰ লগতে ৰাজনৈতিক দুৰাৱস্থাৰ বিষয়টোও আলোচিত হৈছে। এইখন উপনাসৰ মূল চৰিত্ৰ 'পুৰোক' ৰচীদে অপহৰণ কৰি লৈ যোৱাৰ পিছত তাইৰ দেউতাকে তাইৰ বিচাৰ-খোচাৰ আৰম্ভ কৰি দিয়ে। ৰছীদৰ পৰিয়ালৰ মানুহে গৈ পুৰোৰ দেউতাকক ধমকি দিয়াৰ বাবে তেওঁ পুলিচৰ ওচৰলৈ গৈ পইচা দি থয় যাতে কোনোৱে পুৰোৰ শুংসূত্ৰ উলিয়াব গ'লে পুলিচে সঁচা কথা কৈ নিদিয়ে। দেউতাকে সমাজচ্যুত হোৱাৰ ভয়ত এনে কাম কৰিলেও দেশৰ শাসনব্যৱস্থাৰ ৰক্ষীসকলৰ ঘোচ লৈ মনে মনে থকা কাৰ্যই নিশ্চিতভাৱে দুৰ্নীতিগ্ৰস্ত ভাৰতৰ শাসন ব্যৱস্থাৰ ফোঁপোলা স্বৰূপ উদঘাটন কৰিছে। আনফালে, সাম্প্ৰদায়িক সংঘাতৰ উগ্ৰতাই সমাজখনৰ আন্তঃগাঠনি কিদৰে নিঃশেষ কৰি পেলাইছে সেয়া উপন্যাসখন পঢ়িলেই বুজিব পাৰি।

আকৌ, উপন্যাসখনত দেশ বিভাজনৰ সময়ত সমাজৰ কি ধৰণৰ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ হৈছে সেয়াও স্পষ্টৰূপত প্ৰকাশি উঠিছে। বিভাজনৰ সময়ত অগণন লোক গৃহহাৰা হোৱাৰ লগতে সমাজখনত ইজনৰ আনজনৰ প্ৰতি থকা বিশ্বাসৰ ধাৰণাবোৰো ক্ৰমাৎ নাইকিয়া হৈ পৰিছিল। উপন্যাসখনত বিভাজনৰ চিত্ৰৰ লগতে সেই সময়ৰ পুৰুষ প্ৰধান সমাজখনত মহিলাৰ স্থান কি সেই দিশটোও সাৰ্থক ৰূপত দেখুওৱা হৈছে। লেখিকাই সেই সময়ছোৱাত নাৰী-পুৰুষৰ সামাজিক অৱস্থানক ভিন্ন প্ৰসংগৰ মাধ্যমেৰে দেখুৱাবলৈ যত্ন কৰিছে। যিকোনো এগৰাকী নাৰীয়েই ঘৰৰ সমস্ত দায়িত্ব বহন কৰিবলগীয়া হয়। আকৌ, তেওঁ ছোৱালীসন্তান জন্ম দিয়া মানেই দূৰ প্ৰদেশৰ অচিন-অজান তথা অন্যলোকৰ ঘৰৰ দায়িত্ব বহনৰ বাবে সাঁজু কৰি গৈ থাকে; অথচ ল'ৰা সন্তান জন্ম হ'লে তাৰ সুখ-সমৃদ্ধিৰ বাবে ওখতকৈও ওখ অট্টালিকা সাঁজি গৈ থাকে। ৰামচন্দৰ লগত বিবাহৰ কথা-বতৰা চলাৰ পিছ মুহূৰ্ততেই এইবোৰ কথা ভাবিয়েই পুৰোৰ মাক আৱেগিক হৈ পৰাৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিবলৈ গৈ লেখিকাই কৈছে এইদৰে —

"চৰখা জু ডাহনীয়া মে ঘীচে জু পানীও মে
পিড়িয়ো তে বালে মেৰে খেচ নী।
পুত্ৰা নু দিত্তে উচে মহল তে মাড়ীয়া
ধীয়া তু দিত্তা পৰদেশ নী।
লাবো তে লাবো নো কলেজে দে নাল মায়ে
দচ্চী তে দচ্চী এক বাত নী।
ৰাতা তে লগ্ৰৌয়া নী ধীয়া ক্যু জন্মীয়া নী
অজ্জ বিচোড়ে ৰালী ৰাত নী।

ভাৰতীয় সংস্কৃতিত নাৰীক দেৱী বুলি পূজা কৰা হয় যদিও পুৰুষ প্ৰধান সমাজখনত কিদৰে পদে পদে নাৰী লাঞ্চনা-বঞ্চনা সহিব লগা সেয়া উপন্যাসখনৰ মূল পাত্ৰ 'পুৰো'ৰ জীৱনৰ ঘাত-প্ৰতিঘাতসমূহৰ মাজেদি দেখুওৱা হৈছে। নাৰীসকলৰ ক্ষেত্ৰত সমাজখনে এটা নিৰ্দিষ্ট সীমা বান্ধি দিয়ে, এই সীমাৰ আৱেষ্টনীৰ পৰা অলপ ওলাই অহা যেন অনুভৱ হ'লেই দোষহীন হোৱা স্বত্বেও নাৰী সমাজ চ্যুত আৰু বংশৰ কলংক হৈ পৰে। পুৰোৰ অপৰহৰণ

হোৱাৰ পিছত তাই পুনৰ ঘৰলৈ ঘূৰি আহে যদিও সমাজচ্যুত হোৱাৰ ভয়ত আৰু পুৰোৰ সতীত্ব হৰণ হোৱাৰ সন্দেহেৰে তাইক কোনেও গ্ৰহণ নকৰিব, সেই ঘটনাৰ বিৰূপ প্ৰভাৱ আন জীয়ৰীৰ গাত পৰিব, পুৰোৰ দেউতাকৰ বংশ-মৰ্যাদাত কলংক আহি পৰিব- এনেধৰণৰ চিন্তাতেই দেউতাকে তাই যে এতিয়া নিজৰ ধৰ্ম আৰু জন্মৰ অধিকাৰ হেৰুৱাই পেলাইছে সেই কথা অৱগত কৰিছে। দেউতাকৰ সিদ্ধান্তৰ উৰ্দ্ধত গৈ মাত মতাৰ পুৰোৰ কোনো অধিকাৰ নাই; যাৰ বাবেই পুৰোৱে নিজৰ পৰিয়ালৰ মান-সন্মানৰ স্বাৰ্থত আঁতৰি যাবলগীয়াত পৰিছে। আকৌ, ৰচীদ চৰিত্ৰটিৰ অৱতাৰণাই শ্বেইখ আৰু শ্বাহুকাৰ (পইচাৰ লেন-দেন কৰা মানুহ)ৰ মাজত বিবাদ আৰু প্ৰতিশোধৰ দৃশ্যটো অংকন কৰিছে। 'পিংজৰ' উপন্যাসখন প্ৰকৃতাৰ্থত ঘৃণাত জন্ম হোৱা এক প্ৰেম কাহিনী। ৰছীদৰ বাবে পৰিয়ালৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হৈ পৰা পুৰোৱে ৰছীদৰ প্ৰতি মনত অজস্ৰ ঘৃণা পুহি ৰাখিছিল। কিন্তু সময়ৰ আহ্বানত পুৰোৱে ৰছীদৰ প্ৰতি প্ৰেম নিবেদন কৰিছে। ভাৰতীয় আদৰ্শ অনুসৰি বিবাহিত নাৰীৰ স্বামীৰ প্ৰতি থকা দৰদ, প্ৰেম-ভালপোৱা আদি বিষয়বোৰ পুৰোৰ মাজেৰে প্ৰকাশি উঠিছে। আকৌ, ৰছীদে পুৰোক আত্মহত্যা কৰিবলৈ নিদি নিকাহ কৰোৱাই নিজৰ লগত ৰখা, শেষলৈ লাজোক বিচাৰি উলিওৱাত সহায় কৰা আদিবোৰ কথাই পাঠকক ৰছীদৰ প্ৰতি সহানুভূতিশীল কৰি তোলে।

ভাৰতীয় সমাজ জীৱনত ৰামায়ণ-মহাকাব্যৰ আদৰ্শ আৰু প্ৰভাৱৰ কথাও উপন্যাসখনত পোৱা যায়। সীতা হৰণ হোৱাৰ পিছত ৰামে সাত সাগৰ তেৰ নদী পাৰ হৈ ৰাৱণৰ কৱলৰ পৰা সীতাক উদ্ধাৰ কৰি আনে। ৰামচন্দ চৰিত্ৰটিয়েও নিজৰ ভাবী পত্নী পুৰোক সীতা বুলি কল্পনা কৰি তাইৰ উদ্ধাৰৰ দিনলৈ বৈ আছে। ৰামচন্দই সুন্দৰ গীত গাইছিল। সেই গীতবোৰত সীতা উদ্ধাৰৰ পিছত সীতাৰ পৱিত্ৰতাৰ পৰীক্ষা লোৱাৰ কথা কোৱা হৈছিল। লেখিকাই পৰম্পৰাগত ভাৰতীয় সংস্কৃতিত বিবাহৰ গুৰুত্বৰ বিষয়েও কৈছে। বিবাহ এক সামাজিক বান্ধোন। বিবাহৰ সময়ৰ আয়োজন আৰু বিবাহৰ নীতি-নিয়মৰ প্ৰতি জনসাধাৰণৰ বিশ্বাসৰ ছবিও উপন্যাসখনত পোৱা যায়। হিন্দু সংস্কৃতিত বিয়াৰ আগে আগে বিয়া হ'বলৈ ওলোৱা ছোৱালীজনীৰ হাতত খাৰু পিন্ধাই দিয়া হয়। এই খাৰুবোৰ বৈবাহিক জীৱনৰ মঙ্গলৰ প্ৰতীক বুলি ধৰা হয়। ইয়াৰ এপাত ভাঙিলেও অশুভ লক্ষণ বুলি ধৰা হয়। দুৰ্ঘটনাক্ৰমে পুৰোক ৰামচন্দৰ ঘৰৰ পৰা দি পঠোৱা খাৰু পিন্ধোৱাৰ সময়ত কেইবাপাতো খাৰু ভাঙি যায় আৰু এনে অশুভ আগজাননীত পুৰোৰ পৰিয়াল চিন্তিত হৈ পৰাও দেখা গৈছিল।

উপন্যাসখনত সাংস্কৃতিক জীৱনৰ কেতবোৰ দিশৰ বহিঃপ্ৰকাশ ঘটিছে। বিভাজনৰ লগে লগে জনসাধাৰণে সৰ্বস্ব হেৰুওৱাৰ লগতে সময় আৰু স্থানৰ পৰিৱৰ্তনে এক নতুন পৰিৱেশৰ জন্ম দিয়ে। উপন্যাসখনত বিধিমাতাৰ পূজা, বৈশাখী উৎসৱৰ আয়োজনৰ কথা কৈছে। দেশ বিভাজনৰ আলমত ৰচিত 'পিংজৰ' উপন্যাসত সামাজিক, ৰাজনৈতিক প্ৰভাৱৰ লগতে মানুহৰ মনৰ ওপৰত দেশ বিভাজন প্ৰভাৱ অতি সাৰ্থকভাৱে প্ৰতিফলিত হৈছে। দেশ বিভাজনে নাৰীৰ জীৱনৰ প্ৰতি কি ধৰণৰ ভাবুকি আনি দিছিল সেয়া উপন্যাসত দেখা যায়। নাৰীসকল বিভাজনৰ বিভীষিকাময় পৰিস্থিতিত পুৰুষৰ দ্বাৰা অৱমানিত, অৱহেলিত হৈ পৰিছিল। নাৰীৰ প্ৰতি সমাজৰো আছিল তীব্ৰ অৱহেলা। 'পিংজৰ'ৰ মূল চৰিত্ৰ 'পুৰো'ৰ মাধ্যমেৰে ঔপন্যাসিকাই সেই সময়ৰ নাৰীৰ স্থিতি আৰু মানসিক প্ৰস্থিতিৰ চিত্ৰ সবলভাৱে দাঙি ধৰিছে। 'পুৰো'ৰ ওচৰলৈ প্ৰায়ে আহাৰ বিচাৰি অহা পাগলীজনীও আনকি বিভাজনৰ সময়ত দলীয় ধৰ্ষণৰ বলি হৈছে। সেই কথা লেখিকাই কৈছে এইদৰে—

'জিচকে পাচ না হুচ্‌ন থা না জৱানী,
মাচ কা এক শৰীৰ, জিচে অপনী সুধ না থী,
জো কেৱল হড্ডীয়ো কা এক পিংজৰ,
এক পাগল পিংজৰ।
তীলো নে উচে ভী নোচ-নোচকৰ খা লিয়া।'

আকৌ, মানুহৰ নামাকৰণৰ ক্ষেত্ৰত ধৰ্ম আৰু পৰিচিতি দুইটাই জড়িত হৈ থাকে। পুৰোৱে নিজৰ নাম সলনি কৰি 'হমীদা' নাম লৈছিল। ধৰ্মৰ বাবে নামকৰণৰ এই পৰিৱৰ্তনে পুৰোৰ মনৰ ওপৰত গভীৰ প্ৰভাৱ পেলাইছিল। 'পিংজৰ' উপন্যাসত পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত নাৰীৰ যে নিজৰ সিদ্ধান্ত লোৱাৰ অধিকাৰ নাথাকে সেই কথাও উল্লেখিত হৈছে। লেখিকাই পুৰোৰ মনোজগতত পুৰণি স্মৃতিৰ সজীৱতা ঢালি দিছে। 'মটৰ' বিক্ৰী কৰি থকা সময়ত পুৰোৱে বজাৰৰ একোণত বেৰৰ ফালে চাই থকা ছোৱালীজনীক দেখি নিজৰ জীৱনৰ সুন্দৰ দিনবোৰলৈ

মনত পেলাইছে। যেতিয়া তাই নিজৰ ঘৰত বিবাহৰ আয়োজনৰ মাজত নিজকে ব্যস্ত কৰি ৰাখিছিল। তাই সেই সময়খিনিলৈ মনত কৰি হুমুনিয়াহ কাঢ়িছে কাৰণ সেয়া আছিল বিভাজনৰ আগৰ সময় আৰু এতিয়া তাই বিভাজনৰ পিছত নিজৰ জন্মভূমিত নাই। তাইৰ দেশৰ নামৰো পৰিৱৰ্তন হৈছে। আৰু তাই এই পৰিৱৰ্তনক মানি ল'বই লাগিব।লেখিকাই 'পুৰো'ৰ অৱচেতন মনৰ কথাও বহু ঠাইত উল্লেখ কৰিছে। অপহৰণৰ পিছত পুৰোৱে নিজকে এটা বন্ধ কোঠালিত উদ্ধাৰ কৰে। তাই পুনৰ অজ্ঞান হৈ পৰে আৰু এটা সপোন দেখে — সপোনত এটা ক'লা ভালুকে নিজৰ হাতোৰাৰে তাইৰ চুলি ফণীয়াই থকা যেন অনুভৱ কৰে আৰু নিজকে ক্ৰমাৎ সৰু আৰু ভালুকৰ আকৃতি বাঢ়ি গৈ থকা দেখে। তাই ক্ৰমশঃ সেই ভালুকটোৰ দুবাহুৰ আৱেষ্টনীত সোমাই পৰে। এই কথাৰে লেখিকাই বিভাজনে আনি দিয়া আগৰ বহল সমাজখনৰ তুলনাত সৰু এখন সমাজৰ কথা অৱগত কৰে। এগৰাকী প্ৰাপ্ত বয়স্ক ছোৱালী 'পুৰো'ৰ দৃষ্টিভংগীৰে বিভাজনৰ বহু দিশ উন্মোচিত হোৱাৰ দৃশ্য প্ৰকাশি উঠিছে। উপন্যাসখনে ইতিহাসৰ দেশ বিভাজনৰ আলমত জনসাধাৰণৰ শংকা, হিংসা, ঘৃণাৰ প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰিছে, যাৰ জৰিয়তে আমি বিভাজনৰ জুইত জ্বলি নুমি থকা চৰিত্ৰসমূহৰ মাজেৰে ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা প্ৰাপ্তিৰ সময়ৰ বেদনাদায়ক বাতাবৰণক অনুভৱ কৰিব পাৰোঁ।

০.০৭ সামৰণি ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ ইতিহাসত দেশ বিভাজন এক ক'লা অধ্যায়স্বৰূপ। যাৰ বিভিষিকাময় পৰিস্থিতিৰ কথা সুঁৱৰিলে আজিও বহুলোকৰ গাৰ নোম শিয়ৰি উঠে। উপস্থাপিত উপন্যাসখনৰ ঘটনাক্ৰমৰ বৰ্ণনাত নিজৰ জন্ম ঠাই এৰি প্ৰাণৰ ভয়ত অগণন লোকৰ অন্য ঠাইলৈ যাত্ৰা, তেওঁলোকৰ প্ৰতি চলা অন্যায়, অত্যাচাৰ, উৎপীড়ন আদি প্ৰতিফলনত উপন্যাসখনে সাৰ্থকতা লাভ কৰিছে। দেশবিভাজনৰ সময়ত পুৰোৰ জীৱনৰ কৰুণতাই সেই সময়ৰ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আৰু মানসিক প্ৰস্থিতিৰ দিশটোও বলিষ্ঠ ৰূপত প্ৰকাশ কৰিছে। উপন্যাসখনৰ বহু ঠাইত কবিতা কবিতা যেন লগা উল্লিখনবোৰেও উপন্যাসখনৰ নান্দনিক সৌন্দৰ্য্য বৃদ্ধি কৰিছে। দেশ বিভাজনৰ অন্তৰ্নিহিত বিষয়সমূহক স্পষ্টভাৱে আৰু সৰলভাৱে উপস্থাপন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত এই উপন্যাসখনে প্ৰকৃত অৰ্থত সাৰ্থকতা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। তদুপৰি, এনে আলোচনাই ভাৰতীয় সাহিত্যৰ ইতিহাসত দেশ বিভাজনৰ স্থান আৰু তাৰ ৰূপ-অপৰূপবোৰক উপলব্ধি কৰাৰ বাট মুকলি কৰি দিয়ে বুলি আশা কৰিব পাৰি। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থসূচী ঃ

১. প্ৰীতম, অমৃতা, পিংজৰ, হিন্দী পাৰ্কেট বুকচ প্ৰাইভেট লিমিটেড, ২০০৩

২. বৰুৱা, ডঃ ইন্দ্ৰানী, ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু অসম, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, ১৯৮৯

ইন্টাৰনেট ৱেবচাইট সূচী ঃ

Amrita Pritam, Amrita Pritam Biography : Poem Hunter, available at www. poemhunter.com (accessed on 20 June 2022)

Pinjar : A Saga of partition pain : available at shodhganga, in fibnet.ac.in (accessed on 25 June 2022)

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

লখিমপুৰ জিলাত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক সমাজ-সাংস্কৃতিক অধ্যয়ন

বিকাশ চেতিয়া

গৱেষক ছাত্ৰ, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৭০০২১১৯২১৯
ই-মেইল ঃ bikash.chetia@yahoo.com

ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৯৮৫৪০৭৪৭৭১
ই-মেইল - ambeswar@gmail.com

০.০ সাৰাংশ ঃ

লোক সাহিত্য হৈছে সাধাৰণ কৃষিজীৱি লোক সমাজৰ সাহিত্য। যদিও লোক সাহিত্য সাধাৰণ লোকৰ সাহিত্য তথাপি ইয়াৰ এক বিশ্বজনীন আবেদন আছে। বিশ্বৰ বিভিন্ন জাতিৰ সাহিত্যলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে সকলো জাতিৰে বা ভাষাৰে লিখিত সাহিত্যৰ জন্মৰ পূৰ্বেই মৌখিক সাহিত্যৰ জন্ম হৈছে। হেজাৰ হেজাৰ বছৰ পূৰ্বৰে পৰা এই মৌখিক সাহিত্যবোৰ মৌখিক পৰম্পৰাত পুৰুষানুক্ৰমে যুগে যুগে চৰ্চিত আৰু সঞ্চিত হৈ আহিছে। যুগে যুগে চলি অহা পৰম্পৰাগত মন্ত্ৰ, গীত-পদ, সাধু-কথা, জনশ্ৰুতি, পুৰাণ কাহিনী বা মিথ, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, সাঁথৰ আদিৰ সমষ্টিয়েই হৈছে মৌখিক সাহিত্য বা লোকসাহিত্য।

লোকগীত হৈছে লোকসাহিত্যৰ এক অন্যতম বিভাগ। বিশ্বৰ বিভিন্ন ভাষাৰ তথা সমাজৰ লোকসাহিত্যলৈ যদি মন কৰা যায় তেতিয়া দেখা যায় যে, লোকগীত বা পদ্যই গদ্যতকৈ আগত মানুহৰ মাজত বিস্তাৰ লাভ কৰিছে। সৃষ্টিশীল আৰু কল্পনাপ্ৰৱণ মানুহৰ মনৰ অনুভূতিৰ আত্মপ্ৰকাশৰ হেঁপাহেই পদ্যৰ জন্ম দিছিল। লোকমনৰ আনন্দ-অনুভূতি, বিৰহ-বেদনা আদিৰ স্বতঃস্ফুট বৰ্হি প্ৰকাশেই হ'ল লোকগীত। এখন লোকসমাজৰ লোকগীতবোৰৰ মাজত সেই সমাজখনৰ লোকসকলৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ ব্যৱহাৰিক অভিজ্ঞতাৰ পৰা ভাৱ-কল্পনা তথা সৃষ্টিশীলতাৰো উমান পোৱা যায়।

অসমৰ এখন প্ৰচীন ঐতিহ্যমণ্ডিত জিলা হিচাপে লখিমপুৰ জিলাৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক সমন্বয়ৰ কেন্দ্ৰবিন্দু। গতিকে জিলাখনৰ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহৰ বিষয়ে এক সুশৃংখলিত আৰু প্ৰণালীবদ্ধ অধ্যয়ন কৰাৰ বাবে প্ৰস্তাৱিত আলোচনাটি যুগুত কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ নিচুকনি গীত, লোকগীত, লখিমপুৰ জিলা, অসমীয়া লোকগীত

০.১ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

"লখিমপুৰ জিলাত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক সমাজ-সাংস্কৃতিক অধ্যয়ন"-শীৰ্ষক প্ৰস্তাৱিত আলোচনাটিৰ বাবে অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰ হিচাপে বৰ্তমানৰ

লখিমপুৰ জিলাক নিৰ্বাচন কৰি লোৱা হৈছে। জিলাখনৰ পৰিসীমাৰ মাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত আৰু ধাই নামসমূহক এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। আনহাতে সমাজ-সাংস্কৃতিক দিশৰ পৰিসৰত অঞ্চলটোৰ সমাজ-সংস্কৃতিক প্ৰভাৱিত কৰা প্ৰাচীন ঐতিহ্য-পৰম্পৰা, ধৰ্ম-কৰ্ম, সমাজনীতি-অৰ্থনীতি, ভৌগলিক অৱস্থান আদি আনুসংগিক দিশবোৰক সামৰি লোৱা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ক. লখিমপুৰ জিলাত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতবোৰত অঞ্চলটোৰ স্থানীয় ঐতিহ্য-পৰম্পৰা তথা সমাজ-সংস্কৃতিৰ আনুসংগিক দিশ কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে আলোচনা কৰা।

খ. নিচুকনি গীতসমূহৰ সৈতে জড়িত আনুসংগিক বিষয় আলোচনা কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ বাবে তথ্য আহৰণৰ বাবে মুখ্য উৎস হিচাপে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ সহায় লোৱা হৈছে। ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ সময়ত লখিমপুৰৰ উলুবাৰী, চিয়াজুলি, ডিজুৰ পৰা চাহ জনগোষ্ঠীয়সকলৰ 'ছ্বা খেলা বা চেনা খেলা গীত', কাটৰি চাপৰি হাজং গাৱৰ পৰা 'ছাৱা বুজানি গাহেন', আদিসুতি, ঘাগৰৰ পৰা 'ক-নিংনাম' আৰু শিঙিমাৰী, ৰংপুৰীয়া, ভৰ্তি সোণোৱাল গাৱৰ কেইবাজনো তথ্যদাতাৰ পৰা নিচুকনি গীত আৰু ধাইনামৰ তথ্য আহৰণ কৰি বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। লগতে লখিমপুৰ জিলাৰ বিভিন্ন লোক সাংস্কৃতিক দিশক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত মুদ্ৰিত আৰু প্ৰকাশিত গ্ৰন্থৰ পৰা তথ্য আহৰণ কৰা হৈছে। বিষয়টোৰ আলোচনাৰ বাবে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ পৰা আহৰণ কৰা তথ্য আৰু গৌন উৎসৰ তথ্যৰ বিশ্লেষণৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ অৱলম্বন কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়ন ক্ষেত্ৰৰ চমু পৰিচয় ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰি লোৱা ক্ষেত্ৰখন হৈছে লখিমপুৰ জিলা। জিলাখনৰ মুঠ মাটিকালি ২২৭৭ বৰ্গ কিলোমিটাৰ। (লোকপিয়ল, ২০১১) লখিমপুৰ জিলাৰ জনগাঁথনি বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰে ভৰা। সেয়ে অঞ্চলটো সাংস্কৃতিক দিশতো যথেষ্ট চহকী। জনগাঁথনিৰ ক্ষেত্ৰত অঞ্চলটোত অতীজৰে পৰা কোচ, কলিতা, আহোম আদি ৰাজ বংশই ৰাজত্ব কৰাৰ কথা ইতিহাসৰ পাততো পোৱা যায়। বৰ্তমানৰ লখিমপুৰ জিলাত ২০১১ চনৰ লোক পিয়লৰ গণনা অনুসৰি মুঠ জনসংখ্যা হৈছে ১০,৪২,১৩৭ জন। তাৰে ৫২৯,৬৭৪ জন পুৰুষ আৰু ৫১২,৪৬৩ গৰাকী মহিলা। (লোকপিয়ল, ২০১১) ধৰ্মীয় দিশৰ পৰাও জিলাখনত হিন্দু, মুছলমান, খ্ৰীষ্টিয়ান, বৌদ্ধ, শিখ আদি বিভিন্ন ধৰ্মাৱলম্বী লোকে বসবাস কৰে। জাতি-জনগোষ্ঠীয় দিশৰ পৰাও জিলাখন বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ মিলনভূমি। লখিমপুৰ জিলাত বসবাস কৰা জনজাতিসমূহ হৈছে— মিচিং, বড়ো, কছাৰী, দেউৰী, খামতি, ৰাভা, হাজং, কাৰ্বি, সোণোৱাল কছাৰী, ঠেঙাল কছাৰী, নাওল কছাৰী, ডিঙিয়াল কছাৰী আদি। (চেতিয়া, ২৯) ভাষাৰ ভিত্তিত জিলাখনৰ জনসমষ্টিক আৰ্য, চীন-তিব্বতীয় আৰু অষ্ট্ৰিক এই তিনিটা বৃহৎ ভাষা-পৰিয়ালৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। আৰ্য ভাষাৰ ভিতৰত— অসমীয়া, বঙালী, হিন্দী, উড়িয়া, মাৰোৱাৰী, নেপালী আৰু পাঞ্জাৱী ভাষী লোকসকলক সামৰিব পাৰি।

০১.০০ লোক-সাহিত্য আৰু অসমীয়া লোকগীত ঃ

'লোক' শব্দটো মূলতঃ সংস্কৃত শব্দ। ইয়াৰ অৰ্থ হৈছে জনসাধাৰণ। অভিধান অনুসৰি লোক শব্দটো সাধাৰণতে তিনিটা বিশেষ অৰ্থত প্ৰয়োগ হয়। প্ৰথম 'লোক' মানে জগত, ভুৱন (ইহলোক, পৰলোক, পিতৃলোক, দেৱলোক), দ্বিতীয় 'লোক' মানে মানুহ (এওঁলোক, তেওঁলোক), তৃতীয় 'লোক' মানে পৰ, অৰ্থাৎ আপোনতকৈ বেলেগ (লোকক নক'লোঁ মই লাজে)। (বৰুৱা, ১২০১) 'লোক' শব্দটো নানা অৰ্থবাচক হ'লেও, লোকসাহিত্যত ই কিছু সংকীৰ্ণ অৰ্থত ব্যৱহাৰ হয়। সাহিত্যত 'লোক' বুলিলে সাধাৰণতে আনুষ্ঠানিক শিক্ষা-দীক্ষাহীন বা তেনেই সামান্য আনুষ্ঠানিক শিক্ষা থকা নগৰ-চহৰৰ পৰা আঁতৰত পৰম্পৰাগত সংস্কাৰ আৰু লোকৰীতিৰে জীৱন নিৰ্বাহ কৰা শ্ৰমজীৱী জনগণকহে সূচোৱা হয়।

বিশ্বৰ বিভিন্ন জাতিৰ সাহিত্যলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে সকলো জাতিৰে বা ভাষাৰে লিখিত সাহিত্যৰ জন্মৰ পূৰ্বেই মৌখিক সাহিত্যৰ জন্ম হৈছে। হেজাৰ হেজাৰ বছৰ পূৰ্বৰে পৰা এই মৌখিক সাহিত্যবোৰ মৌখিক পৰম্পৰাত পুৰুষানুক্ৰমে যুগে যুগে চৰ্চিত আৰু প্ৰৱাহিত হৈ আহিছে। যুগে যুগে চলি অহা পৰম্পৰাগত মন্ত্ৰ, গীত-পদ, সাধু-কথা, জনশ্ৰুতি, পুৰাণ কাহিনী বা মিথ, প্ৰবাদ-

প্ৰবচন, সাঁথৰ আদিৰ সমষ্টিয়েই হৈছে মৌখিক সাহিত্য বা লোকসাহিত্য।

লোকসাহিত্যক আমি যি নামেৰে নামকৰণ নকৰোঁ কিয়, লোকসাহিত্য কিন্তু প্ৰকৃত অৰ্থতেই লোকসমাজৰ সাহিত্য আৰু ই গীতিময়; এই গীত সাধাৰণতে শ্ৰমৰ গীত। শস্য-ৰোৱা, তোলা, খুন্দা, সুতাকটা, বোৱা, নাওঁখেল বা নাওঁ চলোৱা, নিচুকনি প্ৰভৃতি ভিন ভিন শ্ৰমক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত ভিন ভিন গীতক সামৰিব পাৰি। আনকি নগৰৰ শ্ৰমিক সংঘৰ কাম কাজৰ বা বিক্ষোভৰ ধ্বনি বা শ্লোগানকো লোকতত্ত্ব বা লোকশ্ৰুতি বুলিবলৈ লোৱা হৈছে। সাধাৰণতে সাধুকথা আদি কথা বা গদ্যত কোৱা হয়। কিন্তু দেখা যায় যে সাধুকথাৰ কাহিনীও গীতিময়েই, প্ৰায় ভাগ সাধুৰেই আধা গীত আধা কথা; গীতৰ সংযোগে সাধুকথাক গীতিময় কৰি তোলে। গতিকে লোকসাহিত্য আৰু লোকগীতৰ মাজৰ প্ৰভেদ তেনেই কম বুলি ক'ব পাৰি।

লোকগীত শব্দটোৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ হিচাপে 'Folk Song' অভিধাটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এই 'Folk Song' অভিধাটো ব্যাখ্যা Cassel's Encyclopædia of Literatureত এনেদৰে উল্লেখ আছে- 'Folk Song has been well defined as a lyric poem with melody originating anonymously in times past among unletterd folk and remaining in currently for a considerable time, usualy centuries.' (Steinberg, 225) অৰ্থাৎ লোকগীতক নিৰক্ষৰ লোকসমাজত অতীজতে বেনামীভাৱে উৎপত্তি হোৱা আৰু বৰ্তমান সময়তো প্ৰচলন হৈ থকা গীতিময় কবিতা হিচাপে সংজ্ঞায়িত কৰিব পাৰি।

Funk & Wagnalls standard dictionary of folklore, mythology, and legendত লোকগীতৰ ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে এনেদৰে - 'Folk song comprises the poetry and music of groups whose literature is perpetuated not by writing and print, but through oral tradition. These groups, primarily rural, are better able to preserve some of the older culture of the national unit of which they form a part, than the population of the cities with its more sophisticated, more international civilization, which is subject to faster changes and fluctuations of fashion. Folk song is thus part of folk culture, which is distinct from that of the cities and represents only certain facets of the culture of the nation.' (Leach, 1032) অৰ্থাৎ লোকগীতত এনে কিছুমান জনসমষ্টিৰ কবিতা আৰু গীতক সামৰি লোৱা হয়, যিবোৰ সাহিত্য লিখিত আৰু ছপা ৰূপৰ পৰিৱৰ্তে মৌখিক পৰম্পৰাৰ জড়িয়তে চিৰস্থায়ী হৈ আছে। মূলতঃ এই গাৱলীয়া জনসমষ্টিবোৰে সমসাময়িক ফেশ্বনক অনুকৰণ কৰা আৰু দ্ৰুতগতিত সলনি হোৱা অত্যাধুনিক আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সভ্যতাৰে গঢ় লোৱা চহৰীয়া লোকতকৈ পুৰণি জাতীয় সংস্কৃতিক সংৰক্ষণ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। এনেদৰে লোকগীতো লোক সংস্কৃতিৰ অংগ, যিবোৰ নগৰৰ পৰা পৃথক আৰু ৰাষ্ট্ৰৰ সংস্কৃতিৰ কিছুমান বিশেষ দিশক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে।

Encyclopaedia of Britennicaত উল্লেখ থকা মতে - লোকগীত যিজনে পৰিৱেশন কৰে তেৱেঁই থিতাতে ৰচনাও কৰে আৰু পাছত ই মুখে মুখে বাগৰি ফুৰে। (Folk Music)

বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাৰ মতে, 'এই লোকসাহিত্য সমাজৰ উমৈহতীয়া সৃষ্টি, সমাজৰ সৰ্বজনৰ ভাৱ, চিন্তা আৰু কল্পনাৰ মিলন তীৰ্থ, সমগ্ৰ সমাজৰ আনন্দ বিনোদনৰ কলাক্ষেত্ৰ। যুগ যুগ ধৰি জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে লোকসাহিত্য চিৰন্তন আৰু চিৰজীৱী হৈ আছে।'

(বৰুৱা, ৫)

আনহাতে প্ৰফুল্ল দত্ত গোস্বামীৰ মতে, 'এই বিলাক 'জন সাহিত্য' হৈছে মুখে মুখে ৰচনা কৰা আৰু মুখ বাগৰি জীয়াই থকা পুৰণি নাম, পদ, মালিতা, ফকৰা, বচন, সাঁথৰ, সাধুকথা। (গোস্বামী, ৯)

অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা গ্ৰন্থত মহেশ্বৰ নেওগে উল্লেখ কৰিছে যে - কাব্যৰ লগত স্মৃতিশক্তিৰ বিশেষ সম্বন্ধ। কাব্যৰ এই স্মৰণীয় গুনৰ বাবেই পুৰুষানুক্ৰমে বহুতো গীত-মাত অনেক যুগ অতিক্ৰম কৰি একোটা জাতিৰ মাজত জীয়াই থাকে। মৌখিক প্ৰচলনৰ এই যুগমীয়া ৰচনাবোৰকে গীতি সাহিত্য বোলা হয়।

(নেওগ, ১৭)

লোকসংস্কৃতিবিদ হেমাঙ্গ বিশ্বাসৰ মতে, 'লোকসংগীতের তেমন নির্দিষ্ট কোনো code নেই। থাকতেও পারে না। নেই তার গুৰুমুখী ঘরানা। যা থাকে তাকে আমরা বলতে পারি বাহিরানা বা আঞ্চলিকতা। আমরা ছোটবেলা থেকে কাণে শুনে, চোখে দেখে মনের ভাবে গান শিখেছি। গলা সেধেছি কখন বলতে পারি না।

গলা অবশ্যেই চাই। কিন্তু পদ্ধতিটো হলো সেই 'বাহ্নিনা'র। গায়কটি জল-মাটি, হাওয়ার কিম্বা পাহার-উপত্যকার। গুৰু একজন নয়। গনসমষ্টি জীবনের চিত্রপট থাকে চোখের চামনে। একটি বাদ দিয়ে আরেকটিকে উপলব্ধি করা যায় না।' (বিশ্বাস, ২-৩)

এই সংজ্ঞাসমূহৰ পৰা এটা কথা স্পষ্ট হৈছে যে, লোকগীত বা পদ্যই গদ্যতকৈ আগত মানুহৰ মাজত বিস্তাৰ লাভ কৰিছে। সৃষ্টিশীল আৰু কল্পনাপ্ৰৱণ মানুহৰ মনৰ অনুভূতিৰ আত্মপ্ৰকাশৰ হেঁপাহেই পদ্যৰ জন্ম দিছিল। লোকমনৰ আনন্দ-অনুভূতি, বিৰহ-বেদনা আদিৰ স্বতঃস্ফুট বৰ্হি প্ৰকাশেই হ'ল লোকগীত। এখন লোকসমাজৰ লোকগীতবোৰৰ মাজত সেই সমাজখনৰ লোকসকলৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ ব্যৱহাৰিক অভিজ্ঞতাৰ পৰা ভাৱ-কল্পনা তথা সৃষ্টিশীলতাৰো উমান পোৱা যায়।

অসমীয়া লোকগীতৰ মেটমৰা ভৰাঁলটো অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ দৰেই বৰ্ণাঢ্য আৰু চহকী। এই লোকগীতসমূহত অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ প্ৰেম-প্ৰণয়, ঐতিহ্য-পৰম্পৰা, সভ্যতা-সংস্কৃতি, আনন্দ-বিনোদন আদি সকলো প্ৰকাৰৰ অভিব্যক্তিৰ বৰ্হিপ্ৰকাশ ঘটা দেখা যায়।

০২.০০ লখিমপুৰ জিলাত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত এক সমাজ-সাংস্কৃতিক অধ্যয়ন ঃ

অসমীয়া লোকগীতৰ এটি অন্যতম বিভাগ হৈছে নিচুকনি গীত। নিচুকনি গীতবোৰো নাৰী মনৰ সৰলতা আৰু সৃষ্টিশীলতাৰ অন্য এক চহকী প্ৰকাৰ। নিচুকনি গীতবোৰ কেঁচুৱা নিচুকাবলৈ মহিলাসকলে গোৱা এক প্ৰকাৰৰ ধেমেলীয়া সুৰৰ গীত। এই গীতবোৰৰ কোনো নিৰ্দিষ্ট বিষয়বস্তু নাথাকে। শিশুৰ কোমল মনক স্পৰ্শ কৰিব পৰাকৈ কেঁচুৱা ওমলোৱা মহিলা যেনে - মাক, আইতাক, ধাই আদিয়ে সকলোৰে পৰিচিত যিকোনো বিষয়ক কেন্দ্ৰ কৰি নিচুকনি গীত পৰিবেশন কৰে। শিশুৰ মনক শান্ত কৰি টোপনি যোৱাবলৈ কোমল সুৰত নিচুকনি গীতবোৰ গোৱা হয়। চাহ জনগোষ্ঠীসকলৰ 'ছুৱা খেলা বা চেনা খেলা গীত', হাজংসকলৰ 'ছাবা বুজানি গাহেন', মিচিংসকলৰ 'ক-নিঃনাম' আদিও 'ধাই নাম' বা নিচুকনি গীতৰে একো একোটা প্ৰকাৰ। নিচুকনি গীতবোৰৰ ৰচনা তেনেই সাধাৰণ আৰু অতি মনোমোহা।

কৌতুহলী শিশু মনৰ চাহিদা পূৰাব পৰাকৈ এই নিচুকনি গীতবোৰত বিভিন্ন উদ্ভট কল্পনাৰ সমাৱেশ ঘটা দেখা যায়। সৰু ল'ৰা-ছোৱালীয়ে কেতিয়াবা ভয়ত, ভোকত বা আঘাট পালে চিঞৰি চিঞৰি কান্দে। এই কান্দোন সহজে বন্ধ কৰিব পৰা নাযায়। সেয়ে কান্দি থকা শিশুক আনন্দ দিবৰ বাবে এনে গীতৰ যোগেদি নিচুকোৱা হয়। শিশুক বিমল আনন্দ দিয়াই গীতবোৰৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য। কেঁচুৱা প্ৰতিপালন কৰা মহিলাক অসমীয়াত ধাই বুলি কোৱা হয় আৰু ধাইয়ে গোৱা বাবেই এনে গীতক ধাইনাম বুলিও কোৱা হয়। সাধাৰণতে ভয় খালে শিশুৰ কান্দোন বন্ধ হয় বা ভয়তে টোপনি যায়। সেয়ে একাংশ নিচুকনি গীতত শিশুক ভয় খুৱাই শান্ত কৰাৰো প্ৰয়াস দেখা যায়। তাৰ বাবে মাক বা ধায়ে কোনো জীৱ-জন্তুৰ উল্লেখ কৰি গীত গায়। অসমীয়া মৌখিক শিশু সাহিত্য বিশেষকৈ সাধুকথা আৰু নিচুকনি গীতত শিয়াল এটি চিনাকী চৰিত্ৰ। শিয়ালৰ ধূৰ্ত্তালি, দুষ্টামি আদিকে ধাই গৰাকীয়ে গীতৰ মাজেৰে পৰিৱেশন কৰি আনন্দ দিয়ে। কেতিয়াবা শিয়ালৰ হিংস্ৰ ৰূপ এটাৰ বৰ্ণনাৰে শিশুক ভয় দেখুৱাই শান্ত কৰে। যেতিয়া শিশুৱে শিয়ালৰ ভয়ত পেপুৱা লাগে তেতিয়া শিশুৰ মনৰ পৰা ভয় ভাৱ আঁতৰাই টোপনি যোৱাবলৈ আকৌ সেই শিয়ালৰে কাণ কাটিম বুলি শিয়ালক ভয় খোৱাই খেদি পঠিয়ায়।

ই বোলে কাণখোৱা
সি বোলে কাণখোৱা
কাণখোৱাই কি কাম কৰে
হাতত দা-যাঠি কান্ধত ৰঙা ছাতি লৈ
ল'ৰাৰ কাণ খাই ফুৰে।। (সোণোৱাল, প্ৰভাৱতী)
শিয়ালী এ নাহিবি ৰাতি
তোৰে কাণে কাটি লগামে বাতি।। (বৰুৱা, অন্নদা)

লখিমপুৰ জিলাৰ চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকসমাজতো জীৱ-জন্তুৰ ভয় দেখুৱাই শিশুক টোপনি যোৱাবলৈ চেষ্টা কৰা একেই এটি গীতৰ প্ৰচলন দেখা পোৱা যায়। এই গীতটোলৈ লক্ষ্য কৰিলে উপৰোক্ত দুয়োটা গীতৰ সমাহাৰ ঘটাই এটা গীতৰ ৰূপ দিয়া যেন অনুমান হয়। সন্ধিয়া সময়ত শিশুৱে উৎপাত কৰিলে পিৰালিতে বা ঘৰৰ বাহিৰতে কোনো ভয় লগা জন্তু বহি আছে বুলি ক'লে শিশুটি শান্ত হয়। চাহ জনজাতীয় মহিলাসকলে দিনৰ দিনটো বাগানত কাম কৰে তেতিয়া আইতাক বা ঘৰৰ ডাঙৰ সন্তানেই সৰু ল'ৰা-ছোৱালীৰ দায়িত্ব লয়। গীতটোৰ মাজেৰে নিচুকনিৰ লগতে বাগানীয়া মহিলাসকলৰ কৰ্ম

ব্যস্ততাৰ দিশটোও কম বেছি পৰিমানে উন্মোচিত হৈছে।

নাই আসবি ৰে কুড়িয়া শিয়াল
পিণ্ডাৰা দিগে থাক
বাবুৰ মাক বাগানে গৈছে
বাবুৰ কাণ কাট।। (তানি, দীনা)

(নাহিবি অ' এলেহুৱা শিয়াল, পিৰালিতে থাক, ভাইটিৰ মাক কামলৈ গৈছে, উৎপাত কৰি থকা ভাইটিৰ কাণত কামোৰ)

লখিমপুৰৰ হাজংসকলৰ ছাৰা বুজানি গাহেন বা নিচুকনি গীততো একেই এটি শিয়ালকেন্দ্রিক গীতৰ প্ৰচলন আছে। অবুজন শিশুসকলে জীৱ-জন্তুৰেও মানুহৰ দৰে কথা ক'ব পাৰে বা মনুহৰ কথা বুজি পায় বুলি বিশ্বাস কৰে। সেয়ে কেতিয়াবা শিশুৰে ভয় কৰা জন্তু এটাক মাতি শিশু এটিক ভয় খুৱাবলৈ চেষ্টা কৰা হয়।

কে হোৰা হোৰা
ক'ত গেলৰে শিয়াল গুলা
কাণ খা, কাণ খা।
আমাৰ বাবু আছে কান্দিয়া
কাণ খা আসিয়া
কে হোৰা হোৰা।। (হাজং, মনীষা)

(কে কে হোৰা কৰা শিয়ালবোৰ ক'ত গ'লি, আমাৰ বাবুৰে কান্দি আছে আহি কাণ খন খাহি।)

সকলো শিশুৰে মনত আচহুৱা বস্তু বা জন্তুৰ প্ৰতি থকা ভয় এক সহজাত প্ৰবৃত্তি। নিজান ৰাতি শিয়ালৰ ভয় লগা চিঞৰবোৰ শিশু সকলৰ পৰিচিত যদিও শিয়াল জন্তুটো তেওঁলোকৰ পৰিচিত নহয় সেয়ে শিয়ালৰ নাম লৈও শিশুসকলক ভয় খুৱাই শুৱাবলৈ কৰা হয়। লখিমপুৰ জিলাৰ সোৱণশিৰি আৰু ৰঙানৈৰ পাৰত বসবাস কৰা মিচিংসকলৰ মাজতো এনে এটি শিয়ালকেন্দ্রিক নিচুকনি গীতৰ প্ৰচলন আছে।

চাহাৰী চাহাৰা মিমি আতৈকা
মিমি অ' মাঃমৃল মেলচুৰুং গাম্‌যৌপীনম্‌।।
(দলে, নয়না)

(মইনা মোৰে বাছা, টোপনি যোৰা দেই, টোপনি নগ'লে শিয়ালে খাবলৈ আহিব তোমাক)

প্ৰকৃতিৰ মনোৰম বৰ্ণনাও নিচুকনি গীতবোৰত পৰিস্ফুট হোৱা আমি দেখিবলৈ পাওঁ। প্ৰকৃতিৰ গছ-গছনি, নৈ-নিজৰা, জোন, বেলি, তৰা আদিলৈ শিশুৰ পৰম আগ্ৰহ আৰু কৌতূহল। শিশুৰে বিভিন্ন প্ৰশ্নৰে মাতৃক ব্যতিব্যস্ত কৰি তোলে। সৰু অৱস্থাৰ পৰাই শিশু এটিয়ে ফল ফুল আদিৰ সৈতে পৰিচিত হয় আৰু চৌপাশৰ ফল ফুলৰ লগতে খেলাধূলা কৰি এটি শিশুৰ শৈশৱ পাৰ হয়। গতিকে সৰু সৰু গুটি বা ফলৰ প্ৰতি শিশুসকলৰো আগ্ৰহ বেছি। পিছে ডিঙিত গুটি লগাৰ ভয়ত তেনে ফল খাবলৈ দিয়া নহয়। পিছে অবুজন শিশুক নিচুকাবলৈ কেতিয়াবা হাতত ল'বলৈ নাইবা কেতিয়াবা গীতৰ মাজেৰে হ'লেও মাকে বা আইতাকে বাৰীতে বগৰী গছ ৰুই দিয়েহি। -

আমাৰে মইনা শুৱ এ
বাৰীতে বগৰী ৰুব এ
বাৰীৰে বগৰী পকি সৰিব
আমাৰে মইনাই বুটলি খাব।। (চেতিয়া, সোণপাহী)

ভগৱানৰ প্ৰতি এক শ্ৰদ্ধা বা ভক্তিৰ ভাৱ সৰু কালৰ পৰাই আমাৰ সমাজে শিশু সকলৰ কোমল মনত সুমোৱাই দিয়ে। লগতে ঘৰত সদায়ে শুনা সন্ধিয়াৰ প্ৰাৰ্থনাইয়ো শিশুৰ মন আকৃষ্ট কৰে। অস্পষ্ট শব্দেৰে হ'লেও এটি শিশুৰে আইতাক বা মাকৰ লগত প্ৰাৰ্থনা কৰাৰ দৃশ্য প্ৰায়বোৰ ঘৰতে দেখা পোৱা যায়। তাৰোপৰি শিশুসকলক দেৱতাৰ অন্য এক ৰূপ বুলিও লোকসমাজে বিশ্বাস কৰে। সেয়ে কেতিয়াবা কান্দি ঠেৰেঙা লগা শিশুক নিচুকাবলৈ মাক, আইতাক বা ধাই গৰাকীয়ে শেষ উপায় হিচাপে প্ৰাৰ্থনা বা তেনে সুৰতে নিচুকনি গীত গাই শিশুটিক শান্ত কৰাৰ চেষ্টা কৰে। বিশেষকৈ এই প্ৰাৰ্থনাবোৰ শিশু কৃষ্ণ কেন্দ্রিক হোৱা দেখা যায়।-

সন্ধিয়াৰ বেলিকা আহিছে প্ৰভু দেউ
কি দি কৰিমে সেৱা
ধুপে ধুনা জ্বলাই দিছো আগেবঢ়াই
চৰণ চুই কৰিছো সেৱা
চৰণ চুই কৰিছো সেৱা। (বৰুৱা, অন্নদা)
শ্যামকানু দূৰৈ হৈ নাযাবা
সোণৰ বাংশী গঢ়াই থৈছো ঘৰতে বজাবা।।
(চেতিয়া, সোণপাহী)

সৰুৰে পৰাই দেখি অহা প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন আশ্চৰ্য্যৰ প্ৰতি শিশু মনত বিচিত্ৰ কল্পনাৰ সমাবেশ ঘটে। দূৰ আকাশত ৰাতিৰ আন্ধাৰত তিৰবিৰাই থকা তৰাবোৰেও শিশুৰ খেয়ালি মনত নানা ভাৱৰ সঞ্চাৰ কৰে। সেয়ে অনুসন্ধিৎসু মনৰ শিশুৰে অভিভাৱকক এই বিষয়ে নানা অবান্তৰ প্ৰশ্নৰে ব্যতিব্যস্তও কৰে। শিশুৰ পৰিধিহীন মনৰ

দৰেই নিচুকনি গীতৰ বিষয়বস্তুৰো কোনো নিৰ্দিষ্ট পৰিধি নাই। ইয়াত কেৱল পৰিৱেশন কৰোতাৰ সুললিত কণ্ঠই বিভিন্ন বিষয়ৰ গীতৰ মাজেৰে শিশুক কল্পনাৰ ৰাজ্যলৈ লৈ যায়। সেয়ে কেতিয়াবা শিশুৰ মন ভাল লগাবলৈ মাকে বা আইতাকে জোনবাইক বিভিন্ন বস্তু বিচাৰি গীত গায় জোনৰ লগত কথা পাতে।

জোন বাই এ এটি তৰা দিয়া
এটি তৰা নালাগে
দুটি তৰা দিয়া। (চেতিয়া, সোণপাহী)
ৰ'দালি এ ৰ'দ দে
আলি কাটি জালি দিম
বৰ পিৰা পাৰি দিম
তাতে বহি বহি ৰ'দ দে।। (বৰুৱা, অন্নদা)

নিচুকনি গীতবোৰত চন্দ্ৰ-সূৰ্য আদিক আকৌ মানুহৰ দৰেই একো একোটা চৰিত্ৰ আৰোপ কৰি গীত গায়। নিচুকনি গোৱা মহিলাসকলে জোন-বেলি আৰু তৰাক খুড়া-মামা আদি বিভিন্ন সম্বোধনেৰে সম্বোধন কৰি কথা-বাৰ্তা হোৱাৰ অনেক উদাহৰণ লোকগীতৰ মাজত পোৱা যায়। এনে কৰাৰ মূলতে হৈছে শিশুৰ মনক আনন্দিত কৰিব পৰা নানা ভাৱৰ সঞ্চাৰ কৰা। যাতে এই অস্বাভাৱিক সম্বোধন আৰু কথা-বাৰ্তাবোৰৰ বুজ লওঁতেই শিশু টোপনি যায়। চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকসমাজত প্ৰচলিত তেনে এটি গীত হ'ল-

চান্দ' মামা, চান্দ' মামা
তাৰা কাঁহা গেল?
সুৰুয মামাৰ সাদী হইহে
তাৰা হুৱা গেল।
চান্দ' মামা, চান্দ' মামা
তাৰা কাঁহা গেল?
সুৰুয মামাৰ সুমান বঠিহে
তাৰা হুৱা গেল।। (তানি, দীনা)

অৰ্থাৎ চন্দ্ৰ মামাক সম্বোধন কৰি সোধা হৈছে যে, তৰা ক'লৈ গ'ল? চন্দ্ৰ মামাই তৰাবোৰ সুৰুয মামাৰ বিয়ালৈ গৈছে বুলি সমিধান দিছে। পুনৰ বাৰ চন্দ্ৰ মামাক তৰাবোৰ ক'লৈ গ'ল বুলি সোধাত চন্দ্ৰ মামাই তৰাবোৰ সুৰুয মামাৰ বিয়াৰ আশীৰ্বাদ অনুষ্ঠানলৈ গ'ল বুলি উত্তৰ দিছে। এনে পৰিস্থিতিত আকাশত বিয়া কিদৰে কেনেকৈ পাতিছে ইত্যাদি ইত্যাদি চিন্তাতে শিশু মন ভাগৰি পৰে আৰু টোপনি যায়।

নিচুকনি গীতত শিশুৱে সদয়ে দেখি থকা গছ-গছনি, জীৱ-জন্তু, প্ৰকৃতিৰ উপাদানবোৰ সজীৱ হৈ উঠে। জীৱ-জন্তু, ফল-ফুলে মানুহৰ লগত কথা পাতে, নিজৰ দুখ-দুৰ্দশাৰ বৰ্ণনা কৰে। সদায়ে দেখি থকা ফল-ফুলৰ এনে কথা বতৰা শুনি শিশুৰ কোমল মন চিন্তাতে বিভোৰ হৈ পৰে। লগে লগে শিশুটিৰ মনত প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি এক প্ৰেমৰ ভাৱ আচুতীয়াকৈ বাঁহ লয়। ''অ' ফুল অ' ফুল'' শীৰ্ষক নিচুকনি গীতটোত ফুল পাহৰ পৰা আৰম্ভ কৰি গৰুৰ পেটৰ ভোকৰ লগতে গৰখীয়াৰ পেটৰ ভোক আৰু এগৰাকী গৃহিনীৰ দুখ কষ্ট সকলো দিশৰে এক সুন্দৰ প্ৰতিফলন দেখা পোৱা যায়। ঠিক তেনেদৰে এটাৰ লগত আন এটা পৰিস্থিতি খাপ খোৱাই ৰচনা কৰা নিচুকনি গীতৰ এক সুন্দৰ উদাহৰণ চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ মাজতো দেখা যায়।

দিদি গ' একটা কথা,
কি কথা? বেং লতা
কি বেং? বুঢ়ী বেং
কি বুঢ়ী? বামহন বুঢ়ী
কি বামহন? ভাট বামহন। (তানি, দীনা)

এনেকৈয়ে কেঁচুৱাৰ কান্দোন বন্ধ নোহোৱালৈকে ধাইসকলে গীতৰ ছন্দ ৰাখি সুৰৰ যতি নপৰাকৈ বিভিন্ন বিষয়বস্তুক সামৰি গীত পৰিবেশন কৰি শিশুক শুৱাবৰ যত্ন কৰে। নিচুকনি গীতত সুৰ আৰু লয়েই প্ৰধান উপজীব্য। কেতিয়াবা গীতৰ লগতে শিশুৰ মন ভোলাবলৈ ধাই গৰাকীয়ে শিশুৰ ওমলা বাজনা বা হাত চাপৰি বজাইয়ো তাৰ তালে তালে খৰকৈ সুৰ ধৰি গীত পৰিবেশন কৰি শিশুক নিচুকাবলৈ যত্ন কৰা দেখা যায়। সোণোৱাল কছাৰী লোকসমাজতো এনে এটি নিচুকনি গীত পোৱা যায়। গীত গোৱাৰ সময়ত ধাই গৰাকীয়ে জোনোকা জাতীয় বাজনা বজাই বজাই গীতটি পৰিবেশন কৰে।

চিলিঙা বই ঘৰলৈ যাং
ঘুন ঘুন ঘুন ঐ আইটি
ফুল ফুল ফুল ঐ আইটি
লাদৈ পাদৈ ঘোপাদৈ
আৰু চাৰি বছৰ থাক ঐ আইটি
কুলাতে ল'ম ঐ আইটি।। (সোণোৱাল, প্ৰভাৱতী)

বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে, জিলাখনত প্ৰচলিত এই নিচুকনি গীতসমূহত ইয়াত বসবাস কৰা ভিন ভিন জনসমষ্টিৰ ধৰ্ম, কৰ্ম, বিশ্বাস, পৰম্পৰা, খাদ্যাভ্যাস, জীৱন

ধাৰণৰ প্ৰণালী আদি বিভিন্ন দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটে। অতীজতে ৰজাঘৰীয়া বিষয়া বা সমাজৰ সম্ভ্ৰান্ত লোকসকলে নিজৰ ঘৰত হাতী পুহিছিল আৰু যাতায়তৰ বাহন হিচাপে হাতীৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ইতিহাস প্ৰসিদ্ধ জিলাখনৰ হাবুঙত আহোম ৰজাৰ প্ৰথম ৰাজধানী আছিল। আনহাতে নাৰায়নপুৰতো কোঁচসকলে ৰাজত্ব কৰাৰ প্ৰমাণ আছে। গতিকে জিলাখনত দুয়োটা ৰাজবংশৰে বিষয়াসকলে হাতী, ঘোঁৰাত উঠি বাটে ঘাটে ঘুৰি ফুৰাৰ দৃশ্য সুলভ আছিল। জিলাখনত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতত যাতায়তৰ বাহন হিচাপে হাতী ব্যৱহাৰ কৰাৰ কথা উল্লেখ আছে।

জোন বাই এ বেজি এটি দিয়া
বেজিনো কেলৈ? মোনা চিলাবলৈ
মোনানো কেলৈ? ধন ভৰাবলৈ
ধননো কেলৈ? হাতী কিনিবলৈ
হাতীনো কেলৈ? উঠি ফুৰিবলৈ
হাতীত উঠিলে কি হয়? ডাঙৰ মানুহ হয়
হাতীত উঠি পানীৰাম ঘৰলৈ যায়
আলি বাটৰ মানুহবোৰে ঘুৰি ঘুৰি চাই।
(বৰুৱা, অন্নদা)

সোৱণশিৰি আৰু ৰঙানদীৰ উপৰিও লখিমপুৰ জিলাখনৰ মাজেৰে অৰুনাচলৰ পৰা নামি অহা বহুতো সৰু ডাঙৰ নৈ-উপনৈ আছে। নৈৰ পাৰে পাৰে বসবাস কৰা লোকসকলৰ যাতায়তৰ বাবে নাৱেই হৈছে প্ৰধান সাৰথি। আনহাতে হাতত কাগজৰ নাওঁ লৈ খেলা শিশুৰ মনতো নাৱৰ প্ৰতি দূৰ্বলতা আছে। সেয়ে শিশুক ওমলাবলৈ গোৱা গীতত যাতায়তৰ প্ৰধান সাৰথি নাৱৰো উল্লেখ দেখা যায়।

নাওঁ হেঙুলীয়া বঠা হেঙুলীয়া
আৰু হেঙুলীয়া চৈ এ।
চৈৰে তলতে জোনবাই গৈছে
হাততে বিচনী লৈ এ।। (চেতিয়া, সোণপাহী)

জিলাখনৰ সোৱণশিৰি আৰু ৰঙানদীৰ পাৰৰ অঞ্চলবোৰত বসবাস কৰা লোকসকলে বাৰিষা বানপানীৰ বাবে খেতি কৰিব নোৱাৰে। সেয়ে পানী কমাৰ লগে লগে খেতিৰ যা-যোগাৰ কৰে। নদীৰ পাৰে পাৰে বসবাস কৰা মিচিং সমাজত ঘৰত কৰ্মঠ লোকসকলে খেতিৰ দিনত ৰাতিপুৱাৰ পৰা সন্ধিয়ালৈকে খেতিৰ পথাৰত কাম কৰে। তেনেসময়ত কেঁচুৱা ওমলাব লগা হোৱা ঘৰৰ বয়োজেষ্ঠ্যজনে নিচুকনি গীতৰ মাজেৰে মাক দেউতাকে পথাৰত কৰা কামৰ বৰ্ণনাৰ লগতে পথাৰত খেতি কৰা বিভিন্ন ধানৰ বৰ্ননা কৰি গীত পৰিৱেশন কৰে। ইয়াৰ পৰা তেওঁলোকৰ কৃষি পদ্ধতিৰ উমান পোৱা যায়।

অইঅউৱা কাব্‌য়কা
নাঃনীমীচিন্ বাঃবুমীচিন্
আৰ্গীম ইমলাংকা,
কত্‌চুল অইয়াউৱা গৃআঙী দকুদ
অইয়াউনম্ আপিনীম্ বিয়ে! (দলে, নয়না)

(মইনা, নাকান্দিবা। মাৰা আৰু দেউতাৰাক পথাৰত কাম বন কৰিবলৈ দিয়া। অথনিকৈ মাৰা আৰু দেউতাৰা পথাৰৰ পৰা আহিলে তোমাক ভাত দিব। নাকান্দিবা।)

লখিমপুৰৰ ঢকুৱাখনা অঞ্চলটো ৰেচম খেতিৰ বাবে শুৱালকুছিৰ পাছতে অসমৰ ভিতৰতে বিখ্যাত। ঢকুৱাখনাৰ লগতে লখিমপুৰৰ বিভিন্ন অঞ্চলত বসবাস কৰা আহোম, সোণোৱাল কছাৰী, নাথ-যোগী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে এৰী পলু, পাট পলু আৰু মুগা পলু পুহে। তাৰ পৰাই আকৌ সূতা কাটি বিভিন্ন কাপোৰ বৈ ঘৰত ব্যৱহাৰ কৰাৰ লগতে বিক্ৰীও কৰে। নিচুকনি গীতৰ মাজতো চোম গছত পোহা মুগা পলুৰ উল্লেখ পোৱা যায়।

বেৰতে বগালে জয়ন্তী পৰুৱা
বগাই চোম গছত মুগা।
আমাৰে মইনা ৰণলৈ ওলাইছে
সজাই এ পৰলা ঘোঁৰা।। (সোণোৱাল, প্ৰভাৱতী)

০৩.০০ সিদ্ধান্ত ঃ

লখিমপুৰ জিলাখনৰ নিচুকনি গীতৰ আলোচনাৰ পৰা তলৰ সিদ্ধান্তসমূহত উপনীত হ'ব পাৰি।

০৩.০১ লখিমপুৰ জিলাখনত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতবোৰত ইয়াত বসবাস কৰা ভিন ভিন জনসমষ্টিৰ ধৰ্ম, কৰ্ম, বিশ্বাস, পৰম্পৰা, খাদ্যাভ্যাস, জীৱন ধাৰণৰ প্ৰণালীৰ উপৰিও স্থানীয় প্ৰাকৃতিক, আৰ্থসামজিক আদি বিভিন্ন আঞ্চলিক উপাদানৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে।

০৩.০২ জিলাখনত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতবোৰ মূলতঃ শিশুৰ মনোৰঞ্জনৰ বাবে ৰচনা কৰা। এই নিচুকনি গীতবোৰত শিশুৰ কোমল মনক জয় কৰিব পৰা বিভিন্ন বিষয়বস্তু গীতৰ ৰূপত গোৱা দেখা যায়।

০৩.০৩ জিলাখনত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতবোৰত

কৌতুহলী শিশু মনৰ চাহিদা পুৰাব পৰা বিভিন্ন উদ্ভট কল্পনা আৰু অতিপ্ৰাকৃতিক উপাদানৰ সমাৱেশ ঘটা দেখা যায়।

০৩.০৪ জিলাখনত প্ৰচলিত লোকগীতবোৰত ভীতি প্ৰদৰ্শনৰ জৰিয়তে শিশু এটিক শান্ত কৰাৰ চেষ্টা কৰা দেখা যায়। ভীতি প্ৰদৰ্শনৰ বাবে প্ৰকৃতিৰ আচহুৱা ৰূপৰ বৰ্ণনাৰ উপৰিও বিভিন্ন জীৱ-জন্তু আৰু কাল্পনিক চৰিত্ৰৰ সৃষ্টি কৰি লোৱা হয়।

০৪.০০ উপসংহাৰ ঃ

এনেদৰে গীতসমূহত প্ৰতিফলিত আঞ্চলিক উপাদানবোৰৰ বাবেই জিলাখনৰ নিচুকনি গীতবোৰক সুকীয়াকৈ আলোচনা কৰিব পাৰি। মাতৃ- শিশু আৰু নিচুকনি গীতৰ সম্পৰ্ক তাহানিৰে পৰাই আছে আৰু সদায় থাকিব। পিছে বৰ্তমান সময়ত নিচুকনি গীতৰ ব্যৱহাৰ পূৰ্বৰ তুলনাত যথেষ্ট কমি আহিছে। আজিকালি মহিলাসকলো ঘৰুৱা কাম-বনৰ লগতে বিভিন্ন বৃত্তিত নিয়োজিত হৈ থকাৰ বাবে সন্তানৰ বাবে খুউব কম সময়হে দিব পাৰে।

তাৰোপৰি সৰহসংখ্যক শিশুৰেই ম'বাইল, কম্পিউটাৰ আদিৰ সৈতে ব্যস্ত হৈ থাকে। ডিজিটেল মাধ্যমত্ৰে অসমৰ থলুৱা শিশুকেন্দ্ৰিক গীত-মাতৰ প্ৰসাৰৰ অভাৱ। সেয়েহে বৰ্তমান শিশুসকল অসমৰ বাহিৰৰ শিশু সাহিত্য, কমিক্‌ছ, কাৰ্টুন চৰিত্ৰ আদিৰ লগতহে সুপৰিচিত। নিচুকনি গীতসমূহ অসমীয়া মৌখিক লোকসাহিত্যৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। গতিকে সময়ৰ লগত খাপ খোৱাই ডিজিটেল মাধ্যমতো এইবোৰ ভৱিষ্যত প্ৰজন্মৰ বাবে সঞ্চয় কৰাৰ চেষ্টা কৰিব লাগে। ❑

প্ৰসংগ সূচী ঃ

১. লোকপিয়ল-২০১১, https://www.census2011.co.in/census/district/160-lakhimpur.html
২. লোকপিয়ল-২০১১, https://www.census2011.co.in/census/district/160-lakhimpur.html
৩. মৌচুমী চেতিয়া, লখিমপুৰ জিলাৰ উৎসৱ-পাৰ্বণ ঃ এটি অধ্যয়ন, পি. এইচ. ডি. গৱেষণা গ্ৰন্থ, আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১২, পৃষ্ঠা ২৯
৪. হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, হেমকোষ, হেমকোষ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-০৩, ষষ্ঠদশ সংস্কৰণ, ২০১৫, পৃষ্ঠা ১২০১
৫. S.H. Steinberg, Cassel's Encyclopædia of Literature, Funk & Wagnalls, New York, Vol - I, 1953, Page 225
৬. Maria Leach, Funk & Wagnalls standard dictionary of folklore, mythology, and legend, Funk & Wagnalls, New York, 1972, Page 1032
৭. Folk Music, Encyclopaedia of Britennica, https://www.britannica.com/art/folk-music
৮. বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, একাদশ প্ৰকাশ, ২০১২, পৃষ্ঠা৫
৯. প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামী, অসমীয়া জন সাহিত্য, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী-০১, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ১৯৮৬, পৃষ্ঠা ৯
১০. মহেশ্বৰ নেওগ, অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, সপ্তম তাঙৰণ, ১৯৮৭, পৃষ্ঠা ১৭
১১. হেমাঙ্গ বিশ্বাস, লোকসংগীত সমীক্ষা ঃ বাংলা ও আসাম, এ. মুখাৰ্জী এণ্ড কোং প্ৰা লি, কলকাতা-৭৩, প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৫১, পৃষ্ঠা ২-৩

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

ইংৰাজী ঃ

১. Maria Leach, Funk & Wagnalls standard dictionary of folklore, mythology, and legend, Funk & Wagnalls, New York, 1972
২. S.H. Steinberg, Cassel's Encyclopædia of Literature, Funk & Wagnalls, New York, Vol - I, 1953

অসমীয়া ঃ

১. নাহেন্দ্ৰ পাদুন, মিচিং লোকগীত অই নিঃতম্ সংগ্ৰহ, সম্পাদনা আৰু অনুবাদ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৩
২. প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামী, অসমীয়া জন সাহিত্য, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ১৯৮৬ প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামী, বাৰ মাহৰ তেৰ গীত, সাহিত্য অকাডেমি, নতুন দিল্লী, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ২০১৭
৩. বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, একাদশ প্ৰকাশ, ২০১২

৪. মহেশ্বৰ নেওগ, অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, সপ্তম তাঙৰণ, ১৯৮৭
৫. মৌচুমী চেতিয়া, লখিমপুৰ জিলাৰ উৎসৱ-পাৰ্বণ ঃ এটি অধ্যয়ন, পি. এইচ. ডি. গৱেষণা গ্ৰন্থ, আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১২
৬. লীলা গগৈ, অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৭
৭. শুকদেৱে অধিকাৰী, চাহ জনগোষ্ঠীৰ লোকগীত, লোক পৰম্পৰা আৰু উৎসৱৰ ৰূপৰেখা, সৰস্বতী ডি. এন. প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৫
৮. সংগীতা ৰাজখোৱা, হাজং লোক পৰিবেশ্য কলা, পূৰ্বায়ন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, জানুৱাৰী ২০২২
৯. হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, হেমকোষ, হেমকোষ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-০৩, ষষ্ঠদশ সংস্কৰণ, ২০১৫
১০. হেমাঙ্গ বিশ্বাস, লোকসংগীত সমীক্ষা ঃ বাংলা ও আসাম, এ. মুখাৰ্জী এণ্ড কোং প্ৰা লি, কলকাতা-৭৩, প্ৰথম সংস্কৰণ, ১৯৫১
১১. হেমন্ত কুমাৰ শইকীয়া (সম্পা), লোক সংস্কৃতি, চতুৰ্থ বছৰ, প্ৰথম সংখ্যা, ২০২০, নগাঁও

তথ্যদাতাৰ নাম আৰু ঠিকনা ঃ

১. চেতিয়া, সোণপাহী, বয়স-৮২, শিঙিমাৰী, লখিমপুৰ
২. তানি, দীনা, বয়স-৫২, উলুবাৰী, লখিমপুৰ
৩. দলে, নয়না, বয়স-৪২, আদিসুতি, লখিমপুৰ
৪. বৰুৱা, অন্নদা, বয়স-৭৮, ৰংপুৰীয়া, লখিমপুৰ
৫. সোণোৱাল, প্ৰভাৱতী, বয়স-৬৫, ভৰ্তি সোণোৱাল, লখিমপুৰ
৬. হাজং, মনীষা, বয়স-৩৮, কাটৰি চাপৰি হাজং গাঁও, লখিমপুৰ।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমৰ সামাজিক আৰু আধ্যাত্মিক ব্যৱস্থাত সাত (৭) সংখ্যাৰ প্ৰায়োগিক দিশ

ড° প্ৰদীপ শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক
গণিত বিভাগ, মৰিগাঁও মহাবিদ্যালয়
ডাক ঃ মৰিগাঁও, পিন ঃ ৭৮২১০৫
ম'বাইল ঃ ৮৪৮৬৫১৭০৯৫
ই-মেইল ঃ saikiapradip88@gmail.com

ড° অচ্যুত কুমাৰ দাস

সহকাৰী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
মৰিগাঁও মহাবিদ্যালয়
ডাক ঃ মৰিগাঁও, পিন ঃ ৭৮২১০৫
ম'বাইল ঃ ৯৬১৩১৪১০৯৫

সাৰাংশ ঃ

সংখ্যা হৈছে কোনো বস্তুৰ জোখ বা পৰিমাণ নিৰ্দেশক চিহ্ন। প্ৰতিটো সংখ্যাৰেই জোখ-মাখৰ বাবে হোৱাৰ ব্যৱহাৰৰ উপৰিও আধ্যাত্মিক, সাংস্কৃতিক আৰু সমাজ ব্যৱস্থাত এক সুকীয়া গুৰুত্ব আছে। আমাৰ এই আলোচনাত প্ৰধানকৈ ৭ সংখ্যাটোৰ অসমীয়া সভ্যতা আৰু সংস্কৃতিত থকা গুৰুত্ব সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

আৰম্ভনি ঃ

জীৱন যাদৃচ্ছিক। সংখ্যাই জীৱনত শৃংখলা আৰু নিশ্চয়তা আনে। সংখ্যাৰ অবিহনে জীৱন চিন্তা কৰাই অসম্ভৱ। যদি চিন্তা কৰা হয় তেন্তে আমাৰ জীৱনৰ এন্ট্ৰপি অতি বেছি হ'ব। সংখ্যাইহে আমাৰ বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডৰ ভাৰসাম্যতা ৰক্ষা কৰে। পোৱা যায় যে যিবোৰ বস্তুৰ পৰিমাণ জোখা সম্ভৱ তাৰ উত্তৰণ ঘটোৱাও সম্ভৱ। প্ৰতিটো সংখ্যাৰে আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত আধ্যাত্মিক, সাংস্কৃতিক, ভৌগোলিক, প্ৰাকৃতিক আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত যথেষ্ঠ গুৰুত্ব পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, জ্ঞান আৰু বৌদ্ধিক দেৱী সৰস্বতী পঞ্চমী বা ৫ সংখ্যাৰ সৈতে জড়িত। হিন্দু বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ড অনুসৰি বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডত পাঁচটা মৌল আছে ঃ ধৰ্ম, অগ্নি, জল, বায়ু আৰু আকাশ। আনহাতে হিন্দু ধৰ্মত ৩ নম্বৰটোৰে গুৰুত্ব পোৱা যায় যেনে তিনিজন স্বৰ্গদেৱ - ব্ৰহ্মা, বিষ্ণু, মহেশ্বৰ, শিৱৰ তৃতীয় চকু ইত্যাদি। ইছলামটো বহুতো চুন্নত কাম তিনিটা কৰিবলৈ পৰামৰ্শ দিয়া হয়। একেদৰে ইছলামত ৬ সংখ্যাটোৰো গুৰুত্ব দেখা যায়। কোৰাণৰ কেইবাটাও আয়াতত আল্লাহে বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ড ছয় দিনত সৃষ্টিৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। এনে বহু উদাহৰণে সংখ্যাৰ গুৰুত্ব আৰু ইয়াৰ প্ৰতি অনুসন্ধিৎসুতা বৃদ্ধি কৰে।

অসমৰ সামাজিক আৰু আধ্যাত্মিক ব্যৱস্থাত সাত (৭) সংখ্যাৰ প্ৰায়োগিক দিশ ঃ

আমাৰ দৈনন্দিন জীৱনক সুচাৰুৰূপে আগবঢ়াই নিয়াৰ ক্ষেত্ৰত কিছুমান শব্দচয়ন আৰু সংখ্যাৰ গুৰুত্ব যথেষ্ট। এনে এটা বিশেষ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা সংখ্যা হ'ল 'সাত'। বৌদ্ধিক আৰু আধ্যাত্মিক দিশত অতীজৰেপৰা চহকী

ভাৰতীয় আৰু অসমৰ সমাজ ব্যৱস্থাত সাত সংখ্যাটোৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। তাক আমি কেইটামান উদাহৰণেৰে দাঙি ধৰিব খুজিছোঁ।

উদাহৰণ ১ ঃ সাতটা বাৰ - দেওবাৰ, সোমবাৰ, মঙ্গলবাৰ, বুধবাৰ, বৃহস্পতিবাৰ, শুক্ৰবাৰ আৰু শনিবাৰ। বিজ্ঞানৰ দৃষ্টিত যদিও এই দিনকেইটা সম পৰ্য্যায়ৰ আৰু সমমৰ্যদাৰ তথাপি ভাৰতীয় আধ্যাত্মিক আৰু জ্যোতিষ শাস্ত্ৰৰ দৃষ্টিত প্ৰতিটো বাৰৰে গুৰুত্ব আৰু মহত্ব বেলেগ বেলেগ। ভাৰতীয় আধ্যাত্মিক দিশৰপৰা আমাৰ সমাজখনে কিছুমান বাৰক মংগলজনক আৰু কিছুমান বাৰক অমংগলজনক বুলি ভাবি আৰু সেইমতে সেইবোৰ ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে।

উদাহৰণ ২ ঃ ভাৰতীয় আৰু অসমৰ হিন্দু সমাজ ব্যৱস্থাতো আধ্যাত্মিক দিশৰপৰা সাতৰ গুৰুত্ব যথেষ্ট। বিশেষকৈ ব্যক্তিৰ মৃত্যুৰ পাছত মৃত শৰীৰৰ দাহ কৰাৰ সময়ত সাতথাক খৰিৰে চিতা প্ৰস্তুত কৰা হয় আৰু মৃত শৰীৰটোক মুখাগ্নি কৰাজনে সাতপাক ঘূৰিহে দাহ কৰে। অতীজৰেপৰা বৰ্তমানলৈকে এই পৰম্পৰা ভাৰতীয় হিন্দু সমাজ ব্যৱস্থাত প্ৰচলিত হৈ আহিছে, যিটোৰ আধ্যাত্মিক গুৰুত্বক কোনেও অস্বীকাৰ কৰিব নোৱাৰে। এই ক্ষেত্ৰত ৰামচৰণ ঠাকুৰৰ 'গুৰু চৰিত্ৰত এইদৰে উল্লেখ আছে -

"দাহ কাৰ্য সমপ্ৰিয়া কৰে জয়ধ্বনি।
বৈকুণ্ঠৰ লোকে ভৈলা আনন্দিত শুনি।।
তাসম্বাৰ মিলি গৈলা আনন্দ উৎসৱ।
সাতো বৈকুণ্ঠক চানি হৰি দৰে ৰুৰ।।"

উদাহৰণ ৩ ঃ আধ্যাত্মিকভাৱে ভাৰতীয় হিন্দু সমাজ ব্যৱস্থাৰ এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয় হৈছে বিবাহ পদ্ধতি, য'ত হোম-যজ্ঞৰ সময়ত দৰা-কইনাই অগ্নি, বায়ু, পৃথিৱী, জল, আকাশ, মাটি আৰু ভগৱানক সাক্ষী কৰি সাতপাক ঘূৰিব লাগে। ইয়াক জনপ্ৰিয়ভাৱে সাতফেৰ' বুলি জনা যায়।

উদাহৰণ ৪ ঃ আমাৰ সমাজব্যৱস্থাত সাত সংখ্যাৰ গুৰুত্ব পৰিলক্ষিত হোৱা আন এটা বিষয় হৈছে সপ্ত-বৈকুণ্ঠ। জীৱই পাৰ্থিৱ শৰীৰ পৰিত্যাগ কৰি আত্মা-পৰমাত্মাৰ সৈতে মিলনেৰে বৈকুণ্ঠগামী হোৱা বুলি আজিও বিশ্বাস কৰা হয়। মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে 'সাত বৈকুণ্ঠৰ'ৰ পট অংকন কৰি অসমীয়া সংস্কৃতিৰ ভঁড়াল জীপাল কৰি থৈ গৈছে, সেয়েহে আজিও প্ৰচলিত -

"জয় জয় বটদ্ৰবা বৈকুণ্ঠ দুতয়।
সেহি থানে নিজ গুৰু ভৈলন্ত উদয়।।
দক্ষিণে যাত্ৰাৰ দৌল পুৰুষে নিৰ্মিলন্ত।
সাতো বৈকুণ্ঠৰ পট লিখিয়া থৈলন্ত।।"

মহাপুৰুষজনাই সাত বৈকুণ্ঠৰ পট অংকন কৰাৰ উপৰিও সাতদিন-সাতৰাতি চিহ্ন যাত্ৰা ভাওনা কৰি অসমীয়া নাট্য জগত আৰু সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰলৈ অভূতপূৰ্ব যাত্ৰাৰ অনুকৰণত বিভিন্ন অংকীয়া নাট ভাওনাই অসমৰ জাতীয় জীৱনত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰাৰ উপৰিও আধ্যাত্মিক দিশত সকলো অসমীয়াক একত্ৰিত কৰি ৰাখিছে। উদাহৰণস্বৰূপে, অসমৰ গাঁৱে-ভূঁৱে হোৱা ৰাসযাত্ৰাৰ উপৰিও মাজুলীৰ ৰাস মহোৎসৱ, মৰিগাঁও চৰাইবাহীৰ কমিটি ভাওনা উল্লেখযোগ্য।

উদাহৰণ ৫ ঃ আধ্যাত্মিক দিশত শ্ৰীমদ্ভাগৱতৰ গুৰুত্বক কোনেও অস্বীকাৰ কৰিব নোৱাৰে। এই শ্ৰীমদ্ভাগৱতখনিক শুকমুনিয়ে অভিশাপগ্ৰস্ত ৰজা পৰীলক্ষিতৰ আগত সাতদিন-সাতৰাতি একেৰাহে পঢ়ি আৰু ব্যাখ্যা কৰাৰ বিষয়ে জানিব পাৰি। এই পৰম্পৰা আজিও প্ৰচলিত হৈ আছে।

উদাহৰণ ৬ ঃ নামধৰ্ম প্ৰচলনত দিহানামৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আৰু ভূমিকা আছে। এই দিহানামবোৰতো সাত সংখ্যাৰ মহত্ত্ব দেখা পোৱা যায়। যেনে- বৈকুণ্ঠগামী হ'ব খোজাসকলক উদ্দেশি দিহানামৰ জৰিয়তে এইদৰে প্ৰকাশ কৰিছে -

"চাৰিবেদ হুইলা নৌকাৰ সাত তলা
ভাগৱতে বাৰ হুইলা।
বৈকুণ্ঠত যাবলৈ যাৰ ইচ্ছা আছে
নৌকাৰে আগতে চৈলা।।"

উদাহৰণ ৭ ঃ ভাৰতবৰ্ষৰ দুখন মহাকাব্যৰ ভিতৰত 'ৰামায়ণ' উল্লেখযোগ্য। বাল্মীকি ৰামায়ন সাতকাণ্ডৰ লগত সংগতি ৰাখি পুৰণি অসমীয়া ভাষাতো সাতকাণ্ডৰ ৰামায়ণ ৰচিত হৈছিল। আনুমানিক ১৪০০ খ্ৰিষ্টাব্দৰ আগে-পাছে, মাধৱ কন্দলিয়ে সাতকাণ্ডৰ ৰামায়ণ এখন ৰচনা কৰে। সেই মতে মাধৱ কন্দলিয়ে লংকা কাণ্ডৰ ৫৬ সংখ্যক অধ্যায়ৰ ২৪ সংখ্যক পদত এইদৰে উল্লেখ কৰিছে -

"সাত কাণ্ড ৰামায়ণ পদবন্ধে নিবন্ধিলো
লম্ভা পৰিহৰি সাৰোচ্ছত
মহা মাণিকৰ বোলে কাব্য ৰসে কিছো দিলো
দুগ্ধক মথিলে যেন ঘৃত।।"

অন্যান্য উদাহৰণ ঃ সাত সংখ্যাৰ মাহাত্ম্য আৰু তাৎপৰ্য আধ্যাত্মিক দিশৰ পৰা আৰম্ভ কৰি বিভিন্ন দিশত দেখা পোৱা যায়। সংখ্যাটোৰ তাৎপৰ্য আমি আন বিভিন্ন ক্ষেত্ৰতো দেখা পাওঁ, যেনে ঃ

সপ্ত মহৰ্ষি ঃ বশিষ্ঠ, অত্ৰি, অংগৰি মৰীচি, পুলহ, পুলস্ত্য, ক্ৰতু।

সাত সমুদ্ৰ ঃ দধি, ক্ষীৰ, ইক্ষু, লৱণ, সুৰা, ঘৃত, স্বাদুক।

মহাদেশ ঃ এছিয়া, আফ্ৰিকা, ইউৰোপ, উত্তৰ আমেৰিকা, দক্ষিণ আমেৰিকা, অষ্ট্ৰেলিয়া আৰু কুমেৰু মহাদেশ বা এণ্টাৰ্কটিকা।

সপ্ত আশ্চৰ্য ঃ

প্ৰাচীন যুগৰ ঃ বেবিলনৰ শূন্যোদ্যান, মিছৰৰ পিৰামিড, ৰ'ডছ দ্বীপৰ পিতলৰ মূৰ্তি, গ্ৰীছৰ ডায়না দেৱীৰ মন্দিৰ, আলেকজেণ্ড্ৰিয়াৰ লাইট হাউছ, সাৰনাথৰ অশোক স্তম্ভ, অলিম্পিয়াৰ জুপিটাৰ মূৰ্তি।

মধ্য যুগৰ ঃ পিছাৰ হেলনীয়া স্তম্ভ, ৰোমৰ কলোছাছ, চীনৰ প্ৰাচীৰ, ইংলণ্ডৰ ষ্ট'ন হেঞ্জ, নানাকিনৰ চীনামাটিৰ স্তম্ভ, কানষ্টাণ্টিনোপলৰ ছেণ্ট ডোফিয়াৰ মূৰ্তি, আগ্ৰাৰ তাজমহল আদি।

ভাৰতীয় হিন্দু আৰু অসমীয়া সমাজ ব্যৱস্থাত যিদৰে আধ্যাত্মিক আৰু সামাজিকভাৱে সাত সংখ্যাটোৰ গুৰুত্ব আৰু মহত্ত্ব আছে, ঠিক সেইদৰে ইছলাম ধৰ্মতো ইয়াক ফুটি উঠা দেখা যায়। ইয়াৰে কেইটিমান উদাহৰণ দিব খুজিছোঁ-

আছমান ৭ খন, জমিন ৭ খন, চফা আৰু মাৰৱাৰ মাজত ৭ বাৰ চায়ি কৰিব লাগে, কাবাহ শ্বৰিফৰ তোৱাফ ৭ বাৰ কৰিব লাগে, ছিজদা কৰোঁতে (নামাজত) ৭টা অংগ ব্যৱহাৰ কৰিব লাগে, ইছলাম ধৰ্মৰ মতে জাহন্নাম ৭ খন, দোজখৰ দুৱাৰ ৭খন, আছহাৱে কাহাফ ৭টা, পয়গম্বৰ ইউচুফ (আঃ) ৭ বছৰ জেলখানাৰ ভিতৰত আছিল, হজৰত মহম্মদে আয়িছা ছিদ্দিকাক ৭ বছৰ বয়সত নিকাহ কৰিছিল। ইছলাম ধৰ্মত ছহিদ ৭ প্ৰকাৰৰ, যেনে- ধৰ্ম যুদ্ধত, টান বেমাৰ, পানীত পৰি মৰা, জুইত পুৰি মৰা, মহিলাই সন্তান জন্ম দেখাৰ পাছত ৪০ দিনৰ ভিতৰত মৃত্যু হ'লে ইত্যাদি।

উপৰিউক্ত উদাহৰণবোৰৰ পৰা দেখা যায় সাত সংখ্যাটোৰ আধ্যাত্মিক আৰু সামাজিক গুৰুত্ব প্ৰতি জাতি-ধৰ্মৰ লগত ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ আছে।

অসমৰ লোকসংস্কৃতি আৰু পৰম্পৰাত সাত সংখ্যাৰ তাৎপৰ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

জাতি এটাৰ স্বৰূপ বিশ্বাস আৰু কৃষ্টিৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ পায়। অসমৰ সংস্কৃতি বৃহত্তৰ ভাৰতীয় সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত হৈ আছে। আৰ্য দ্ৰাবিড়, কিৰাট, নিষাদ আদি জাতি-উপজাতিৰ সমাহাৰত অসমৰ লোক কৃষ্টিয়ে পূৰ্ণৰূপ লৈছে। অসমৰ এই বাৰেবৰণীয়া লোক সংস্কৃতিক আমি গাণিতিক সংখ্যা সাতৰ ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে পৰ্যালোচনা কৰিব খুজিছোঁ, যেনে-

১। অসমৰ জাতীয় উৎসৱ বুলি কলে আমাৰ মনলৈ বিহুৰ কথাই আহে। চ'তৰ সংক্ৰান্তিৰ পৰাই সাতদিন ধৰি বহাগ বিহু পালন কৰা হ'য়। এই সাত বিহু হৈছে- গৰু বিহু, মানুহ বিহু, গোঁসাই বিহু, তাঁতৰ বিহু, ঘৰচীয়া জীৱ-জন্তুৰ বিহু আৰু চেৰা বিহু। এই বিহুতেই জড়িত হৈ আছে অসমীয়া জাতিৰ সমন্বয় আৰু আনন্দ।

নামনি অসমৰ পুৰণি গোৱালপাৰাত বিহুক 'বিষুৱা' বুলি কয়। তাতো সাতদিন ধৰি এই বিহু পালন কৰা হয়। মহামায়া থানৰ আই আই, শাকাতিৰ থানাত গৰু বিহুৰ দিনা পূজা-পাৰ্বণ কৰি বিষুৱা উৎসৱ পালন কৰে। ত্ৰিপুৰীসকলে বসন্ত উৎসৱক 'গৰীয়াপূজা' নামেৰে নামকৰণ কৰি বিহুৰ সাত দিনৰ দিনা বিশেষ নৃত্য-গীত উলহ-মালহেৰে উদযাপন কৰে।

২। লোকসংস্কৃতিত সাত শাক তোলা উৎসৱ ঃ নামনি অসমত চেৰা বিহুৰ দিনা প্ৰথম পুৱাতে পৰম্পৰাগতভাৱে ঐতিহ্যপূৰ্ণ এই সাত শাক তোলা উৎসৱটো পালন কৰে। ইয়াৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ পৰম্পৰা হৈছে, সাত প্ৰকাৰ শাক, যেনে-কলমৌ, খুতুৰা, চেঙেলী, মানিমুনি, পিতকইচা, নেঠেঙা আৰু ভঠুৰা। এই ক্ষেত্ৰত সাত শাক উৎসৱটো অনুষ্ঠিত কৰিবলৈ যাওঁতে শিৰ-

পাৰ্বতীৰ কথা আৰু উপমাৰে তলত দিয়া ধৰণেৰে একেলগে গায়-

"সাত শাকৰ কি কি নাউ পাৰ্বতী ভঙুৰাৰ নাউ
আমি সাত শাক তুলিবাকে যাওঁ।"

৩। তিৰাসকলে বিহুৰ প্ৰধান উপাস্য দেৱতা 'ফা-মহাদেউ'ক উদ্দেশ্য কৰি বিহুৰ নাচ আৰম্ভ নহওঁতেই সাতটা নৃত্য কৰে। শেষৰ দিনা তেওঁলোকৰ পুৰোহিতে নতুন নৃত্যৰে বিহুৰ সামৰণি মাৰে।

৪। ছোৱালী পুষ্পিতা হ'লে অসমীয়া সমাজত চাৰি বা সাতদিন, তোলনি বিয়া, নোৱাই তোলনি বা উঠন বিয়া পতা হয়।

৫। অসমীয়া লোকসংস্কৃতিত গুৰুত্বপূৰ্ণ বৰঙনি আগবঢ়োৱা কোচ-ৰাজবংশী সম্প্ৰদায়ৰ এটি উৎসৱ হ'ল 'হুদুম পূজা', য'ত ৰাইজৰ মংগলৰ বাবে হুদুম (বৰুণ) দেৱতাক পূজা কৰা হয়। এই পূজাতো সাত সংখ্যাৰ তাৎপৰ্য দেখা যায়, যেনে-

"হুদুমেৰ ঘৰ সাত ভাই
কাবোৰ দেখং পানী নাই
বইলপেটী মেধৰে, জুই খাটাম্বৰ
মোৰ গা-ধোৱা জল দেতং, জল পান কৰা।"

অসমীয়া ফকৰা যোজনাত সাত সংখ্যাৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায় -

১। সাত শতৰুৰে যেন লাই নাপায়।

২। সাত সাগৰ তেৰ নদী

৩। সাতে পাঁচে মিলি ইত্যাদি।

সামৰণি ঃ

উপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা এইটো স্পষ্ট হয় যে ৭ সংখ্যাটোৰ অসমৰ সামাজিক আৰু আধ্যাত্মিক ব্যৱস্থাত যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। কিন্তু দিনক দিনে ব্যস্ততাৰ বাবে হওক অথবা যান্ত্ৰিকতাৰ বাবে হওক, কিছুমান বস্তুৰ গুৰুত্ব থকাৰ পাছতো আমাৰ অজ্ঞাতে সেইবোৰ হেৰাই যাবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। সেয়েহে এই ক্ষেত্ৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰাৰ প্ৰয়োজন যি গণিতৰ প্ৰতি উৎসুকতা বৃদ্ধিত উৎসেচকৰ ভূমিকা গ্ৰহন কৰিব। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

১. অসমৰ ভিন্নগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতি-- ড° সৰ্বানন্দ বৰ্মন।
২. জানানে-- ড° সুবোধ সেন বিদ্যানিধি।
৩. অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত-- ড° সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা।
৪. দিহানাম-- জ্যোতি প্ৰকাশন।
৫. মহাপুৰুষ মাধৱদেৱ অধ্যয়ন-সম্পাদক ঃ জীৱকান্ত নাথ।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমৰ টাইফাকে জনগোষ্ঠীৰ লোকসাহিত্য

দেৱযানী বকলীয়াল

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গড়গাঁও মহাবিদ্যালয় তথা
গৱেষক ছাত্ৰী, লোক-সংস্কৃতি গৱেষণা
বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
মবাইল ঃ ৯১০১৩৩৭৭০৭
ই-মেইল ঃ debubakalial@gmail.com

অৱতৰণিকা ঃ ·

আহোমসকলৰ পৰৱৰ্তী সময়ত অষ্টাদশ শতিকাত অসমলৈ আগমন ঘটা এছিয়াৰ বৃহৎ টাই জনগোষ্ঠীৰ অন্যতম শাখা টাইফাকে লোকসকল বৰ্তমান অসমৰ ঘাইকৈ ডিব্ৰুগড় জিলাৰ নাহৰকটীয়াৰ নামফাকে আৰু টিপাম ফাকে গাঁও আৰু তিনিচুকীয়া জিলাৰ মাৰ্ঘেৰিটাৰ বৰফাকে, মান্ ম', নঙ্ লাই , লঙ্ ফাকে , লিডুৰ মৌঙ্ লাঙ্ , নিঙ্ গাম্ আৰু জাগুণৰ ফা নঙ্ - এই নখন গাঁৱত বসবাস কৰি আছে। জনসংখ্যাৰ ফালৰপৰা জনগোষ্ঠীটো ক্ষুদ্ৰ যদিও স্বকীয় সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য ধৰি ৰাখিবলৈ সক্ষম হৈছে। টাইফাকেসকল নৃ-তাত্ত্বিকভাৱে মংগোলীয় নৃগোষ্ঠী আৰু ভাষিকভাৱে চীন-তিব্বত ভাষা পৰিয়ালৰ থাই চীন বা শ্যাম চীন শাখাৰ অন্তৰ্গত। তেওঁলোক বৌদ্ধ ধৰ্মৰ অন্তৰ্গত হীনযানী বা থেৰবাদী। UNESCO-ৰ দ্বাৰা 2010 চনত প্ৰকাশিত, Christopher Moseley সম্পাদিত *Atlas of World's Languages in Danger*-ত টাইফাকে ভাষাক গুৰুতৰভাৱে বিপদাপন্ন (Severely endangered) ভাষা হিচাপে চিহ্নিত কৰিছে। ভাষা একোটাৰ বিলুপ্তিয়ে সংশ্লিষ্ট ভাষিক গোষ্ঠীটোৰ লোকসাহিত্য-সংস্কৃতিত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলায়। এনে ক্ষেত্ৰত বিপদাপন্ন ভাষিক গোষ্ঠীটোৰ লোকসাহিত্যৰ সংগ্ৰহ, লিখিত ৰূপত সংৰক্ষণ, অধ্যয়ন-আলোচনা, নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত লোকসাহিত্য চৰ্চা-অনুশীলনৰ প্ৰতি সচেতনতা বৃদ্ধি ইত্যাদি পদক্ষেপ গ্ৰহণৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

টাইফাকে লোকসাহিত্যৰ চমু পৰিচয় ঃ লোকসাহিত্যৰ বিভিন্ন উপাদানবোৰক বিষয়বস্তু, সৃষ্টি তথা পৰিৱেশনৰ প্ৰসংগ বা অনুষংগ, সাধিত প্ৰকাৰ্য অনুসৰি শ্ৰেণী বিভাজন কৰাৰ উপৰি জাতিগত, তাত্ত্বিক, আঞ্চলিক আদি বিভিন্ন দৃষ্টিভংগীৰে শ্ৰেণীবিভাজন কৰিব পাৰি। তাত্ত্বিক শ্ৰেণীবিভাজন অনুসৰি আৰু কিছু নিজা দৃষ্টিভংগীৰে টাইফাকে লোকসাহিত্যৰ শ্ৰেণীবিভাজন কৰি চমু আভাস আগবঢ়োৱা হ'ল।

গদ্যধৰ্মী লোককথা ঃ টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত লোককথাৰ বিষয়বস্তু অতি বৈচিত্ৰ্যময়। সকলো জনগোষ্ঠীৰ সাধুতে কিছুমান সাৰ্বজনীন ৰূপ তথা বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়। জন্তু, চৰাই, ৰাক্ষস, ভূত, যখিনী, দেৱতা, পৰী আদি সাধুকথাৰ চৰিত্ৰসমূহ চিন্তা, কৰ্ম অনুযায়ী মানৱ চৰিত্ৰৰে ভিন্ন ৰূপ বুলিব পাৰি। বহু লোককথাত বৌদ্ধ ধৰ্মীয় বিশ্বাস, পৰম্পৰাৰ প্ৰতিফলন

দেখিবলৈ পোৱা যায়। তদুপৰি জাতকৰ সাধুকথা টাইফাকেসকলৰ মাজত বহুলভাৱে প্ৰচলিত। টাইফাকেসকলৰ মাজত প্ৰচলিত কেইটামান গদ্যধৰ্মী লোককথা চমুকৈ বৰ্ণনা কৰা হ'ল।

খুন চাং আৰু চ্যাও চিকিয়াৰ সাধু ঃ স্বৰ্গৰ দুখন ৰাজ্য ম্যুং চাঙৰ অধিপতি খুন চাং আৰু মুং ফিৰ অধিপতি চ্যাও চিকিয়াৰ মাজত ক্ষমতাক কেন্দ্ৰ কৰি হোৱা যুদ্ধত এবাৰ চ্যাও চিকিয়াই নিজৰ তৰোৱালেৰে খুনচাঙৰ মূৰটো কাটি পেলালে। কিন্তু আচৰিতধৰণে খুনচাঙৰ কটা মূৰটো পুনৰ জোৰা লাগি যায়। অৱশেষত খুনচাঙৰ নুমলীয়া কন্যাৰ লগত ষড়যন্ত্ৰ কৰি খুনচাঙৰ মূৰৰ চুলিৰেই তেওঁক শিৰচ্ছেদ কৰিলে। কিন্তু খুনচাঙৰ কটা মুৰটো মাটিত পৰাৰ লগে লগে সকলোফালে জুই জ্বলি উঠিল, মাৰি-মৰকে চৌদিশ ভৰি পৰিল।

এই বিপদৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ খুনচাঙৰ সাতগৰাকী কন্যা আগুৱাই আহিল। তেওঁলোকে জগতৰ হিতৰ কাৰণে দেউতাৰ কটা মূৰটো পাল পাতি প্ৰতি দিনে দাঙি ধৰি থাকিল। মুঙ চাঙৰ এদিনে পৃথিৱীৰ এবছৰৰ সমান। ফাকেসকলে বিশ্বাস কৰে যে পৃথিৱীৰ সময়ৰ লেখেৰে এবছৰৰ মূৰে মূৰে কটা মূৰটো কন্যাসকলে সলনা-সলনি কৰে। সাল-সলনি কৰি কটা মূৰটো লওঁতে যিফালে মুখ কৰে সেই ফালেই বোলে মাৰি মৰক হয়। সেয়েহে পয় চাংকেনৰ দিনা চাক্ৰেট (বুদ্ধাব্দ বৰ্ষপঞ্জী)গণনাৰ মতে খুনচাঙৰ কটা মূৰটো যিফালে মুখ কৰি ধৰিছে বুলি অনুমান কৰা হয়, সেই দিশলৈকে ভগৱান বুদ্ধৰ মূৰ্ত্তিসমূহ ৰখা হয়, যাতে খুনচাঙৰ মূৰৰ পৰা ওলোৱা অপশক্তি প্ৰতিহত হয়। (চন্দ্ৰ কমল চেতিয়া, সংক. আৰু সম্পা., *উজনি অসমৰ জনগোষ্ঠীয় সাধুকথা*, ২০১৭)

লোককথাসমূহত লোকসংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটা দেখা যায়। টাইফাকেসকলে পালন কৰা চাংকেন উৎসৱৰ অন্যতম লোকাচাৰ 'ক্যাং ফ্ৰা' (বুদ্ধ মূৰ্ত্তি থোৱা অস্থায়ী গৃহ)ৰ কোনটো দিশত বুদ্ধৰ মূৰ্তিসমূহ ৰাখিব সেয়া গণনা অনুসৰি সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰাৰ আঁৰৰ লোকবিশ্বাস, এই পৰম্পৰাৰ তাৎপৰ্য তথা ধৰ্মীয় বিশ্বাসৰ বিষয়ে এই লোককথাটিৰ জৰিয়তে অৱগত হ'ব পাৰি। নাৰীক জগত উদ্ধাৰ কৰোঁতা, ৰক্ষা কৰোঁতাৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰা হৈছে। তদুপৰি বুদ্ধৰ প্ৰতি প্ৰবল আস্থা লোককথাটিত প্ৰকাশ পাইছে।

য়ে খাম ক আৰু মাও নঙ য়াওৰ সাধু ঃ 'য়ে খাম ক আৰু মাও নঙ য়াও'ৰ প্ৰেম কাহিনীৰ নায়িকা 'য়ে খাম ক ' আৰু নায়ক 'মাও নঙ য়াও'। এই প্ৰেমত বাধা হৈ নানা ছলনাৰে মাহীমাকে দুয়োৰে বিচ্ছেদ ঘটায়। এদিন 'য়ে খাম ক'ই তাঁত বৈ থাকোঁতে মাহীমাকে মাকোৰে তাইৰ মূৰত জোৰেৰে আঘাত কৰি মাৰি পেলায়। 'য়ে খাম ক'ই মৃত্যু হৈ 'কাকৈফণি' (Hoopoe) চৰাইৰ ৰূপ ল'লে। এই জনশ্ৰুতি অনুসৰি 'কাকৈফণি' চৰাইক টাইফাকেসকলে 'নক্সক য়ে খাম ক' বুলি কয়। চৰাইটোৰ মূৰত এতিয়াও মাহীমাকে আঘাত কৰা মাকো লাগি আছে বুলি বিশ্বাস কৰে। (সুবাসনা মহন্ত চৌধুৰী, পল্লৱী ডেকা বুজৰবৰুৱা, সম্পা., *অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোকসাহিত্য*, ২০০৯)

জনগোষ্ঠীটোৰ লোকৰ মাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন লোকবিশ্বাস, প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন উপাদান, প্ৰাকৃতিক ঘটনা-পৰিঘটনাৰ কাৰণ বিচাৰি কৰা কল্পনা প্ৰকাশ লোককথাসমূহত পোৱা গৈছে। কাকৈফণি চৰাইৰ মূৰৰ আকৃতিয়ে সৃষ্টি কৰা কৌতূহল আৰু তাৰ উত্তৰ হিচাপে গঢ়ি লোৱা কাহিনী সাধুকথাত বিষয়বস্তু হিচাপে ঠাই পোৱা দেখা গৈছে। 'খাম ক'ই তাঁত বৈ থকা বৰ্ণনাৰ মাজেৰে টাইফাকে লোকজীৱনৰ ছবি দাঙি ধৰিছে।

নিজৰ আয়ুস ঘূৰাই অনা ল'ৰা ঃ অতি পুৰণি কালত অতি চোকা আৰু অতি নম্ৰ প্ৰকৃতিৰ এটা লক্সৰাই গুৰুৰ টোলত থাকি শিক্ষা গ্ৰহণ কৰিছিল। দিব্য শক্তিসম্পন্ন গুৰুৱে এদিন ধ্যানত বহোতে জানিব পাৰিলে যে তেওঁৰ প্ৰিয় শিষ্যজন আৰু মাত্ৰ সাত দিনৰ বাবেহে জীয়াই থাকিব। মৃত্যুৰ আগত ল'ৰাটোৱে মাক - দেউতাকক দেখিবলৈ পাওক বুলি গুৰুৱে ল'ৰাটোক সাতদিনৰ ছুটী দিয়া বুলি কৈ ঘৰলৈ পঠিয়ালে। সাতদিনৰ পিছত ল'ৰাটো ঘূৰি গুৰুৰ টোল পোৱাত গুৰু আচৰিত হ'ল। গুৰুৱে ল'ৰাজনক সকলো কথা ভাঙি পাতি বুজাই দিলে। লগতে ক'লে, "মোৰ দৈব্য শক্তি কেতিয়াও মিছা নহয়। তুমি নিশ্চয় এনে কিছু কৰ্ম কৰিছা যাৰ ফলত তোমাৰ মৃত্যু খণ্ডন হ'ল।" ল'ৰাটোৱে ক'লে, "গুৰুদেৱ মই ঘৰলৈ যাওঁতে দেখিছিলো বাটত এখন বিলত এসোপা মাছ বোকাত লেটি পেটি হৈ আছে। মই সিহতক বোকাৰপৰা তুলি ওচৰৰে এখন নদীৰ পানীত মেলি দিছিলো। খাল এটাত সাঁকো নথকাত ৰাইজৰ বৰ অসুবিধা হৈছিল। মই সাঁকো এখন সাজি দিছিলো। তৃতীয়তে , এজোপা সৰু আঁহত গছ তললৈ

হাউলি বোকাত লেটি পেটি হৈ আছিল। মই ডাল এটা পুতি গছজোপা লতাৰে বান্ধি পোনাই থৈ আহিছিলোঁ।” তেতিয়া গুৰুৱে ল’ৰাটোক আশীৰ্বাদ দি ক’লে -“তোমাৰ সাত দিনৰ আয়ুসহে আছিল। কিন্তু মৃত্যুমুখী মাছকেইটাক তুমি জীৱন দান দিলা। সিহঁতৰ আয়ুস তোমাৰ আয়ুসৰ লগত যোগ হ’ল। সাঁকোডাল সাজিও তুমি মানুহৰ আশীৰ্বাদ পালা। আঁহতজোপায়ো তোমাক আয়ুস দিলে। নিজ সৎকৰ্মৰ ফলত তুমি মৃত্যুকো পৰাজিত কৰিলা।” তেতিয়াৰেপৰা টাইফাকে সমাজত কাৰোবাৰ টান বেমাৰ-আজাৰ হ’লে মাছ দান দিয়ে। জীয়া মাছ পানীত এৰি দিয়ে। সাঁকো সাজি দিয়ে। আঁহত গছৰ গুৰিত পানী ঢালিলে আশীৰ্বাদ পায় বুলি এওঁলোকৰ বিশ্বাস । (দিব্যলতা দত্ত, সংক., *জনগোষ্ঠীয় সাধু সমগ্ৰ,* ২০১৮)

টাইফাকে লোকসাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাই প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন উপাদান সংৰক্ষণত সহায় কৰাৰ লগতে পৰিৱেশ-সজাগতা বৃদ্ধি, মানুহ আৰু প্ৰকৃতিৰ বন্ধুত্বৰ চিত্ৰায়নেৰে প্ৰকৃতিৰ সকলো উপাদানৰ প্ৰতি উদাৰ মনোভাৱ সৃষ্টিত সহায় কৰিছে। এই লোককথাটোত গছ, মাছ আদি প্ৰকৃতিৰ সকলো উপাদানৰ প্ৰতি উদাৰ হব্বলৈ শিকনি দিছে। আঁহত গছৰ গুৰিত পানী ঢলা, জীয়া মাছ পানীত এৰি দিয়া, সাঁকো সাজি দিয়া আদি কৰ্মৰ মহানতা প্ৰকাশ কৰি মানৱ সমাজৰ লগতে প্ৰকৃতিৰ হিত সাধন, গছ সংৰক্ষণ বা জীয়াই ৰখাৰ বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰিছে। তদুপৰি লোককথাটোৰ জৰিয়তে টাইফাকে লোকসকলে বেমাৰ-আজাৰ হক্সলে নিৰাময়ৰ বাবে কৰা বিভিন্ন লোকাচাৰ যেনে -মাছ দান দিয়া, জীয়া মাছ পানীত এৰি দিয়া, সাঁকো সাজি দিয়া, আঁহত গছৰ গুৰিত পানী ঢলা আদিৰ বিষয়ে প্ৰকাশ কৰিছে।

লোকগীত ঃ লোকসমাজে জন্মৰে পৰা মৃত্যুলৈকে পালন কৰা বিভিন্ন লোকাচাৰ, উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ ৰং-আনন্দ, দৈনন্দিন জীৱনৰ আৱেগ-অনুভূতি, আহৰণ কৰা জ্ঞান-অভিজ্ঞতা আদি স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে প্ৰকাশ কৰা এক সুৰীয়া মাধ্যম হৈছে লোকগীত। টাইফাকে জনগোষ্ঠীৰ লোকগীতৰ লগত লোকবাদ্য আৰু লোকনৃত্যৰ বিশেষ সম্পৰ্ক নাই। ‘খাম্ য়ন কং ’ গীতৰ বাহিৰে কোনো এবিধ গীততে বাদ্য যন্ত্ৰ সংগত কৰা নহয় তথা নৃত্যও পৰিৱেশন কৰাৰ পৰম্পৰা নাই। টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত লোকগীতসমূহৰ চমু পৰিচয় আগবঢ়োৱা হ’ল।

(ক) **শিশু-কিশোৰকেন্দ্ৰিক গীত ঃ** ‘খাম লাও লুক অন’ হৈছে কেঁচুৱা বা শিশুৱে টোপনি যোৱাৰ পৰত আমনি কৰিলে নিচুকাবলৈ গোৱা এক শ্ৰেণীৰ গীত। আইতাসকলে সন্ধিয়া পৰত চাং ঘৰৰ মুকলি অংশত শিশুসকলৰ সৈতে একেলগে বহি শুৱাৰ বা জিৰোৱাৰ চলেৰে পৰিৱেশন কৰা ‘খাম নন ছ্যান’, ককাই নাতিক দিয়া নীতিশিক্ষাবা ‘খাম পু চন লান’, শিশুৰ ওমলা গীত বা খেল - ধেমালিৰ গীত ‘খাম লেইন’ আদি অন্যতম শিশু-কিশোৰকেন্দ্ৰিক গীত।

(খ) **ধৰ্মীয় উপাসনামূলক গীত ঃ** ‘খাম পাই ফ্ৰা’ হ’ল সুৰীয়া উপস্থাপনশৈলীযুক্ত ধৰ্মীয় বন্দনা। মম জ্বলাৱো, বুদ্ধ মূৰ্তিৰ সন্মুখত নৈবেদ্য (আহাৰ) আগবঢ়োৱা, ফুল আগবঢ়োৱা আদি বিভিন্ন উপলক্ষ্যত গোৱা বন্দনাসমূহত বিভিন্ন বিষয়বস্তু লক্ষ্য কৰা যায় যদিও মূল ভাৱটো হৈছে ভক্তি, ধৰ্মীয় তত্ত্ব, দৰ্শন আদি।

(গ) **আশীৰ্বাদমূলক গীত ঃ** ঘৰুৱা বা সামাজিক অনুষ্ঠান, ধৰ্মীয় অনুষ্ঠান আদিৰ অন্তত শলাগ জ্ঞাপনৰ গীত বা আশীৰ্বাদ প্ৰদান কৰা গীত ‘লিক ৰৈ’, জ্যেষ্ঠসকলে কণিষ্ঠসকলক হাতত সূতা বান্ধি সুৰ লগাই গোৱা আশীৰ্বাদমূলক গীত ‘খাম ফুক মাই’ টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত।

(ঘ) **আনন্দ বিনোদনমূলক গীত ঃ** প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন উপাদানৰ সৌন্দৰ্য বৰ্ণনাৰে, বিভিন্ন প্ৰতীক, উপমাদি অলংকাৰৰ প্ৰয়োগেৰে ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰেম নিবেদন, প্ৰেমৰ পৰা ওপজা হৰ্ষ-বিষাদ, অভিমান, প্ৰেয়সীৰ ৰূপ-গুণৰ বৰ্ণনা আদি মূল বিষয়বস্তুৰে ৰচিত ‘চা ঐ’, ৰাজহুৱা তথা ব্যক্তিগত পৰ্যায়ত আয়োজন কৰা দানোৎসৱত ডেকাসকলে টাইফাকে পৰম্পৰাগত কং (ঢোল), তাল (চেং) আদি বাদ্য তথা নৃত্যসহ ৰাইজৰ তথা গৃহস্থৰ প্ৰশংসা কৰি, মাননি বিচাৰি পৰিৱেশন কৰা গীত ‘খাম য়ন কং’-এ মূলতঃ আনন্দ বিনোদনৰ প্ৰকাৰ্য সাধন কৰে।

(ঙ) **বিলাপ গীত ঃ** কোনো আত্মীয়ৰ মৃত্যুৰ সময়ত বা মৃতকক বিদায়ৰ কৰুণ মুহূৰ্তত কান্দোনৰ লগে লগে মৃত ব্যক্তিগৰাকীৰ জীৱিতকালৰ কাৰ্যাৱলী, ৰূপ-গুণ আদিৰ বৰ্ণনাৰে অতীতৰ স্মৃতিচাৰণ তথা বৰ্তমানৰ বিষাদবোধ, সংসাৰৰ মায়া-মোহ ত্যাগ কৰি আত্মাৰ মুক্তি লাভ আদি বিভিন্ন বিষয় সুৰীয়াকৈ উপস্থাপন কৰা ‘খাম হায় কাপ’ এসময়ত টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত আছিল।

(চ) **তত্ত্বপূৰ্ণ বা দাৰ্শনিক গীত ঃ** ‘খাম কাম্মাথান’

হৈছে জন্মৰপৰা মৃত্যু পৰ্যন্ত মানৰ শৰীৰৰ পৰিৱৰ্তন, সংসাৰৰ যন্ত্ৰণা, অনিশ্চয়তা, অনিত্যতা, কৰ্মফল, নিৰ্বাণ প্ৰাপ্তিৰ পথ ইত্যাদি সম্পৰ্কে দাৰ্শনিক বৰ্ণনা উপলব্ধ তত্ত্বপূৰ্ণ বা দাৰ্শনিক গীত।

(ছ) **কৃষিৰ সৈতে জড়িত গীত ঃ** পথাৰৰপৰা শেষ মুঠি ধান দাই অনাৰ সময়ত, মৰণা মৰাৰ পাছত বাও দি চফা কৰা গুটি ধান ভৰাঁলত ভৰোৱাৰ সময়ত সাধাৰণতে বয়োজ্যেষ্ঠ টাইফাকে মহিলাসকলে 'খাম হং খন খাও' অৰ্থাৎ লখিমী আৱাহনী গীত পৰিৱেশন কৰে। তেনেদৰে অতীতত উৰালত ধান বানোতে ধান বনাৰ ছন্দে ছন্দে ডেকা-গাভৰুসকলে 'খাম চয় য়য়' গোৱাৰ পৰম্পৰা আছিল। 'চয়'ৰ অৰ্থ হৈছে সুললিত আৰু 'য়য়' হৈছে 'চয়'ৰ অনুকাৰ শব্দ।

লোকোক্তি ঃ টাইফাকে লোকসাহিত্যত লোকজীৱনৰ জ্ঞান-অভিজ্ঞতাৰে পূৰ্ণ উক্তি যেনে-যোজনা, প্ৰবাদ, পটন্তৰ আদি অনেক পৰিমাণে পোৱা যায়। 'পু চন লান', 'খাম নন চ্ছান' আদি নীতিবচন এইক্ষেত্ৰত উল্লেখযোগ্য। এটি লোকোক্তিৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰা হ'ল- "মা - দেউতাৰ নুশুনা কথা, বাটৰ গাঁতত পৰি মৰা।" অৰ্থাৎ মাক-দেউতাক তথা জ্যেষ্ঠজন সকলো ফালৰ পৰা অভিজ্ঞ। সেয়ে তেওঁলোকৰ উপদেশ, পৰামৰ্শ, অভিমতক গুৰুত্ব দিয়াৰ প্ৰয়োজনীয়তা ইয়াত প্ৰকাশ কৰিছে।

সাঁথৰ ঃ লোকমনৰ তীক্ষ্ন বুদ্ধিৰ পৰিচায়ক সাঁথৰবোৰ লোকসাহিত্য তথা লোকসংস্কৃতিৰ মূল্যৱান সম্পদ। টাইফাকে ভাষাত সাঁথৰক 'খাম তা' বুলি কোৱা হয়। সাঁথৰৰ বিষয়বস্তু জীৱ-জন্তু, নিৰ্জীৱ বস্তু আদি বিভিন্ন হোৱা দেখা যায়। উদাহৰণ- "দুজনী ছোৱালী গৰাৰ পৰা নামে, পাঁচজন ডেকাই আদৰে — উত্তৰ -শেঙুন।"

মন্ত্ৰ ঃ টাইফাকে ভাষাত মন্ত্ৰক 'মান তান' বুলি কোৱা হয়। অপায় অমঙ্গল দূৰ কৰিবলৈ, অপদেৱতাৰ প্ৰভাৱ বিনষ্ট কৰিবলৈ, লোক চিকিৎসা আদি ক্ষেত্ৰত টাইফাকে সমাজত 'মান তান'ৰ ব্যৱহাৰ দেখা যায়। পেট বিষ, পিঠি বিষ, বিছাই কামোৰা আদি চিকিৎসাৰ ক্ষেত্ৰত মন্ত্ৰৰ ব্যৱহাৰ দেখা যায়।

উপসংহাৰ ঃ টাইফাকে লোকসাহিত্যৰ বিধাসমূহ স্বকীয় সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যসম্পন্ন। এ ইসমূহে এক বিশিষ্ট ভাষিক-সাংস্কৃতিক জনগোষ্ঠী হিচাপে আত্মপৰিচয় দাঙি ধৰাত জনগোষ্ঠীটোক সহায় কৰিছে। টাইফাকে লোকসাহিত্যত তেওঁলোকৰ লোকসংস্কৃতিৰ বিভিন্ন উপাদান যেনে-উৎসৱ-অনুষ্ঠান, ধৰ্মীয় চেতনা, মূল্যবোধ, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, জনশ্ৰুতি, লোকজীৱন ইত্যাদিৰ পৰিচয় পোৱা গৈছে। তদুপৰি বৌদ্ধ ধৰ্মীয় আদৰ্শ, পৰম্পৰা অতি স্পষ্ট ৰূপত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। লোকসমাজৰ প্ৰয়োজনতে লোকসাহিত্যৰ সৃষ্টি হয়। টাইফাকে লোকসাহিত্যই লোকজ্ঞান তথা ব্যৱহাৰিক শিক্ষা, আধ্যাত্মিক শিক্ষা, নৈতিক শিক্ষা প্ৰদান, মনোৰঞ্জন প্ৰদান, লোকসংস্কৃতি ধাৰণ তথা বহন, গণসংযোগ সাধন, সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণ, লোকচিকিৎসা প্ৰদান, জনগোষ্ঠীটোৰ ইতিহাস, লোকসংস্কৃতিৰ ধাৰণ-বহন, জনগোষ্ঠীটোৰ লোকসকলৰ মাজত সংযোগ সাধন আদি বিভিন্ন প্ৰকাৰ্য সাধনত সহায় কৰিছে। মন্ত্ৰৰ জৰিয়তে কৰা লোকচিকিৎসা সাম্প্ৰতিক কালত কম-বেছি পৰিমাণে প্ৰচলিত। টাইফাকে ভাষা প্ৰতিটো প্ৰজন্মৰ মাজত কথিত ৰূপত বৰ্তি আছে যদিও সেয়া সীমিত।

অসমীয়া, হিন্দী আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰভাৱত নৱ-প্ৰজন্মৰ মাজত নিজা ভাষা, লিপি জনা, পঢ়া-লিখা ব্যক্তিৰ সংখ্যা কমি আহিছে। সম্প্ৰতি ভাষা পুনৰুদ্ধাৰৰ বাবে বিভিন্ন কৰ্মশালা, অনুষ্ঠান আদি তেওঁলোকে অনুষ্ঠিত কৰা দেখা গৈছে। লোকসাহিত্যসমূহ জ্যেষ্ঠসকলৰ মুখত শুনি শুনি, লিখিত সমল, কৰ্মশালাৰ জৰিয়তে পালন কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীয় উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ পৰা নতুন প্ৰজন্মই আহৰণ কৰিছে। লোকসাহিত্যৰ চৰ্চাই ভাষাটো জীয়াই থকাতো সহায় কৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। টাইফাকে লোকসাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাৰ আৰু অধিক সংগ্ৰহ তথা পুংখানুপুংখ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ন ন অনেক দিশ উন্মোচিত হোৱাৰ সম্ভাৱনা আছে। গতিকে ভৱিষ্যতে এই বিষয়ে বহল পৰিসৰত অধ্যয়নৰ থল আছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. গোহাঁই, পেইম থি (সম্পা.) ঃ *টাইফাকে লোকগীত আৰু লোক কবিতা,* পয় ফাউণ্ডেচন, নাহৰকটীয়া, প্ৰথম প্ৰকাশ,, আগষ্ট, ২০২০

২. চেতিয়া, চন্দ্ৰ কমল (সংক আৰু সম্পা.) ঃ *উজনি অসমৰ জনগোষ্ঠীয় সাধুকথা,* সাহিত্য অকাডেমি, ২০১৭

৩. দত্ত দিব্যলতা (সংক) ঃ *জনগোষ্ঠীয় সাধু সমগ্ৰ,* অসম সাহিত্য সভা, ২০১৮

৪. মহন্ত চৌধুৰী, সুবাসনা, পল্লৱী ডেকা বুজৰবৰুৱা (সম্পা.) ঃ *অসমৰ জনগোষ্ঠীয় লোকসাহিত্য,* অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, মাৰ্চ ২০০৯

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ ঃ বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন

ৰঞ্জিত হাজৰিকা

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
শ্বহীদ মণিৰাম দেৱান মহাবিদ্যালয়, চাৰিং
শিৱসাগৰ, অসম
ম'বাইল ঃ ৯৭০৬০৭৯৩৯২
ই-মেইল ঃ hazarikaranjit05@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

নেপালী ভাষাই নেপালৰ ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে ১৯৫৮ চনত স্বীকৃতি লাভ কৰে। নেপালী ভাষী মানুহ বুলিলে সাধাৰণতে ভাৰত, নেপাল, ভূটান, ব্ৰহ্মদেশ, ইংলেণ্ড আদি দেশত বসবাস কৰা আৰ্য গোষ্ঠীয় ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয় আৰু ইণ্ডো মংগোলীয় বংশোদ্ভৱ ৰাই, লিম্বু, নেৱাৰ, গুৰুং, মগৰ, তামাং আদি জনগোষ্ঠীৰ সমষ্টিক বুজায়।

ভাৰততো নেপালী ভাষী সম্প্ৰদায়ৰ লোক ব্যাপকভাৱে বসবাস কৰি আছে। ১৯৯২ চনৰ পৰা নেপালী ভাষাই ভাৰতীয় সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচী অনুযায়ী স্বীকৃতি লাভ কৰে। ই ভাৰতৰ অন্যতম চৰকাৰী ভাষা হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। এই ভাষা ভাৰতীয় আৰ্য ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত। নেপালী ভাষাত দেৱনাগৰী লিপি ব্যৱহাৰ কৰা হয়। নেপালী ভাষাক কেবাটাও নামেৰে জনা যায়। নেপালী ভাষা কোৱা ভাৰতীয় নাগৰিকক বুজাবৰ বাবে নেপালী অভিধাটি ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

অসম হ'ল নানা জাতি-জনগোষ্ঠী তথা নানা ভাষা-ভাষীৰ সমন্বয়ভূমি। ফলত প্ৰত্যেক জনগোষ্ঠীৰ লোকে নিজা ভাষাত নিজা জনগোষ্ঠীৰ লোকৰ লগত ভাব বিনিময় কৰিলেও আন জনগোষ্ঠীৰ লোকৰ লগত ভাব বিনিময়ৰ বেলিকা সংযোগী ভাষা অসমীয়াৰ জৰিয়তে সম্পন্ন কৰে। পৰিপ্ৰেক্ষিতত এটা নতুন কথিত ৰূপৰ উদ্ভৱ হয়। সেই কথিত ৰূপত প্ৰথমে ব্যৱহাৰ কৰা স্বগোষ্ঠীয় ভাষাৰ প্ৰভাৱ অসমীয়া ভাষালৈ স্বতঃস্ফোটভাৱে আগমন ঘটে। এইধৰণৰ কথিত ভাষা হ'ল ঃ মিচিং-অসমীয়া কথিত ভাষা (মিচিংমিজ), ৰাভা-অসমীয়া কথিত ভাষা (ৰাভামিজ), বড়ো-অসমীয়া কথিত ভাষা (বড়োমিজ), নেপালী-অসমীয়া কথিত ভাষা (নেপালীমিজ)। অসমত বসবাস কৰা অন্যান্য ভাষা-ভাষী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলৰ দৰে নেপালী ভাষীসকলেও অসমীয়া ভাষাকে যোগাযোগৰ ভাষা বা সংযোগী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে।

নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে ভাবৰ বিনিময় কৰোঁতে স্বাভাৱিকতে প্ৰথম ভাষা নেপালীৰ ধ্বনি, উচ্চাৰণ, ৰূপ,

শব্দ, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, জতুৱা-ঠাঁচ আদিত প্ৰভাৱ পৰে। ফলস্বৰূপে নেপালী-অসমীয়া কথিত ভাষাৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। এয়াই উক্ত গৱেষণা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য। উক্ত গৱেষণা পত্ৰত শিৱসাগৰ অঞ্চলত বসবাস কৰা নেপালী ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে ভাৱ বিনিময় কৰোঁতে প্ৰয়োগ কৰা নামপদ সন্দৰ্ভত বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন কৰিব বিচৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

নেপালী, অসমীয়া, কথিত ভাষা, নামপদ, বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, সংখ্যাবাচক শব্দ।

০.০ অৱতৰণিকা

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

নেপালী শব্দটো এটা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লগতে ভাষা আৰু সেই ভাষা কোৱা লোকসমষ্টিক বুজায়। ভাৰতত থকা নেপালী ভাষী নাগৰিক হ'ল ভাৰতীয় নেপালী। আনহাতে নেপালৰ নাগৰিক হ'ল নেপালী। গতিকে নেপালী শব্দটোৱে তিনিটা অৰ্থ প্ৰকাশ কৰা দেখা যায় ঃ

(ক) নেপালী ভাষা

(খ) সেই ভাষা-ভাষী (ভাৰতীয় নাইবা আন ঠাইৰ নেপালী ভাষী)

(গ) নেপাল দেশৰ নাগৰিক

নেপালী ভাষাই নেপালৰ ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে ১৯৫৮ চনত স্বীকৃতি লাভ কৰে। নেপালী ভাষী মানুহ বুলিলে সাধাৰণতে ভাৰত, নেপাল, ভূটান, ব্ৰহ্মদেশ, ইংলেণ্ড আদি দেশত বসবাস কৰা আৰ্য গোষ্ঠীয় ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয় আৰু ইণ্ডো মংগোলীয় বংশোদ্ভৱ ৰাই, লিম্বু, নেৱাৰ, গুৰুং, মগৰ, তামাং আদি জনগোষ্ঠীৰ সমষ্টিক বুজায়।

ভাৰততো নেপালী ভাষী সম্প্ৰদায়ৰ লোক ব্যাপকভাৱে বসবাস কৰি আছে। ১৯৯২ চনৰ পৰা নেপালী ভাষাই ভাৰতীয় সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচী অনুযায়ী স্বীকৃতি লাভ কৰে। ই ভাৰতৰ অন্যতম চৰকাৰী ভাষা হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। এই ভাষা ভাৰতীয় আৰ্য ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত। নেপালী ভাষাত দেৱনাগৰী লিপি ব্যৱহাৰ কৰা হয়। নেপালী ভাষাক কেবাটাও নামেৰে জনা যায়। নেপালী ভাষা কোৱা ভাৰতীয় নাগৰিকক বুজাবৰ বাবে নেপালী অভিধাটি ব্যৱহাৰ কৰা হয়। হ'লেও ভাৰতত থকা নেপালী ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ নাগৰিকে নিজকে 'গোৰ্খা' বুলি পৰিচয় দিহে ভাল পায়।

ভাৰতীয় সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচী অনুযায়ী স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত অসমীয়া ভাষা অসম নামৰ ভূখণ্ডৰ শদিয়াৰ পৰা ধুবুৰীলৈকে প্ৰধান ভাষা আৰু ই মান্য ভাষাৰূপেও মান্যতা প্ৰাপ্ত। গতিকে এই ভূখণ্ডত বসবাস কৰা সকলো নাগৰিকে দৈনন্দিন জীৱনৰ কাৰ্য সম্পাদন কৰে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে। আনহাতেদি অসম হ'ল নানা জাতি-জনগোষ্ঠী তথা নানা ভাষা-ভাষীৰ সমন্বয়ভূমি। ফলত প্ৰত্যেক জনগোষ্ঠীৰ লোকে নিজা ভাষাত নিজা জনগোষ্ঠীৰ লোকৰ লগত ভাব বিনিময় কৰিলেও আন জনগোষ্ঠীৰ লোকৰ লগত ভাব বিনিময়ৰ বেলিকা সংযোগী ভাষা অসমীয়াৰ জৰিয়তে সম্পন্ন কৰে। পৰিপ্ৰেক্ষিতত এটা নতুন কথিত ৰূপৰ উদ্ভৱ হয়। সেই কথিত ৰূপত প্ৰথমে ব্যৱহাৰ কৰা স্বগোষ্ঠীয় ভাষাৰ প্ৰভাৱ অসমীয়া ভাষালৈ স্বতঃস্ফোটভাৱে আগমন ঘটে। এইধৰণৰ কথিত ভাষা হ'ল ঃ মিচিং-অসমীয়া কথিত ভাষা (মিচিংমিজ), ৰাভা-অসমীয়া কথিত ভাষা (ৰাভামিজ), বড়ো-অসমীয়া কথিত ভাষা (বড়োমিজ), নেপালী-অসমীয়া কথিত ভাষা (নেপালীমিজ)।

উক্ত গৱেষণা পত্ৰত শিৱসাগৰ অঞ্চলত বসবাস কৰা নেপালী ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে ভাৱ বিনিময় কৰোঁতে প্ৰয়োগ কৰা নামপদ সন্দৰ্ভত বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন কৰিব বিচৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য ঃ

অসমত বসবাস কৰা অন্যান্য ভাষা-ভাষী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলৰ দৰে নেপালী ভাষীসকলেও অসমীয়া ভাষাকে যোগাযোগৰ ভাষা বা সংযোগী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে। বৃহৎ অসমীয়া জাতিৰ অবিচ্ছেদ্য অংগ এই ভাষিক সম্প্ৰদায়টোৰ লোকসকলে ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন, অসমৰ মাধ্যম আন্দোলন, বিদেশী বিতাৰণ আন্দোলন, কা আন্দোলন আদিত সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণ কৰিছিল। কৃষিকৰ্ম আৰু গো-পালনৰ জৰিয়তে নেপালী ভাষী লোকসকলে অসমৰ অৰ্থনীতি টনকিয়াল কৰাৰ লগতে ৰাজ্যখনৰ ৰাজনীতিতো অঞ্চল বিশেষে (শোণিতপুৰ, ডিব্ৰুগড় আদিত) নিৰ্ণায়ক ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। অসমীয়া ভাষী লোকৰ সৈতে সহাৱস্থান কৰি, অসমীয়া মাধ্যমতে শিক্ষা-দীক্ষা গ্ৰহণ কৰি বৰ্তমান অসমৰ নেপালী লোকসকল ৰাজ্য তথা দেশৰ বিভিন্ন পদবীতো অধিষ্ঠিত হৈ সেৱা আগবঢ়াই আছে। অসমীয়া

ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিলৈয়ো এওঁলোকৰ অৱদান উল্লেখযোগ্য। অৱশ্যে অসমীয়া মহাজাতিৰ ভিতৰতে থাকি অসমৰ নেপালী লোকসকলে নিজৰ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ চৰ্চাও অব্যাহত ৰাখিছে। স্বৰাজোত্তৰ কালৰ অসমৰ বৃহৎ অসমীয়া সমাজৰ বুকুতে এখন অসমীয়া-নেপালী সমাজ গঢ়ি উঠিছে।

নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজতে বসবাস কৰিলেও আন আন ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ দৰে তেওঁলোকৰো প্ৰথম ভাষা বা মাতৃভাষা হ'ল নেপালী ভাষা। অসমৰ আন আন ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ লোকে যিধৰণে প্ৰথমে নিজৰ ভাষা তথা মাতৃভাষাৰ জৰিয়তে কথা বা ভাব বিনিময় কৰা উপৰিও সমাজৰ আন আন ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ লগত ভাব বিনিময় কৰিবলগীয়া হ'লে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে কৰে, ঠিক তেনেদৰে নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলেও অসমৰ প্ৰধান সংযোগী ভাষা অসমীয়াৰ জৰিয়তে দৈনন্দিন জীৱনৰ কাৰ্য সম্পাদন কৰে।

এনে প্ৰেক্ষাপটত নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে অসমীয়া ভাষাৰ জৰিয়তে ভাবৰ বিনিময় কৰোঁতে স্বাভাৱিকতে প্ৰথম ভাষা নেপালীৰ ধ্বনি, উচ্চাৰণ, ৰূপ, শব্দ, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, জতুৱা-ঠাঁচ আদিত প্ৰভাৱ পৰে। ফলস্বৰূপে নেপালী-অসমীয়া কথিত ভাষাৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। এয়াই উক্ত গৱেষণা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই গৱেষণাকৰ্মত অধ্যয়নৰ পৰিসৰক দুটা ভাগত বিভক্ত কৰি লোৱা হৈছে -

- বিষয় অধ্যয়নৰ পৰিসৰ
- ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ

বিষয় অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই গৱেষণাকৰ্মত সমসাময়িক শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদসমূহৰ নানা দিশ প্ৰণালীবদ্ধভাৱে আলোচনা কৰা হৈছে।

ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচিত ক্ষেত্ৰ হ'ল অসমৰ শিৱসাগৰ জিলাৰ অন্তৰ্গত নেপালী বা গোৰ্খা গাঁওসমূহ। ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নত প্ৰাপ্ত তথ্য অনুসৰি এই অঞ্চলৰ নেপালী গাঁৱৰ সংখ্যা হ'ল ২৮ খন। সেয়া হ'ল ঃ অফলা গাওঁ, আলি চিগা গাওঁ, দিচাংমুখ নেপালী গাওঁ, লেপাই চুমনি গাওঁ, চিতলীয়া গাওঁ, এজানটি গাওঁ, ধাইবাৰী গাওঁ, তেতেলিগুৰি গাওঁ, কৈৱৰ্ত্ত দলনী গাওঁ, তামুলী পুখুৰী গাওঁ, খৰাহাট গাওঁ, সাপেখাতী নেপালী গাওঁ, চিগনেল বস্তি, শিলনী, কমল চাপৰি, চন্তক, সেউজপুৰ, উগ্ৰীজান, ৰঙাজান, নামচাই, ব্ৰিটিছ ৰাইদিং লগতে শিৱসাগৰ, ডিমৌ, নাজিৰা, বিহুবৰ আৰু সোণাৰীকো একোখন গাওঁ হিচাপে চিহ্নিত কৰা হৈছে।

০.৪ তথ্যৰ উৎস ঃ

এই অধ্যয়নত দুটা উৎসৰ পৰা সমলসমূহ আহৰণ কৰা হৈছে -

মুখ্য উৎস (Primary Source)
গৌণ উৎস (Secondary Source)

মুখ্য উৎস ঃ

মুখ্য উৎসসমূহ শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালী ভাষী অধ্যুষিত অঞ্চলত ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া নামপদসমূহ পুৰুষ আৰু মহিলা দুয়োটা শ্ৰেণীৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

গৌণ উৎস ঃ

গৌণ উৎসসমূহ গৱেষণা প্ৰকল্পৰ বিষয়ৰ লগত সম্পৰ্কিত ইতিমধ্যে প্ৰকাশিত গ্ৰন্থ, প্ৰকাশিত আলোচনী, গৱেষণা গ্ৰন্থ আৰু বিভিন্ন গ্ৰন্থাগাৰৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

'শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ ঃ এক বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন' - শীৰ্ষক এই গৱেষণা প্ৰকল্পত অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰয়োগ কৰা পদ্ধতিসমূহক দুটা ভাগত ভগাব পাৰি ঃ

(ক) তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি
(খ) তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি

০.৫.১ তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনিৰ তথ্য আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানকৈ চাৰিটা পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে -

পৰ্যবেক্ষণ পদ্ধতি (Observation Method)
জৰীপ (Survey)
নমুনা সংগ্ৰহ পদ্ধতি (Sampling Method)
সাক্ষাৎকাৰ পদ্ধতি (Interview Method)

পৰ্যবেক্ষণ পদ্ধতিৰ দ্বাৰা শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালী গাওঁসমূহলৈ গৈ তেওঁলোকৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন দিশ পৰ্যবেক্ষণ কৰা হৈছে। **জৰীপ**

পদ্ধতিৰ দ্বাৰা সমল সংগ্ৰহ কৰিবলৈ প্ৰয়োগ কৰা হয়। এই পদ্ধতিৰে শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলৰ গাওঁসমূহৰ নাম, জনসংখ্যা আদি গৱেষণাৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় তথ্যসমূহ সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। **নমুনা সংগ্ৰহ পদ্ধতি**ত ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নলৈ যাওঁতে তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে কিছুমান নমুনা প্ৰশ্নসূচী (নামপদ সম্পৰ্কীয়) প্ৰস্তুত কৰি লোৱা হৈছে। **সাক্ষাৎকাৰ পদ্ধতি**ৰ জৰিয়তে নিৰ্দিষ্ট ক্ষেত্ৰত তথ্যদাতাৰ পৰা পোনপটীয়াকৈ কথোপকথনৰ দ্বাৰা প্ৰয়োজনীয় তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। এই পদ্ধতিৰ সহায়ত শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালী ভাষী সম্প্ৰদায়ৰ মাজত প্ৰচলিত কথিত ভাষাৰ নামপদসমূহ সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

০.৫.২ তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি ঃ

'শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ ঃ এক বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন' - শীৰ্ষক প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা বিষয়টোৰ অধ্যয়নত প্ৰধানকৈ চাৰিটা পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। সেইকেইটা হৈছে -

বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি (Descriptive Method)
ঐতিহাসিক পদ্ধতি (Historical Method)
বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি (Analytical Method)
তুলনামূলক পদ্ধতি (Comparative Method)

এই অধ্যয়নত বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। নেপালীসকলৰ প্ৰব্ৰজন, বসতি ইত্যাদি দিশসমূহৰ অধ্যয়ন কৰিবলৈ ঐতিহাসিক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। তদুপৰি নামপদৰ বিশ্লেষণ, মান্য অসমীয়া ভাষাৰ লগত তুলনা ইত্যাদিৰ ক্ষেত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক, তুলনাত্মক আৰু সমাজ ভাষাবৈজ্ঞানিক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

০.৬ পূৰ্বকৃত অধ্যয়ন সমীক্ষা ঃ

গৱেষণাকৰ্মটোৰ লগত থকা বিভিন্ন বিষয়ৰ অধ্যয়ন কম বেছি পৰিমাণে পূৰ্বসুৰী পণ্ডিতসকলে আগবঢ়াই গৈছে।

সুনীতি কুমাৰ চেট্টাৰ্জীৰ ৰচিত **'কিৰাত জন-কৃতি'** গ্ৰন্থত নেপালী সকলৰ ইতিহাস, ভাৰতলৈ প্ৰব্ৰজন, পৰিচয়, নেপালী সাহিত্য ইত্যাদি বিভিন্ন বিষয়ৰ আলোচনা পোৱা যায়।

প্ৰকাশ কৈৰালাৰ ৰচিত **'অসমৰ গোৰ্খাসকলৰ ঐতিহ্যৰ অন্বেষণ'** শীৰ্ষক গ্ৰন্থত গোৰ্খাসকলৰ অসমলৈ প্ৰব্ৰজনৰ ইতিহাস, অসমৰ জাতীয় জীৱনত থলুৱা গোৰ্খাসকলৰ উপস্থিতি প্ৰসংগত কিছু কথা বিশ্লেষণ কৰিছে।

কৃষ্ণনীল কাকী সম্পাদিত **'বিশ্বনাথ জিলাৰ অগ্ৰণী গোৰ্খাসকল'** গ্ৰন্থত ক্ষেমৰাজ নেপালৰ ৰচিত **'অসমৰ গোৰ্খা জনগোষ্ঠী ঃ অতীত আৰু বৰ্তমান'**, প্ৰবন্ধত বিশদভাৱে নেপালী সম্প্ৰদায় তথা গোৰ্খাসকলৰ আলোচনা আছে। লগতে গ্ৰন্থখনিৰ বিভিন্ন প্ৰবন্ধত গোৰ্খাসকলৰ অসমীয়া সামাজিক-ৰাজনৈতিক-সাংস্কৃতিক জগতলৈ অৱদান বিশেষকৈ চতিয়া, বিহালী, ছয়দুৱাৰ, গহপুৰ, বিশ্বনাথ অঞ্চল সম্পৰ্কে বিশদ আলোচনা পাবলৈ আছে।

পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা, বিচাৰ-বিশ্লেষণৰ অন্তত ক'ব পাৰি যে **'শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদ ঃ বৰ্ণনাত্মক অধ্যয়ন'** - শীৰ্ষক বিষয়ত এতিয়ালৈকে বিশদ আলোচনা হোৱা নাই, সেয়ে এই বিষয়টোৰ অধ্যয়ন কৰাৰ বিদ্যায়তনিক প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

০.৭ প্ৰাককল্পনা ঃ

১) অসমীয়া ভাষাৰ উপভাষা হিচাপে শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদৰ ক্ষেত্ৰত কিছুমান বৈশিষ্ট্য বিদ্যমান।

২) শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ লগত মান্য অসমীয়া ভাষাৰ ভিন্নতা দেখা যায়।

৩) এই অঞ্চলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা নামপদৰ মাজত স্বকীয় ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰাৰ অন্তৰালত কিছুমান কাৰণ নিহিত হৈ আছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা

১.১ নামপদৰ গঠন আৰু প্ৰকাৰ ঃ

দুটা বা ততোধিক ধ্বনিৰ অৰ্থবহ সমষ্টিৰে নামপদ গঠিত হয়। নামপদৰ স্বতন্ত্ৰ অৰ্থ প্ৰকাশ ক্ষমতা থাকে। আনহাতে মুক্তৰূপৰ আগত বা পিছত বদ্ধৰূপ সংযোগ কৰিও নামপদ গঠন কৰা হয়।

সাধাৰণতে বাক্যত পদৰ লগত পদৰ সঙ্গতি আৰু অৰ্থৰ ভিত্তিত শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদক প্ৰধানকৈ চাৰিটা ভাগত ভগোৱা হয়।[১] সেয়া হ'ল ঃ

১. বিশেষ্য (Noun)
২. বিশেষণ (Adjective)

৩. সৰ্বনাম (Pronoun)

৪. সংখ্যাবাচক শব্দ (Numerals)

১.১.১ বিশেষ্য শব্দ আৰু ইয়াৰ গঠন ঃ

নামপদৰ এটা অন্যতম ভাগ হ'ল বিশেষ্য। পৃথিৱীৰ সকলো ভাষাতে নামপদৰ সংখ্যাই বেছি। সাধাৰণভাৱে দৃষ্ট বা অদৃষ্ট, ইন্দ্ৰিয়গ্ৰাহ্য বা ইন্দ্ৰিয় বহিৰ্ভূত, প্ৰাণীবাচক বা অপ্ৰাণীবাচক যিকোনো প্ৰাণী, পদাৰ্থ বা ধাৰণাৰ নামেই বিশেষ্য। চমুকৈ ক'বলৈ গ'লে সকলো নাম বুজোৱা পদকেই বিশেষ্য পদ বোলে। ৰূপগত দিশৰ পৰা যিবোৰ শব্দত কাৰক বিভক্তি, বচন, লিঙ্গবাচক প্ৰত্যয়, নিৰ্দিষ্টবাচক প্ৰত্যয়, অনিৰ্দিষ্টবাচক প্ৰত্যয় ইত্যাদি যোগ হয়, সেইবোৰেই বিশেষ্য পদ। আকৃতি অনুসৰি বিশেষ্য পদবোৰ স্বৰান্ত আৰু ব্যঞ্জনান্ত এই দুয়োধৰণৰ হ'ব পাৰে। নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত মান্য ভাষাৰ বিশেষ্য শব্দ ব্যৱহাৰ কৰাৰ উপৰিও তেওঁলোকৰ জনগোষ্ঠীয় শব্দও ব্যৱহাৰ হয়।

১.১.১.১ বিশেষ্য শব্দৰ প্ৰকাৰ ঃ

গঠন অনুযায়ী এনে বিশেষ্য শব্দক দুটা ভাগত ভগাব পাৰি -

মৌলিক বিশেষ্য শব্দ

যৌগিক বিশেষ্য শব্দ

(১) মৌলিক বিশেষ্য শব্দ ঃ

যিবোৰ বিশেষ্য শব্দই স্বাধীনভাৱে অৰ্থ প্ৰকাশ কৰিব পাৰে সেইবোৰ শব্দকে মৌলিক বিশেষ্য শব্দ বোলে। মৌলিক বিশেষ্য শব্দবোৰক অৰ্থপূৰ্ণভাৱে ভাঙি বিশ্লেষণ কৰিব নোৱাৰি। এনে শব্দবোৰক ভাঙিলে অৰ্থপূৰ্ণ শব্দ পোৱা নাযায়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ মৌলিক বিশেষ্য শব্দবোৰ হ'ল -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
ভাচা	ভাষা
অকাচ, অকাশ	আকাশ
ঝৰি	বৰষুণ
মানচে	মানুহ
দচনা	তুলি
মচৰী	আঠুৱা
মচ'	এন্দুৰ
হাৱা	বতাহ
জল, পানী	পানী
তুলচী	তুলসী
কমৰ	কঁকাল

(২) যৌগিক বিশেষ্য শব্দ ঃ

যিবোৰ বিশেষ্য শব্দ একাধিক আকৃতিৰ সংযোগত সাধিত হয় তেনেবোৰ শব্দকে যৌগিক বিশেষ্য শব্দ বোলা হয়। এনে যৌগিক শব্দ মুক্তৰূপৰ লগত মুক্তৰূপ, মুক্তৰূপৰ লগত বদ্ধৰূপৰ যোগত গঠন হয়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ যৌগিক বিশেষ্য শব্দবোৰ হ'ল -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
নামঘৰ	নামঘৰ
খেলনে	খেলুৱৈ
বজাউনে	বাজনা
চাথি	লগৰীয়া

১.১.১.২ বিশেষ্য শব্দৰ প্ৰকাৰ ঃ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ বিশেষ্য শব্দবোৰক তিনিটা ভাগত ভগাব পাৰি। সেয়া হ'ল -

সাধাৰণ বিশেষ্য

সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য

সংখ্যাবাচক বিশেষ্য

(১) সাধাৰণ বিশেষ্য ঃ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ সাধাৰণ বিশেষ্য শব্দবোৰক অৰ্থৰ ভিত্তিত প্ৰধানতঃ পাঁচোটা ভাগত ভগোৱা হৈছে ঃ

জাতিবাচক বা সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য (Common Noun)

বিশেষ সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য (Proper Noun)

সমূহ বা সমষ্টিবাচক বিশেষ্য (Collective Noun)

বস্তুবাচক বিশেষ্য (Material Noun)

গুণবাচক বিশেষ্য (Abstract Noun)

(ক) জাতিবাচক বা সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য ঃ

কোনো জাতি বা শ্ৰেণীৰ সাধাৰণ সংজ্ঞা বা নাম বুজোৱা বিশেষ্য শব্দবোৰেই জাতিবাচক বা সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত জাতিবাচক বা সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ হৈছে -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
গাই	গৰু
মানচে	মানুহ
আমা	মা
বাও	দেউতা
মামা	মামা
মাইজু	মামী

(খ) বিশেষ সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য ঃ

যিবোৰ পদে কোনো বিশেষ বস্তু নাম, ঠাইৰ নাম, মানুহ বা আন প্ৰাণীৰ নাম, পৰ্বত-পাহাৰৰ নাম, নদীৰ নাম ইত্যাদিক বুজায়, তেনে শব্দবোৰেই বিশেষ সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা বিশেষ সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ হৈছে -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
অকাচ, অকাশ	আকাশ
ঝৰি	বৰষুণ
দচনা	তুলি
মচৰী	আঠুৰা
মচ’	এন্দুৰ

(গ) সমূহ বা সমষ্টিবাচক বিশেষ্য ঃ

সাধাৰণতে সমূহ বা সমষ্টিৰ নাম বুজোৱা পদবোৰক সমূহ বা সমষ্টিবাচক বিশেষ্য পদ বোলা হয়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা সমূহ বা সমষ্টিবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ হ’ল -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
চভা	সভা
চমাজ	সমাজ

(ঘ) বস্তুবাচক বিশেষ্য ঃ

বস্তুবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ জাতিবাচক বা সংজ্ঞাবাচক বিশেষ্য শব্দৰ দৰে একেই, কিন্তু পাৰ্থক্য হ’ল এইবোৰে কেৱল মাটি, পানী, কাঠ, বাঁহ, সোণ, ৰূপ আদি সাধাৰণ বস্তুক নিৰ্দেশ কৰে। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা বস্তুবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ হৈছে -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
হাৱা	বতাহ
জল, পানী	পানী
দচনা	তুলি
অইনা	আইনা

(ঙ) গুণবাচক বিশেষ্য ঃ

মানৱ মনৰ আবেগ-অনুভূতি, ভাৱ, দোষ, গুণ আদি বুজোৱা বিশেষ্য শব্দবোৰেই গুণবাচক বিশেষ্য। এই বিশেষ্য শব্দবোৰ অমূৰ্ত ভাৱ প্ৰকাশৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এইধৰণৰ বিশেষ্যৰ কিছুমান মৌলিক আৰু কিছুমান যৌগিক বা সাধিত। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা গুণবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰ হৈছে -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
ৰামৰৌ	ভাল
চাধু	সাধু
চুখ	সুখ

(২) সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য ঃ

যিবোৰ বিশেষ্য শব্দৰ জৰিয়তে কিবা এটা সম্পৰ্ক বা সম্বন্ধ প্ৰকাশ কৰে তেনে শব্দবোৰকে সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য বোলা হয়। বেলেগ বেলেগ সম্বন্ধ আৰু বয়স অনুযায়ী ডাঙৰ-সৰু বুজাবলৈ বেলেগ বেলেগ সম্বন্ধবাচক শব্দ প্ৰয়োগ কৰা ৰীতি অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰা প্ৰচলন আছে। পৃথিৱীৰ আন আন ভাষাৰ দৰে অসমীয়া আৰু নেপালী ভাষাৰো সম্বন্ধবাচক বিশেষ্যবোৰ মূলতঃ তিনিটা সম্বন্ধৰ জৰিয়তে গঢ় লৈ উঠিছে। সেইকেইটা হ’ল -

জন্মসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য
বৈবাহিকসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য
সামজিক সম্পৰ্কসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য

এই তিনিটা সম্বন্ধৰ জৰিয়তে গঢ়ি উঠা শব্দ অসমীয়া ভাষাৰ দৰে নেপালী ভাষাটো চাৰি কুৰিমান পোৱা যায়। এই সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য শব্দবোৰৰ মূল সংস্কৃত, ঐতিহাসিক নানা বিৱৰ্তনৰ মাজেদি অহা বাবে এইবোৰৰ অধিকাংশ

শব্দই তদ্ভৱ। গাঁঠনিক দিশৰ পৰা সম্বন্ধবাচক শব্দবোৰক স্বৰান্ত আৰু ব্যঞ্জনান্ত, মৌলিক আৰু যৌগিক, এনেদৰে দুটা ভাগত ভগাব পাৰি। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ অধিকাংশ সম্বন্ধবাচক শব্দই স্বৰান্ত আৰু মৌলিক।

জন্মসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
বা	ককা
আইতা	আমৈ
আমা	মা
বাউ	দেউতা
কাকা	খুৰা
বেটা, চ'ৰ'	পুত্ৰ
বেটা, চ'ৰি	জী
বইনী	ভনী
দাজু	দাদা
ফুপু	পেহী
দিদি	বায়েক
ভাই	ভাই
বৰাও	বৰদেউতা
চানি মা	মাহী
থুলে মা	জেঠাই

বৈবাহিকসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্য ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
চচুৰ	শহুৰ
চাচু	শাহু
নন্দ	ননদ, নন্দেক
লওঙনে	গিৰিয়েক
চচনী	পত্নী
বৰজনা	জেঠাজো
কাকী	খুৰী
মামা	মামা
মাইজু	মামী
বৰেমা	বৰ বৌ. বৰ মা
চনাও	মহা
ফুপা	পেহা
থুলাও	জেঠু

সামাজিক সম্পৰ্কসূত্ৰে গঢ় লৈ উঠা সম্বন্ধবাচক বিশেষ্যঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
মিট বাও	তাৰৈ
মিট মা	আমৈ
চাথি	বন্ধু ইত্যাদি।

(৩) সংখ্যাবাচক শব্দ ঃ

সংখ্যাবাচক শব্দবোৰ সাধাৰণ নামপদৰেই এটি ভাগ। এই শব্দবিলাকো দুটা বা তিনিটা ধ্বনিৰ সংযোগত গঠিত হয়। ৰূপগত দিশৰ পৰা সংখ্যাবাচক শব্দৰ পিছত নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় যোগ কৰা হয়।

সাধাৰণতে শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত মান্য অসমীয়া ভাষাৰ সংখ্যাবাচক শব্দবোৰেই ব্যৱহাৰ কৰা হয়। অৱশ্যে কিছুমান সংখ্যাবাচক শব্দৰ উচ্চাৰণত কিছু পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত সংখ্যাবাচক শব্দবোৰ মান্য অসমীয়া ভাষাৰ সৈতে তলত দাঙি ধৰা হ'ল -

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
এক	এক
দুই	দুই
তিনি	তিনি
চয়	ছয়
চাত	সাত
চৌধ	চৈধ্য
পোনৰ	পোন্ধৰ
চৌৰ	যোল্ল
চোতৰ	সোতৰ
উনৈচ	উনৈশ
বিচ	বিশ
একৈচ	একৈশ
বাইচ	বাইশ
চৌবিচ	চৌব্বিশ
চাতাইচ	সাতাইশ
তিচ	ত্ৰিশ
চাঠি	ষাঠি
চত্তৰ	সত্তৰ

আচি	আশী
একচৌ	এশ
হজাৰ	হাজাৰ
লাখ	লাখ
কোটি	কোটি

১.১.২ বিশেষণ শব্দ আৰু ইয়াৰ গঠন

নামপদৰ আন এটি ভাগ হ'ল বিশেষণ। যি পদে বিশেষ্য পদৰ দোষ, গুণ আদি বুজাই সেইবিলাক পদেই বিশেষণ পদ। বিশেষ্যৰ দৰেই কিছুমান বিশেষণৰ পিছতো বচন, লিঙ্গবাচক প্ৰত্যয়, নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় আৰু শব্দবিভক্তি যোগ কৰা হয়। এই পদসমূহো দুটা বা ততোধিক ধ্বনিৰ সমষ্টিৰে অৰ্থবহভাৱে গঠন কৰা হয়। মুক্তৰূপৰ পিছত বদ্ধৰূপ সংযোগ কৰিও বিশেষণ পদ গঠিত হয়।

১.১.২.১ বিশেষণ শব্দৰ প্ৰকাৰ

বাক্যত বিশেষণৰ স্থান আৰু আন পদৰ লগত থকা সম্পৰ্কৰ দিশলৈ চাই বিশেষণক প্ৰধানতঃ চাৰিটা ভাগত ভগাব পাৰি -

বিশেষ্যৰ বিশেষণ
বিশেষণীয় বিশেষণ
সৰ্বনামৰ বিশেষণ
ক্ৰিয়া বিশেষণ

(১) বিশেষ্যৰ বিশেষণ ঃ

যিবোৰ বিশেষণে বিশেষ্য পদৰ দোষ-গুণ, অৱস্থা, পৰিমাণ আদি বুজায় সেইবোৰেই বিশেষ্যৰ বিশেষণ। সাধাৰণতে শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত এনে বিশেষণবোৰ বিশেষ্যৰ আগত বহে। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
ৰাটৌ পেণ্ট	ৰঙা পেণ্ট
কালৌ কেটা / ল'ৰা	ক'লা ল'ৰা
অগলৌ পাহাৰ	ওখ পাহাৰ
আঠজানা কেটা / ল'ৰা	আঠজন ল'ৰা

(২) বিশেষণীয় বিশেষণ ঃ

যিবোৰ বিশেষণে বাক্যত আন বিশেষণৰ আগত ব্যৱহৃত হৈ বিশেষণৰ গুণ, দোষ, অৱস্থা আদি বুজায় তেনে বিশেষণক বিশেষণীয় বিশেষণ বোলা হয়। যেনেঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
চাৰে ৰামৰা	বৰ ভাল
থুপৰৌ বলিয়া	বৰ শকত
থুপৰৌ লামু	বহুত দীঘল

(৩) ক্ৰিয়া বিশেষণ ঃ

যিবোৰ বিশেষণে ক্ৰিয়াপদৰ গুণ বা লক্ষণ, সময় বা ঠাই আদি নিৰ্দেশ কৰে তেনে শব্দবোৰেই ক্ৰিয়া-বিশেষণ। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
পচি আওনু / আহিবা	দেৰিকৈ আহিবা
থুপৰৌ নখাও	বেছিকৈ নাখাবা
বিস্তৰৌ ভন / কোৱা	লাহেকৈ কোৱা

(ক) কালবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণ ঃ

কালবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণত ক্ৰিয়াই কাৰ্য কৰা সময়ক বিশেষভাৱে নিৰ্দেশ কৰে। যেনে-

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
কইলে	কেতিয়া
অইলে	এতিয়া
যইলে	যেতিয়া
তইলে	তেতিয়া
চিটৌ	সোনকালে

(খ) স্থানবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণ ঃ

স্থানবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণত ক্ৰিয়া কাৰ্য কৰা ঠাইখনক নিৰ্দিষ্টকৈ নিৰ্দেশ কৰে। যেনে-

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
ওটা	সেইফালে
তিয়াঁ	তাত

(গ) লক্ষণবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণ ঃ

লক্ষণবাচক ক্ৰিয়া বিশেষণত ক্ৰিয়াই কাৰ্য কৰাৰ ধৰণ বা লক্ষণ নিৰ্দিষ্টকৈ নিৰ্দেশ কৰে। যেনে-

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
তেচেৰি	তেনেকৈ
থুপৰৌ	বেছিকৈ

বিশেষণৰ তুলনা ঃ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত বিশেষণৰ তুলনা হয়। দুজনৰ মাজত তুলনা কৰোঁতে প্ৰাণী বা অপ্ৰাণীবাচক শব্দটোৰ পিছত 'ভণ্ডা' প্ৰত্যয় যোগ হয়।

দুটাতকৈ অধিক বা বহুতৰে মাজত তুলনা কৰোঁতে 'চব' শব্দৰ পিছত 'ভণ্ডা' প্ৰত্যয় যোগ কৰা হয়। যেনে-

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
যদু চব ভণ্ডা ৰামৰৌ কেটা / ভাল ল'ৰা।	যদু আটাইতকৈ ভাল ল'ৰা।
তিমিলে ৰামকৌ ভণ্ডা ৰামৰৌ ৰিজাল্ট গৰ্ণ পৰ্চ।	তুমি ৰামতকৈ ভাল ৰিজাল্ট কৰিব লাগিব।
তুমি ৰাম ভণ্ডা ৰিজাল্ট কৰিব লাগিব।	তুমি ৰামতকৈ ভাল ৰিজাল্ট কৰিব লাগিব।

১.১.৩ সৰ্বনাম শব্দ আৰু ইয়াৰ গঠন আৰু প্ৰকাৰ ঃ

নামপদৰ আন এটি বিশেষ ভাগ হ'ল সৰ্বনাম। সাধাৰণতে বিশেষ্য পদৰ সলনি যিবিলাক পদ ব্যৱহাৰ কৰা হয়, সেইবিলাক পদকেই সৰ্বনাম পদ বোলা হয়। বাক্যত পূৰ্বে ব্যৱহৃত কোনো বিশেষ্য পদৰ সলনি ব্যৱহাৰ হোৱা পদবোৰেই সৰ্বনাম পদ। ৰূপগত দিশত সৰ্বনামৰ পিছতো বচনবাচক প্ৰত্যয়, লিঙ্গবাচক প্ৰত্যয়, কাৰক বিভক্তি আৰু পৰসৰ্গ যোগ কৰা হয়। এনে ক্ষেত্ৰত বিশেষ্যৰ লগত সৰ্বনামৰ সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়।

১.১.৩.১ সৰ্বনাম শব্দ প্ৰকাৰ ঃ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ সৰ্বনামক কেইবাটাও ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। সেয়া-

ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম
নিৰ্দেশবোধক সৰ্বনাম
সাকল্যবাচক সৰ্বনাম
সম্বন্ধবাচক সৰ্বনাম
অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনাম
প্ৰশ্নবোধক সৰ্বনাম
আত্মবাচক সৰ্বনাম

(১) ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম ঃ

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত পুৰুষ অনুযায়ী ব্যক্তিবাচক সৰ্বনাম পোৱা যায়। পুৰুষ অনুযায়ী ব্যক্তিযায়ী সৰ্বনাম তিনিপ্ৰকাৰৰ ঃ

প্ৰথম পুৰুষ ঃ ম, হামি
দ্বিতীয় পুৰুষ ঃ তিমৰৌ, তপাই, তেৰৌ
তৃতীয় পুৰুষ ঃ ও, ওৰা

(২) নিৰ্দেশবোধক সৰ্বনাম ঃ

নিৰ্দেশবোধক সৰ্বনামে সমীপত বা দূৰত থকা প্ৰাণী বা বস্তুক নিৰ্দেশ কৰে। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নিৰ্দেশবোধক সৰ্বনামবোৰক দুটা ভাগত বিভক্ত কবি পাৰি-

নিকটস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনাম
দূৰস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনাম

(ক) নিকটস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনাম ঃ

নিকটস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনামবোৰ সমীপত থকা প্ৰাণী, বস্তুক নিৰ্দেশ কৰিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
য় ওনকৌ দুকান।	এইখন তাৰ দোকান।
ই দেৰো কে?	এইবোৰ কি?
উদেৰ লাই বলাও।	ইহঁতক মাত।

(খ) দূৰস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনাম ঃ

দূৰস্থ নিৰ্দেশক সৰ্বনাম দূৰত থকা প্ৰাণী, বস্তুক নিৰ্দেশ কৰিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
ৱ ওনকৌ ঘৰ।	সেইটো তাৰ ঘৰ।
উদেৰো মাছা।	সেইবোৰ মাছ।
ওঁৰা কিতাপ চ।	সেই তাতে কিতাপ আছে।

(৩) সাকল্যবাচক সৰ্বনাম ঃ

বহুতো প্ৰাণী বা বস্তুক বুজাবলৈ সাকল্যবাচক সৰ্বনাম ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মান্য অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত সকলো, সমূহ, উভয়, আটাই, গোটেই আৰু সব এই ছটা সাকল্যবাচক সৰ্বনাম ব্যৱহৃত হয়। কিন্তু শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত সাকল্যবাচক সৰ্বনাম 'চব' প্ৰয়োগ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
চবপেই বস্তু লে আওনো।	সকলোবোৰ বস্তু আনিব।
চবপেই খেল চাবি।	গোটেই খেলখন চাবি।
চপেলে ৰাম মেৰি গৰনৌ	সকলোৰে ভালকৈ কৰিবা।

(৪) সম্বন্ধবাচক সৰ্বনাম ঃ

বাক্যত নামপদৰ লগত সম্বন্ধ নিৰ্দেশ কৰিবলৈ ব্যৱহৃত হোৱা সৰ্বনামবোৰক সম্বন্ধবাজক সৰ্বনাম বোলা হয়। এই সৰ্বনাম প্ৰাণীবাচক বা অপ্ৰাণীবাচক সকলো শব্দৰ সৈতে ব্যৱহৃত হয়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ সৰ্বনাম হ'ল 'যে', 'য'। এই সৰ্বনাম প্ৰাণীবাচক বা অপ্ৰাণীবাচক সকলো শব্দৰ সৈতে ব্যৱহাৰ হ'ব পাৰে। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
যে ভাবিৰতে তৌ ভয়েনৌ।	যিটো ভাবিছিলো, সেইটো নহ'ল।
য লাই বলাইৰতে, ৰ আয়ে না।	যাক মাতিছিলো, সি নাহিল।
য মাতিছিলো, ৰ নাহিল।	যাক মাতিছিলো, সি নাহিল।

(৫) অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনাম ঃ

অনিৰ্দিষ্ট বা অনিশ্চিত কোনো প্ৰাণী বা বস্তুৰ সলনি ব্যৱহাৰ হোৱা সৰ্বনামবোৰেই অনিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্বনাম। এই সৰ্বনাম প্ৰাণীবাচক বা অপ্ৰাণীবাচক সকলো শব্দৰ সৈতে ব্যৱহৃত হ'ব পাৰে। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ সৰ্বনাম হ'ল কেই, কয়ি। যেনেঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
য়া অগৰি কয়ি আক' থিয়েনো।	ইয়ালৈ আগতে কোনো অহা নাই।
কেই বুঝেতো চয়ি না।	একো বুজি পোৱা নাই।

(৬) প্ৰশ্নবোধক সৰ্বনাম ঃ

প্ৰশ্ন সুধিবৰ বাবে ব্যৱহৃত সৰ্বনামবোৰেই প্ৰশ্নবোধক সৰ্বনাম। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত প্ৰশ্নবোধক সৰ্বনাম হ'ল কে, কতা, কচেৰি ইত্যাদি। যেনে ঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
কে খাবি?	কি খাবি?
কচেৰি ভুঝি পাইছে?	কেনেকৈ বুজি পালে?
কতা ঝানে কথা ভাবছে?	ক'ত যোৱাৰ কথা ভাবিছে?

(৭) আত্মবাচক সৰ্বনাম ঃ

যিবোৰ সৰ্বনামে নিজক বুজায় তেনে সৰ্বনামবোৰেই আত্মবাচক সৰ্বনাম। মান্য অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত 'নিজ' সৰ্বনামটোৰেই আত্মবাচক হিচাপে ব্যৱহৃত হয়। 'স্বয়ং' সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰ মান্য অসমীয়াতো পৰিলক্ষিত নহয়। যেনেঃ

নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা	মান্য অসমীয়া ভাষা
আফনৌ ঘৰৰ চাৱল	নিজৰ ঘৰৰ চাউল।
কামটো আফুই কৰবি।	কামটো নিজে কৰিবি।

আলোচনাৰ পৰা দেখা গ'ল যে শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামবোৰত নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় আৰু বহুবচনাত্মক প্ৰত্যয় যোগ হোৱাৰ লগতে সৰ্বনামবোৰৰ গাঠনিক ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হোৱা দেখা যায়।

২.০ উপসংহাৰ

২.১ সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

অসমৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত নেপালীসকলে বসবাস কৰিলেও তেওঁলোকে নেপালী ভাষাৰ জৰিয়তে কেৱল নিজৰ ঘৰত আৰু স্ব-মানুহৰ মাজততে ভাৱ বিনিময় কৰে। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলেও ঘৰুৱা কাম-কাজ আৰু নিজৰ মানুহৰ লগততে নেপালী ভাষাৰ জৰিয়তে ভাৱ বিনিময় কৰে। ফলত আন সকলো কাম-কাজ সম্পাদনৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া, বাংলা আৰু হিন্দী ভাষাৰ আশ্ৰয় লয়। শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলে সংযোগী ভাষা অসমীয়াৰ জৰিয়তে অধিক সংখ্যকে ভাৱ বিনিময় কৰে।

নেপালী জাতি তথা ভাষীসকলৰ কেইটামান সাধাৰণ বিশেষত্ব দাঙি ধৰা হ'ল ঃ

১) নেপালী শব্দটো এটা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লগতে ভাষা আৰু সেই ভাষা কোৱা লোকসমষ্টিক বুজায়। ভাৰতত থকা নেপালী ভাষী নাগৰিক হ'ল ভাৰতীয় নেপালী। আনহাতে নেপালৰ নাগৰিক হ'ল নেপালী। গতিকে নেপালী শব্দটোৰে তিনিটা অৰ্থ প্ৰকাশ কৰা দেখা যায় ঃ

(ক) নেপালী ভাষা,

(খ) সেই ভাষা-ভাষী (ভাৰতীয় নাইবা আন ঠাইৰ নেপালী ভাষী)

(গ) নেপাল দেশৰ নাগৰিক।

২) নেপালী ভাষী মানুহ বুলিলে সাধাৰণতে ভাৰত, নেপাল, ভুটান, ব্ৰহ্মদেশ, ইংলেণ্ড আদি দেশত বসবাস কৰা আৰ্য গোষ্ঠীয় ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয় আৰু ইণ্ডো মংগোলীয় বংশোদ্ভৱ ৰাই, লিম্বু, নেৱাৰ, গুৰুং, মগৰ, তামাং আদি জনগোষ্ঠীৰ সমষ্টিক বুজায়।

৩) আৰ্য আৰু কিৰাত নাইবা মংগোলীয় উভয় গোষ্ঠীৰ সু-সমন্বয়ত নেপালী ভাষিক সম্প্ৰদায় গঠিত হৈছে। আৰ্য গোষ্ঠীৰ উল্লেখনীয় বৰ্ণকেইটা হ'ল - ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয়, কামী, দমাই, চাৰ্কী আৰু মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত নেৱাৰ, ৰাঈ, লিম্বু, তামাং, গুৰুঙ, চেৰ্পা, মাঝী, থাৰু, দনুৱাৰ, সুনুৱাৰ আদি প্ৰায় ৬১ টা জনগোষ্ঠীৰ উল্লেখ পোৱা যায়।

৪) ভাৰতত থকা নেপালী ভাষিক সম্প্ৰদায়ৰ নাগৰিকে নিজকে 'গোৰ্খা' বুলি পৰিচয় দিহে ভাল পায়।

৫) নেপালী ভাষাই ভাৰতীয় সংবিধানৰ অষ্টম অনুসূচী অনুযায়ী স্বীকৃতি লাভ কৰে। ই ভাৰতৰ অন্যতম চৰকাৰী ভাষা হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। এই ভাষা ভাৰতীয় আৰ্য ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত।

৬) নেপালী ভাষাত দেৱনাগৰী লিপি ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ মাজত দেখিবলৈ পোৱা কেইটামান ভাষাতাত্ত্বিক বিশেষত্ব দাঙি ধৰা হ'ল ঃ

১) শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষা এটা উপভাষা।

২) এই ভূখণ্ডৰ নামপদ সাধাৰণতে দুটা বা ততোধিক ধ্বনিৰ অৰ্থবহ সমষ্টিত গঠিত হয়।

৩) এই অঞ্চলৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাৰ নামপদক চাৰিটা ভাগত ভগাব পাৰি ঃ বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম আৰু সংখ্যাবাচক শব্দ।

৪) এই অঞ্চলৰ ভাষাৰ বিশেষ্য শব্দক দুই ধৰণে ভগাব পাৰি ঃ (ক) মৌলিক বিশেষ্য শব্দ আৰু (খ) যৌগিক বিশেষ্য শব্দ।

৫) এই ভাষাৰ মৌলিক বিশেষ্য শব্দসমূহে স্বাধীনভাৱে অৰ্থ প্ৰকাশ কৰিব পাৰে। এনে শব্দবিলাক ভাঙিলে অৰ্থপূৰ্ণ শব্দ পোৱা নাযায়।

৬) এই ভাষাৰ যৌগিক বিশেষ্য শব্দৰ ক্ষেত্ৰত মুক্তৰূপৰ লগত মুক্তৰূপ বা মুক্তৰূপৰ লগত বদ্ধৰূপৰ সংযোগৰ জৰিয়তে সাধিত হয়।

৭) সাধিত শব্দৰ ক্ষেত্ৰত এই ভাষাত নেপালী, অসমীয়া, বাংলা আৰু হিন্দী ভাষা মিশ্ৰিত হৈ গঠিত হোৱা দেখা যায়।

৮) এই ভাষাত 'জ', 'য' ধ্বনিৰ ঠাইত 'ঝ' আৰু 'স', 'শ', 'ষ'-ৰ ঠাইত 'চ' ধ্বনিৰ উচ্চাৰণগত বৈশিষ্ট্য পোৱা যায়। তাৰোপৰি নাকিসুৰীয়া উচ্চাৰণৰ প্ৰয়োগ ব্যাপকভাৱে পোৱা যায়।

৯) মূলতঃ তিনিটা সম্বন্ধৰ জৰিয়তে এই ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দবোৰ গঢ় লৈ উঠে। যেনে ঃ জন্মসূত্ৰে, বৈবাহিকসূত্ৰে আৰু সামাজিক সম্বন্ধসূত্ৰে। এই সম্বন্ধবাচক বিশেষ্যসমূহত নেপালী ভাষাৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়। এনে হোৱাৰ মূলতে প্ৰথম ভাষা বা মাতৃভাষা নেপালীৰ প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়।

১০) শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ কথিত অসমীয়া ভাষাত বিশেষণ প্ৰয়োগত কিছু স্বকীয় বিশেষত্ব আছে। ইয়াৰ মূলতে মাতৃভাষা নেপালী ভাষাৰ প্ৰভাৱ।

১১) এই অঞ্চলৰ ভাষাত দুটাতকৈ অধিক বা বহুতৰে মাজত তুলনা কৰোঁতে বিশেষণৰ 'চব' শব্দৰ পিছত 'ভণ্ডা' প্ৰত্যয় সংযোগ কৰা হয়।

১২) এই অঞ্চলৰ ভাষাত সৰ্বনাম পদৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত সাধাৰণতে নেপালী ভাষাৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়।

১৩) এই অঞ্চলৰ ভাষাত সৰ্বনাম পদৰ পিছত নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয়, বচনবাচক প্ৰত্যয়, লিঙ্গবাচক প্ৰত্যয়, কাৰক বিভক্তি আৰু পৰসৰ্গ যোগ কৰা দেখা যায়।

১৪) এই অঞ্চলৰ ভাষাত সংখ্যাবাচক শব্দবিলাক দুটা বা তিনিটা ধ্বনিৰ সংযোগত গঠিত হয়। এই শব্দবিলাকৰ প্ৰয়োগতো নেপালী ভাষাৰ প্ৰভাৱ দৃশ্যমান।

২.২ ভৱিষ্যত অধ্যয়নৰ সম্ভাৱনীয়তা ঃ

শিৱসাগৰ জিলাত বসবাস কৰা নেপালীসকলে অসমীয়া সমাজ জীৱন, ৰাজনৈতিক জীৱন, সাংস্কৃতিক জীৱন তথা শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ঠ বৰঙনি আগবঢ়াইছে। নেপালীসকলৰ মাজতো এক পৃথক লোকভাষিক ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। অসমীয়া সমাজ জীৱনলৈ নেপালীসকলৰ অৱদান, শিৱসাগৰ জিলাৰ নেপালীসকলৰ ৰাজনৈতিক চেতনা, অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ নেপালীসকলৰ অৱদান শীৰ্ষক বিষয়ত ভৱিষ্যতে অধ্যয়ন কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১. লীলাৱতী শইকীয়া বৰা, অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব, পৃ.৪০

প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কাকী, কৃষ্ণনীল (মুখ্য সম্পাদক) ঃ বিশ্বনাথ জিলাৰ অগ্ৰণী গোৰ্খাসকল, অসম নেপালী সাহিত্য সভা, বিশ্বনাথ জিলা সমিতি, জুলাই, ২০২১

কৈৰালা, প্ৰকাশ ঃ অসমৰ গোৰ্খাসকলৰ ঐতিহ্যৰ অন্বেষণ, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, মে, ২০২২

কোঁৱৰ, অৰ্পণা ঃ 'ভাষাবিজ্ঞান উপক্ৰমণিকা', বনলতা, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২

ঐ ঃ 'অসমীয়া ভাষা চিন্তন', বনলতা, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৬

গোস্বামী, অজিত কুমাৰ (অনুবাদ) ঃ কিৰাত জন-কৃতি, সুনীতিকুমাৰ চেট্টাৰ্জী (মূল) অসম পাবলিচিং কোম্পানী, গুৱাহাটী-১, চেপ্তেম্বৰ, ২০২১

গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ ঃ 'অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ, সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ', বৰুৱা এজেন্সি, গুৱাহাটী, ২০০২

গোস্বামী, গোলোকচন্দ্ৰ ঃ 'অসমীয়া ব্যাকৰণ প্ৰৱেশ', বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ষষ্ঠ প্ৰকাশ, ২০১৮

ডেকা বুজৰবৰুৱা, পল্লৱী ঃ 'গৱেষণাৰ পদ্ধতিবিজ্ঞান', বনলতা, ডিব্ৰুগড়, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০২১

দত্তবৰুৱা, ফণীন্দ্ৰ নাৰায়ণ ঃ 'আধুনিক ভাষাবিজ্ঞান পৰিচয়', বনলতা সংস্কৰণ, ডিব্ৰুগড়, ২০০৬

দাস, বিশ্বজিত আৰু ঃ 'অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা', বসুমতাৰী, ফুকন চন্দ্ৰ (সম্পা.) আঁক-বাক, গুৱাহাটী, সংশোধিত দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৪

বৰা, মহেন্দ্ৰ ঃ 'গৱেষণা প্ৰণালীতত্ত্ব', অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯২

বৰা, দিলীপ ঃ 'গৱেষণা পদ্ধতি বিতৰ্ক আৰু সিদ্ধান্ত', ৰেখা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৭

বৰুৱা, ভীমকান্ত ঃ 'অসমীয়া ভাষা', বনলতা, ডিব্ৰুগড়, প্ৰথম, প্ৰকাশ, ১৯৯৭

শইকীয়া বৰা, লীলাৱতী ঃ 'অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব', বনলতা, গুৱাহাটী, তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০১৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

আহোম যুগত চিকিৎসা ব্যৱস্থা, লোক বিশ্বাস আৰু পৰম্পৰাগত ঔষধৰ ব্যৱহাৰ ঃ এক ঐতিহাসিক বিশ্লেষণ

টিনামণি ৰাজকুমাৰী

সহকাৰী অধ্যাপিকা
ইতিহাস বিভাগ, ডুমডুমা মহাবিদ্যালয়
ডাক ঃ ৰূপাই চাইডিং, পিন ঃ ৭৮৬১৫৩
জিলা ঃ তিনিচুকীয়া, অসম
ম'বাইল ঃ ৮৭২৩৯৭৯৪২৫
ই মেইল ঃ tinamoni009@gmail.com

অৱতাৰণিকা ঃ

মধ্যযুগৰ অসমৰ ইতিহাস অনেক সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক ঘটনাৱলীৰে পৰিপূৰ্ণ। ১২২৮ ৰ পৰা ১৮২৬ চনলৈকে সময়ছোৱাক অসমৰ ইতিহাসত মধ্যযুগ বুলি কোৱা হয়। অসম হৈছে নানা জাতি জনজাতিৰ সমন্বয় থলী। অসমত বাস কৰা জাতি-জনজাতিসমূহৰ আছে নিজা ধৰ্মীয়, সামাজিক বিশ্বাস আৰু ব্যৱস্থা। সময়ৰ সোঁতত মানৱ সভ্যতাৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে মানুহৰ সাংস্কৃতিক দিশটো ভিন্নতা আহিছে। মানৱ প্ৰজাতিয়ে নিত্য নতুন কৌশল আৰু প্ৰযুক্তিৰ উদ্ভাৱন কৰি আহিছে।

মধ্যযুগৰ অসমৰ ইতিহাস খুচৰিলে পোৱা যায় অসমত সেই সময়ত আহোম, কোচ, কছাৰী, চুতীয়া, বৰাহীকে ধৰি কেইবাটাও ৰাজনৈতিক শক্তিয়ে ৰাজত্ব কৰিছিল। অৱশ্যে ঠায়ে ঠায়ে ভূঞাসকলৰো সামাজিক প্ৰভুত্ব আছিল। কিন্তু কালক্ৰমত আহোম সকলে প্ৰায়বিলাক ৰাজনৈতিক শক্তিকে পৰাভূত কৰি বিশাল আহোম ৰাজ্যৰ ভেঁটি গঠন কৰিছিল। আহোম সকলে এই জাতি জনজাতিৰ লগত সাংস্কৃতিকভাৱে বিলীন হৈ গৈছিল। অৱশ্যে এই কথাও স্বীকাৰ কৰিব লাগিব যে, আহোম সকলৰ সংস্কৃতিয়েও তেওঁলোকক প্ৰভাৱিত কৰিছিল। মধ্যযুগৰ সাংস্কৃতিক বৈচিত্ৰতাৰে গঢ়ি উঠা সমাজ ব্যৱস্থা বিভিন্ন লোক বিশ্বাসেৰে পৰিচালিত আছিল।

এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ উদ্দেশ্য হৈছে ঃ

- আহোম ৰাজত্বকালত অসমত প্ৰচলিত চিকিৎসা পদ্ধতিৰ অধ্যয়ন।
- চিকিৎসাৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাসৰ অধ্যয়ন।
- আহোম ৰাজত্বকালত চিকিৎসাৰ লগত জড়িত বিষয়বাব আৰু ইয়াৰ সামাজিক মৰ্য্যাদা।
- সাংস্কৃতিক সংমিশ্ৰনে চিকিৎসাৰ ক্ষেত্ৰত পেলোৱা প্ৰভাৱ।
- চিকিৎসাৰ বাবে ব্যৱহৃত ঔষধি আৰু ইয়াৰ ব্যৱহাৰৰ অধ্যয়ন।

মধ্যযুগৰ অসমত প্ৰচলিত চিকিৎসা পদ্ধতিৰ বিষয়ে লিখিত সমল তথা বুৰঞ্জীসমূহত উল্লেখ পোৱা যায়। আহোম স্বৰ্গদেউসকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত বহু নিদান বা চিকিৎসা বিষয়ক পুথিও ৰচনা কৰা হৈছিল। অসমত প্ৰচলিত ডাকৰ বচন আৰু প্ৰবাদ সমূহতো অনেক চিকিৎসাৰ

বিধান পোৱা যায়। এই সমূহে প্ৰমাণ কৰে যে, স্বাস্থ্যৰ বাবে কি ভাল আৰু হানিকাৰক সেয়া সাধাৰণ মানুহৰ মাজত সচেতনতা আছিল। মধ্যযুগৰ অসমত আয়ুৰ্বেদ চৰ্চা তথা ঔষধৰ অধ্যয়নৰ প্ৰমাণ সাঁচিপাতৰ পুথিসমূহতো পোৱা যায়। ব্ৰিটিছ বিষয়াসকলে অসম ভ্ৰমণ কৰোঁতেও তেওঁলোকে প্ৰস্তুত কৰা প্ৰতিবেদনত অসমৰ বিভিন্ন ঔষধি গুণযুক্ত গছ বনৰ কথা উল্লেখ কৰা পোৱা গৈছে।

কোনো এখন ঠাইৰ লোকৰ হোৱা ৰোগ ব্যাধি আৰু তাৰ চিকিৎসা পদ্ধতিত বহু পৰিমাণে জলবায়ু আৰু ভৌগোলিক কাৰকো নিৰ্ভৰশীল। মধ্যযুগৰ অসমৰ জলবায়ু কেনে আছিল, ভৌগোলিক অৱস্থা কেনে আছিল আৰু কেনেধৰণৰ বনৌষধি অসমত সুলভ আছিল এই বিলাক কাৰকে ৰোগ ব্যাধি আৰু চিকিৎসা পদ্ধতিক প্ৰভাৱিত কৰিছিল।

অসমৰ সেমেকা জলবায়ু আৰু ভৌগোলিক অৱস্থাই অসমৰ লোকৰ স্বাস্থ্যক প্ৰভাৱিত কৰি আহিছে। সোতৰ শতিকাত মীৰজুমলাই অসম আক্ৰমণ কৰোঁতে কেনেদৰে অসমৰ বানপানীৰ সমস্যাই তেওঁক বিপদত পেলাইছিল আৰু তেওঁৰ সৈন্যবাহিনীয়ে প্ৰতিকূল বতৰৰ লগত মোকাবিলা কৰিব পৰা নাছিল সেই কথা ইতিহাসত পোৱা যায়। তেওঁলোকৰ বেছি ভাগৰে জ্বৰ আৰু গ্ৰহণী হৈছিল আৰু কিছুমানৰ এই ৰোগত মৃত্যু হৈছিল। ফৰাছী ভ্ৰমণকাৰী বাৰ্নিয়াৰ আৰু চিহাবুদ্দিন তালিছৰ বিৱৰণত এই কথাৰ উল্লেখ পোৱা যায়। অন্য এক সমলৰ মতে মীৰজুমলাৰ এক তৃতীয়াংশ সৈন্য আৰু ঘোঁৰা একেবাৰে ভাগৰুৱা আৰু প্ৰাণহীন হৈ পৰিছিল। চিহাবুদ্দিন তালিছে উল্লেখ কৰিছে "the Climate of the parts on the banks of the Brahmaputra suits natives and the strangers alike. But at distance from the river, though the climate agrees with the natives, it is rank poison to foreigners."(A History of Assam, pp.141,142)

মধ্যযুগত অসমত হোৱা হানিকাৰক ৰোগ হৈছে কলেৰা, গ্ৰহণী আৰু সৰু আই (বসন্ত ৰোগ)। চুতামলা ওৰফে জয়ধ্বজ সিংহৰ ৰাজত্বকালত (১৬৪৮-১৬৬৩ খ্ৰী) ৰাজ্যত দুবাৰ কলেৰা হোৱাৰ উল্লেখ পোৱা যায়। খোৰা ৰজাৰ দিনত সমগ্ৰ ৰাজ্যত সৰু আই তথা বসন্ত ৰোগে মাৰাত্মক ৰূপ ধাৰণ কৰাৰ কথা পোৱা যায়। (আহোম বুৰঞ্জী, গোলাপ চন্দ্ৰ বৰুৱা, পৃষ্ঠা-৮২)

স্বৰ্গদেউ ৰাজেশ্বৰ সিংহই পেটৰ বিষত ভুগিছিল আৰু তেওঁৰ চিকিৎসা কৰিছিল বুঢ়া বেজবৰুৱাৰ পুতেক কৃষ্ণ আৰু ৰামে। ৰজাক আয়ুৰ্বেদিক ঔষধ দিয়া হৈছিল আৰু সেই ঔষধ প্ৰস্তুত কৰাত কাতি, খৰিকা, কৃষ্ণাই, ফেদেলা আৰু মোহন এইকেইজন বৰাহী বেজ জড়িত আছিল। বুঢ়া বেজবৰুৱা আৰু শূলপানি বৰুৱাৰ তত্বাধনানত এই চিকিৎসা হৈছিল। (স্বৰ্গদেউ ৰাজেশ্বৰ সিংহ, সূৰ্য্যকুমাৰ ভূঞা, পৃষ্ঠা ২৬৪)

দেওধাই অসম বুৰঞ্জীত নৰিয়া ৰজাৰ চিকিৎসাৰ বিষয়ে এনেদৰে উল্লেখ আছে যে, স্বৰ্গদেউসকলৰ মৃত্যু হলে তেওঁলোকৰ মৃত্যু শৰিল ৰখাৰ ব্যৱস্থা আছিল। ক্ৰমে ৰজা নৰিয়া হলে তেওঁৰ ওচৰলৈ খটনীয়া স্ত্ৰীৰ বাদে ঘৰৰ বা পৰৰ কোনো লোক যাব নাপায়। সকলো বেজেও দেখিব নাপায়। যি বেজৰ হাতেৰে পূৰ্বে ভালে থাকোঁতে ঔষধ খাইছিল সেই বেজেহে তেওঁক দেখা কৰিব পাৰে। তেওঁহে ঔষধ খুৱাবলৈ পাৰিব, অন্যৰ ঔষধ খোৱাৰ নিয়ম নাই। (দেওধাই অসম বুৰঞ্জী, পৃষ্ঠা ১১৩)

স্বৰ্গদেউ গৌৰনাথ সিংহৰ দিনত (১৭৮০-১৭৯৫ খ্ৰী) কলেৰা আৰু গ্ৰহণী ৰোগত অনেক লোকৰ মৃত্যু হয়। (অসম বুৰঞ্জী, গুণাভিৰাম বৰুৱা, পৃষ্ঠা ১৬২)। এই বিলাকৰ উপৰি জ্বৰ, হাপানী, নিউমোনিয়া, কীট-পতংগৰ পৰা হোৱা ৰোগ, যৌন আৰু চৰ্ম ৰোগ, বাতবিষ, প্লীহা বৃদ্ধি হোৱা, ভৰিৰ হাতী ৰোগ, ব্ৰংকাইটিচ আৰু কুষ্ঠ ৰোগ আদি হোৱা উল্লেখ পোৱা যায়।

চিকিৎসাৰ বিষয়বাব ঃ

মধ্যযুগৰ অসমত আহোম সকলৰ টাই সংস্কৃতিৰ সমন্বয় ঘটিছিল থলুৱা সংস্কৃতিৰ লগত। টাই আহোম সকলে লগত লৈ অহা বনৌষধিৰ জ্ঞানৰ লগত থলুৱাভাৱে ব্যৱহৃত বনৌষধিৰ জ্ঞানৰ সমাহাৰ ঘটাই ৰজা আৰু প্ৰজা সকলোৱে ব্যৱহাৰ কৰা বুলি জনা যায়। ৰোগ, চিকিৎসা আৰু নিৰাময় সন্দৰ্ভত ৰাজদৰবাৰত নিদান পত্ৰ লিখা হৈছিল আৰু তাৰ প্ৰচলন কৰা হৈছিল।

স্বৰ্গদেউ চুকাফাই বৰাহী বেজক স্বীকৃতি দি বেজ ভৰালী পতাৰ কথা বুৰঞ্জীত উল্লেখ পোৱা যায়। (আহোমৰ দিন, পৃষ্ঠা ৬৪৭) আহোম ৰাজত্বত বেজ বা বৈদ্যৰ শ্ৰেণী বিভাগ আছিল। চিকিৎসা সু-পৰিচালনাৰ বাবে খেলৰ সৃষ্টি কৰা হৈছিল। বিহিয়া বেজ, বিহ তোলা বেজ, চাঙ বেজ, জৰা বেজ, বচা বেজ আদি বিভিন্ন খেলৰ বেজ আছিল। বেজৰ অৱস্থাৰ পৰা যিজনা বেজবৰুৱা হয় তেওঁৰ অধীনত

চিকিৎসা কৰা ব্ৰাহ্মণ জাতৰ লোকজনক চাঙ বেজ, মন্ত্ৰেৰে জাৰি ৰোগ উপশম কৰা লোকজনক জৰা বেজ, বেজ বৰুৱাক গছৰ গুটি, ৰশ, পাত, আগ ও শিপা আনি দিয়া লোকজনক বচা বেজ বুলি কোৱা হয়। (নাওবৈচা ফুকনৰ অসম বুৰঞ্জী, পৃষ্ঠা ২৬০)

ৰজাই বেজসকলক সেৱাৰ বিনিময়ত মাটি-বাৰী, লগুৱা-লিকচৌ দি সংস্থাপন কৰিছিল। প্ৰধানতঃ বেজবৰুৱাই আছিল ৰাজকীয় বৈদ্য আৰু তেওঁৰেই সকলো বেজৰ পৰিচালনাৰ দায়িত্বত আছিল। বেজ বা ওজাজনৰ ঘৰতেই তেওঁৰ শিষ্যই ঔষধ বটা, ঔষধ চিনাক্ত হোৱা , হাবি বননিৰ পৰা ঔষধ বিচাৰি অনা, ৰোগীৰ লক্ষণ নিৰ্ণয় কৰা আদি শিকিছিল।

আহোম ৰাজত্বকালত ৰসেন্দ্ৰ নামৰ এটা পৰিয়ালৰ কথা উল্লেখ পোৱা যায় যি ৰসায়ন বিদ্যা চৰ্চা কৰিছিল আৰু তেওঁলোকৰ মুখ্য কাম আছিল পাৰা বা ৰস উৎপন্ন কৰা (আহোমৰ দিন, পৃষ্ঠা প্ৰুৰছ)। এই পৰিয়ালটোৱে সোণ, ৰূপ, তাম, লো আদি গলাই ঔষধ তৈয়াৰ কৰিছিল বুলি উল্লেখ পোৱা যায়। (আহোম ৰাজত্বত চিকিৎসা সেৱা, পৃষ্ঠা ৯৭)

আহোম ৰাজত্বকালত জীৱ-জন্তু, পশু-পক্ষীৰ চোৰা-চিতা আৰু ৰক্ষণাবেক্ষণৰ বাবেও পৃথক খেলৰ সৃষ্টি কৰা হৈছিল। এই খেলসমূহৰ গৰাকীক উপাধি প্ৰদান কৰা হৈছিল। যেনে- হাতী ধৰা, হাতী শিকোৱা, প্ৰতিপালক খেলৰ গৰাকী জনক হাতী বৰুৱা, ঘোঁৰাৰ বাবে তত্বাৱধানত থকা জনক ঘোঁৰা বৰুৱা, শেন চোৰা খেলৰ গৰাকীজনক শেনচোৰা বৰুৱা বুলি কোৱা হৈছিল।

আহোম যুগত হাতী, ঘোঁৰা আৰু চৰাইৰ ৰোগ ব্যাধিৰ বাবেও চিকিৎসাৰ বিধান আছিল। হাতীৰ চিকিৎসাৰ বাবে হস্তীবিদ্যাৰ্ণৱ, ঘোঁৰাৰ চিকিৎসাৰ বাবে ঘোঁৰা নিদান আৰু শেনৰ চিকিৎসাৰ বাবে শেনপুথি ৰচনা হৈছিল। হাতীৰ বনৌষধি চিকিৎসাৰ বিষয়ে হস্তী বিদ্যাৰ্ণৱ গ্ৰন্থত আভাস দিয়া হৈছে। ঔষধৰ নাম, গছৰ নাম, বনৰ নাম, গুটিৰ নাম আদিৰ অনেক নাম পুথিখনত উল্লেত আছে। (অসমৰ লোক ঔষধ আৰু লোক খাদ্য, পৃষ্ঠা ২৪) পৰম্পৰাগত

চিকিৎসা পদ্ধতিক দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি, প্ৰাকৃতিক বা ভেষজ চিকিৎসা আৰু যাদুমূলক ধৰ্মীয় চিকিৎসা।

প্ৰাকৃতিক চিকিৎসা বা ভেষজ চিকিৎসা ঃ

মধ্যযুগত অসমত ব্যৱহাৰ কৰা ঔষধ সমূহ শাক, উদ্ভিদ বা গছৰ গুটি বা ফল, গছৰ শিপা ছাল আদিৰ পৰা প্ৰস্তুত কৰাৰ উপৰিও জীৱ-জন্তুৰ শৰীৰৰ অংশ সমূহ সংৰক্ষণ কৰা হৈছিল। সংৰক্ষণৰ বাবে এই বিলাক শুকুৱাই লোৱা হৈছিল বা ধোৱাচাঙ অৰ্থাৎ জুইশালৰ ওপৰত চাঙত ৰখা হৈছিল। ঔষধ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লোৱা জীৱ-জন্তুৰ অংশ সমূহ থলুৱা ভাৱে সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল যদিও কেতিয়াবা চুবুৰীয়া জনগোষ্ঠীসমূহৰ পৰাও সংগ্ৰহ কৰা বা ক্ৰয় কৰি লোৱা হৈছিল। (আহোম ৰাজত্বত চিকিৎসা সেৱা, পৃষ্ঠা ১২)

চতিয়নাৰ পাত জণ্ডিজ ৰোগ, তৰুৱা কদমৰ ঠাৰি, বাকলি, পাত, কাঠ আদি মেলেৰিয়া ৰোগত , বেত গাজ, মদাৰ আৰু তৰাপাত চৰ্ম ৰোগত, পেটৰ ৰোগত তিতা ভেঁকুৰি, হাড়জোৰা লতা ভঙা হাড় জোৰা লগাবলৈ, দুপৰ টেঙাৰ পাত বৃক্কত পাথৰ হ'লে মানিমুনিৰ শাক শিঙি, গৰৈ, চেঙেলি মাছৰ লগত আঞ্জা কৰি প্ৰসূতি আৰু কেঁচুৱাৰ জণ্ডিজ হ'লে, মূৰৰ বিষত লাই জাবৰি, জেতুলি পকাৰ কোমল ডাল, ফল, শিপা আদি কাহ আৰু নিউমোনিয়া, দুৰোণ বন কাহ আৰু চাইনাচাইটিছ হ'লে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। মৌ, অৰ্জুন গছৰ ছাল, মানিমুনি, চেনি আৰু লেটা গুটি মিহলাই নিউমোনিয়া হলে খাবলৈ দিয়া হয়। কেঁচুমুৰীয়া ৰোগত জেতুকা পাত, তিনিটা বোন্দা কেঁচু উতলাই খাবলৈ দিয়া হয়। গৰল ৰোগ হ'লে চুক ভেকুলীৰ তেজ খাবলৈ দিয়া হয়। কুমাৰণী বাহ মুখ লগা গুচাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। (Ethno-medicinal survey on Tai-Ahom Community of Assam, pp.461-471)

আহোম সমাজত প্ৰচলিত এবিধ পানীয় হৈছে লাওপানী বা সাজ। এই পানীয়বিধ ঔষধ হিচাপেই আহোম সকলে ব্যৱহাৰ কৰিছিল, বিশেষকৈ সামাজিক আৰু ধৰ্মীয় উৎসৱ পাৰ্বনতো ইয়াক শক্তি বৰ্ধক হিচপে আৰু ৰোগ প্ৰতিৰোধক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিছিল। এই পানীয় প্ৰস্তুত প্ৰণালী থলুৱা লগতে বৈজ্ঞানিক বুলিও কব পাৰি। লাওপানী প্ৰস্তুত কৰিবলৈ বৰা বা লাহি ধানৰ চাউলৰ লগত সাজৰ দৰৱ বা পিঠা সানি প্ৰস্তুত কৰা হয়। পিঠা তৈয়াৰ কৰিবলৈ জালুক, বন জালুক, কপৌ টেঁকীয়া, টংলতিৰ পাত, সৰু মানি-মুনি, বৰ মানিমুনি, কঁঠাল পাত, ভীমৰাজ, পিপলি , বিয়নী হাপোটা, মধুৰী পাত, তেজ মুৰী, বিহলঙনীৰ পাত শুকুৱাই মিহিকৈ কাটি খুন্দি চাউলৰ গুৰিৰ সৈতে সানি দৰৱ প্ৰস্তুত কৰে। কিন্তু ঠাই ভেদে এই দৰৱ প্ৰস্তুত কৰোতে ব্যৱহাৰ কৰা বন ঔষধিৰ তাৰতম্য থকা দেখা যায়। (অসমৰ লোক-ঔষধ আৰু লোক-খাদ্য, পৃষ্ঠা- ২৮)

পৰম্পৰাগত চিকিৎসা পদ্ধতিত মন্ত্ৰৰ প্ৰয়োগ ঃ

পৰম্পৰাগত ভাৱে চলি অহা লোক বিশ্বাসৰ অন্তৰ্গত ডাকৰ বচন আৰু মন্ত্ৰ আদিয়েও আহোম যুগত প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰিছিল। লীলা গগৈয়ে উল্লেখ কৰিছে যে, ওজা বা বেজে উপযুক্ত মানুহক লগত ৰাখি মন্ত্ৰৰে জৰা ফুকা আদি কাম পৰ্যায়ক্ৰমে শিকাইছিল মন্ত্ৰ বিষয়ক অনেক পুথি এতিয়াও আছে যদিও এক বুজন পৰিমাণৰ মন্ত্ৰ বিষয়ক চিকিৎসা পদ্ধতি লোপ পালে। আনকি বহু মন্ত্ৰত পাৰ্গত ওজা বা বেজে গোপনীয়তাৰ খাতিৰত নিজৰ পুত্ৰকো মন্ত্ৰ শিক্ষা দিয়াৰ পৰা বিৰত আছিল। লিখিত মন্ত্ৰতকৈ মুখে মুখে চলি অহা মন্ত্ৰই আছিল বেছি, সেয়ে কালক্ৰমত বহু মন্ত্ৰৰ ব্যৱহাৰ লোপ পালে। কিন্তু মন্ত্ৰবোৰৰ যোগেদি প্ৰকৃততে ৰোগী আৰোগ্য হৈছিল নে তাত ৰোগীৰ মানসিক বিশ্বাস জড়িত হৈ আছিল সঠিক কৈ জনা নাযায়।

যাদুমূলক - ধৰ্মীয় চিকিৎসা, ভেষজ বা প্ৰাকৃতিক চিকিৎসাৰ দৰে বাস্তৱধৰ্মী নহয়। বেমাৰ-আজাৰ, ৰোগ-ব্যাধি আদি নিৰাময়ৰ বাবে মানুহে যাদুমূলক আৰু ধৰ্মীয়কৃত্যত গুৰুত্ব দিছিল। প্ৰতিটো ৰোগ ব্যাধিৰে একোজন দেৱতা আৰু দেৱী আছে এই জনবিশ্বাস থকা দেখা যায়। সেই দেৱতা বা দেৱী কোনো লোকৰ গাত ব্যাধি ৰূপে লম্ভে। গতিকে প্ৰচলিত বিশ্বাস মতে সেই ৰোগে দেখা দিয়াৰ লগে লগেই সেই দেৱতা বা দেৱীৰ উপাসনা কৰিলেহে সেই ৰোগৰ পৰা উপশম পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে বসন্ত ৰোগ হলে আই শীতলাক গীত পদ স্তুতিৰে পূজা অৰ্চনা কৰা হয়। তদুপৰি মাৰি-মৰক, সৰ্পদংশন, অকাল মৃত্যুৰ পৰা হাত সাৰিবলৈ মনসা দেৱীক পূজা কৰা হয়। সেইদৰে পেটৰ বিষ, মূৰৰ কামোৰণি, কেঁচুৱাৰ বিভিন্ন ৰোগ ব্যাধিৰ নিৰাময়ৰ বাবে জলকুবেৰ, থলকুবেৰ আদিক পূজা কৰা হয়। (অসমৰ সাংস্কৃতিক ইতিহাস, দ্বিতীয় খণ্ড, পৃষ্ঠা- ১২২)

যি কি নহওঁক মধ্য যুগৰ অসমৰ মানুহৰ সমাজ

জীৱন আৰু স্বাস্থ্যত মন্ত্ৰৰ প্ৰভাৱ আছিল, সেয়া লাগিলে অন্ধবিশ্বাসে হওঁক বা আন কাৰকৰ বাবেই হওঁক।

লোক বিশ্বাস আৰু ঔষধিৰ ব্যৱহাৰ ঃ

ঔষধি ব্যৱহাৰৰ লগত বিভিন্ন লোক বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। মধ্যযুগত অসমত বাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে উৎসৱ-পাৰ্বন ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানত ঔষধি ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে।

আহোমসকলে বহাগ বিহুৰ সময়ত আমৰলি পৰুৱা টোপ খোৱাৰ নিয়ম আছে। ইয়াৰ লগত এক লোকবিশ্বাস জড়িত হৈ আছে যে আমৰলি পৰুৱাৰ টোপ খালে বছৰটোলৈ স্বাস্থ্য সুস্থ হৈ থাকে। বহাগ বিহুত এশ এবিধ শাক খাব লাগে বুলি কয় যি স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত। বহাগ বিহুৰ সময়ত জেতুকা লগোৱাৰ নিয়ম আছে আৰু মাহ হালধিৰে গাধোৱাৰ নিয়ম যিটো ছালৰ ৰোগৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ কৰা হয় বুলি বিশ্বাস আছে।

কাছক অসমৰ মানুহে ঔষধি গুণ যুক্ত খাদ্য হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে। কাছৰ মাংস ব্যৱহাৰৰ আঁৰত লোক বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। লোক বিশ্বাস অনুসৰি সকামত আৰু দান হিচাপে কাছ দিয়া হয়। কাছৰ মাংস ভক্ষণ কৰিলে বসন্তৰ দাগ নিৰাময় হয় বুলিও এক লোক বিশ্বাস আছে।

সন্তানসম্ভৱা তিৰোতাক দেও ভূত লম্ভিব বুলি বেজ - বেজনীৰ হতুৱাই মন্ত্ৰপুত কৰি অনা তাবিজ বা দোল সোঁ হাতত বান্ধি দিয়া হয় যিয়ে অপশক্তিৰ ৰক্ষা কৰিব বুলি বিশ্বাস (নিৰ্ভলপ্ৰভা বৰদলৈ, অসমৰ লোক সংস্কৃতি, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, পৃষ্ঠা ২)

সন্তান জন্ম হোৱাৰ পাছত ডফলা সকলে দুডাল বাঁহৰ চেচুৰে নাড়ী কাটে। পোৱাতীয়ে (প্ৰসূতি) পাঁচ দিন চাঙত থকাৰ নিয়ম। সেইকেইদিন পোৱাতীয়ে এৰেহা বস্তু নুচুৱে, আনে ৰান্ধি দিয়া আহাৰহে খায়। (ইতিহাসে সোঁৱৰা ছশটা বছৰ, পৃষ্ঠা ৩৭৪)

কেঁচুৱা জন্ম হোৱাৰ পাছত প্ৰসূতিৰ ৰোগ নিৰাময়ৰ বাবে বনৌষধি ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বিশেষকৈ প্ৰসূতিক কেঁচুৱাৰ জন্মৰ পাছত জালুকীয়া খুওৱাৰ নিয়ম আছে যাতে বিষৰ পৰা ৰক্ষা পায় আৰু ঘাঁ সোনকালেই শুকাই যায়। নহৰুৰ পাত শাক হিচাপে, পানী খুতুৰাৰ পাত শাক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বাঁহ পাতৰ প্ৰলেপ দিয়াও দেখা যায়। কোমোৱাৰ ব্যৱহাৰ ৰক্তক্ষৰণ কমাবলৈ, ৰক্ত চাপ নিয়ন্ত্ৰণ কৰিবলৈ আৰু বহুমূত্ৰ ৰোগৰ বাবে আঞ্জা আৰু ইয়াৰ ৰস খাবলৈ দিয়া হয়। ইয়াৰোপৰি তেজপাত, অমিতা, জিলিমিলি শাক, বৰ মানিমুনি, সৰু মানিমুনি, দুবৰি বন, নেমু, কলা কচু, ধতুৰা, আমলখি, মচুন্দৰী, জাতিলাও, ভীমকল, চজিনা, নৰসিংহ, ৰাম তুলসী, ভেদাইলতা, শুকলতি, পিপলি জালুক, এৰাপাত, জামুক, আদা এই বিলাক বনৌষধিৰ পাত, শিপা, গুটি আদি প্ৰসূতিৰ ৰোগ নিৰাময়ত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। (Ethno medicinal plants used in post delivery problem by Tai Ahom people of Upper Brahmaputra Valley, Assam. pp.26-28)

বৈবাহিত নীতি নিয়মটো কিছুমান লোক বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। দৰা-কইনাক বিয়াৰ সময়ত চুণৰ টেমাৰ বা তামোলৰ সৈতে চুৰী কটাৰী ৰাখিবলৈ দিয়া হয় যাতে বেয়া নজৰৰ পৰা আৰু তন্ত্ৰ মন্ত্ৰৰ পৰা নিজকে ৰক্ষা কৰিব পাৰে। (The Tais and their customs, p.68)

ডাকৰ বচনটো ৰন্ধন প্ৰকৰণ, খাদ্যৰ পথ আৰু অপথ্য, স্বাস্থ্য প্ৰকৰণৰ বিষয়ে কোৱা হৈছে। ডাকৰ বচনত শিলিখাৰ উপকাৰিতাৰ বিষয়ে এই বুলি কৈছে -

"ভাত খাই উঠি খাই তিনি শিলিখা।
তাক কি কৰিবে ৰোগ পিলিকা।"

সেইদৰে আদাৰ সুফলৰ কথাও উল্লেখ আছে এনেদৰে -

"আদাত্ৰ ভোজন শিলিখাত্ৰ সুসুদ্ধি।
তেবেসে জানিবা দেহৰে সুদ্ধি।।
আকৌ মানুহক কিছুমান উপদেশো দিছে।
"কাতিত নাখাবা উদৰ পূৰায়
লঘোনে নাথাকিবা পুহৰ ৰাতি।
চ'ত মাহত নেখাবা মিঠা বস্তু অতি
ইয়াকে নকৰিলে নিজৰ শত্ৰু আনিবা মাতি।"

কোনটো ঋতুত বা মাহত কি খাদ্য খাব লাগে আৰু কোনটো মাহত কোনটো খাদ্য বস্তুৰ মাত্ৰাধিক গ্ৰহণে স্বাস্থ্যৰ ক্ষতি কৰিব পাৰে সেই বিষয়ে ডাকৰ বচনত উল্লেখ আছে।

উপসংহাৰ ঃ

আহোম যুগত বনজ সম্পদৰ সংৰক্ষণৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছিল। আহোম সকলে ঢাপ মাৰি বাৰী পাতিব জানিছিল। হয়তো ই বিভিন্ন ধৰণৰ বনজ উদ্ভিদ সংৰক্ষেণেৰে ইংগিত বহন কৰে। মধ্যযুগত প্ৰচলিত আয়ুৰ্বেদিক আৰু প্ৰাকৃতিক চিকিৎসাই এই কথা প্ৰমাণ কৰে যে অসমত বিভিন্ন ধৰণৰ বনৌষধি পোৱা গৈছিল। প্ৰাকৃতিক চিকিৎসাৰ

লগতে মানুহৰ যাদুবিদ্যাৰ প্ৰতি থকা বিশ্বাস আদিও চিকিৎসাৰ লগত জড়িত হৈ আছিল। আহোম যুগত চিকিৎসাৰ পদ্ধতি সেই সময়ত উপলব্ধ প্ৰাকৃতিক উপাদানৰ ওপৰতেই নিৰ্ভৰশীল আছিল। অৱশেষত আহোম ৰাজত্বত প্ৰচলিত চিকিৎসা ব্যৱস্থাৰ পৰা এই কথা বুজিব পাৰি যে সেই সময়ত ৰজা-প্ৰজা সকলো স্বাস্থ্যৰ প্ৰতি কিছু পৰিমাণে সজাগ আছিল। চিকিৎসাৰ প্ৰাকৃতিক পদ্ধতি সমূহ এতিয়াও অসমৰ কোনো কোনো সমাজত প্ৰচলিত আৰু সেইবোৰ সংৰক্ষণৰ প্ৰয়োজন আছে যাতে পৰৱৰ্তী প্ৰজন্ময়ো তাৰ সুফল লাভ কৰিব পাৰে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১) ভূঞা, সূৰ্য্য কুমাৰ, *দেওধাই অসম বুৰঞ্জী,* প্ৰকাশক- দ্যা গভমেন্ত অৱ আসাম ইন দ্য ডিপাটমেন্ত অৱ হিষ্টোৰিকাল এণ্ড এণ্টিকুৰেৰিয়াম ষ্টাদিজ, ২০০১

২) ভূঞা, সূৰ্য্য কুমাৰ, *স্বৰ্গদেউ ৰাজেশ্বৰ সিংহ,* প্ৰকাশক- অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ১৯৭৫

৩) কটকী ৰতন কুমাৰ, *আহোম ৰাজত্বত চিকিৎসা সেৱা,* প্ৰকাশক-টাই অধ্যয়ন আৰু গৱেষণা কেন্দ্ৰ, ২০০৬

৪) ফুকন, নাওবৈচা পদ্মেশ্বৰ, *অসম বুৰঞ্জী,* (সম্পাঃ) লক্ষ্মীনাথ তামুলী, প্ৰকাশক-পাব্লিকেচন বৰ্ড আসাম, ২০০৫

৫) তামুলী, যোগেন, হাজৰিকা, অমূল্য, *অসমৰ লোক ঔষধ আৰু লোক খাদ্য,* প্ৰকাশক -বিহপুৰীয়া মহাবিদ্যালয় প্ৰকাশন কোষ, ২০১৭

৬) বৰবৰুৱা হিতেশ্বৰ, *আহোমৰ দিন,* প্ৰকাশক-পাব্লিকেচন বোৰ্ড আসাম, ২০২১

৭) শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ, *অসমৰ সাংস্কৃতিক ইতিহাস* (দ্বিতীয় খণ্ড), প্ৰকাশক - অসম সাহিত্য সভা, ২০১৩

৮) ৰাজকুমাৰ, সৰ্বানন্দ, *ইতিহাসে সোঁৱৰা ছশটা বছৰ,* প্ৰকাশক- বনলতা প্ৰকাশন, ২০১৭

৯) বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা, *অসমৰ লোক সংস্কৃতি,* দ্বিতীয় প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৮৩

১০) Barman, Pradip; *Technology during the Ahom rule in Assam 1228-1826*, A thesis submitted to Gauhati University, 2021.

১১) Barua, Golap Chandra; *Ahom Buranji*, published by Authority of the Assam Administration, 1930.

১২) Baruwati, N. Boruah, N and Gogoi, M, *Ethno medicinal plants used in post delivery problem by Tai Ahom people of Upper Brahmaputra valley, Assam*, Annals of Pharmacy and Pharmaceutical Sciences, Vol.2, Issue (1 & 2) (April & Oct), 2011.

১৩) Dohutia, C, Chetia, D, and Upadhyaya, S. *Ethno-medicinal Survey on Tai Ahom Community of Assam*, Studies on Ethno- Medicine, 2016.

১৪) Gait, Edward, *A History of Assam,* EBH Publishers, 2017.

১৫) Gogoi, Padmeswar, *Tai Ahom religion and customs*, Publication Board Assam, 1976.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

নৰেন পাটগিৰি নাটক ঃ এটি অধ্যয়ন

(‘ৰজা আহে’ আৰু ‘দিবাকৰৰ আত্মকথা’ নাটকৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

ৰিম্পী বড়া

গৱেষক ছাত্ৰী
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত
বিশ্ববিদ্যালয়,গুৱাহাটী, অসম
ডাক ঃ খানাপাৰা, পিন ঃ ৭৮১০২২
ম'বাইল ঃ ৭০০২৮৪৩৪৫৯
ই-মেইল ঃ rimpiborah2015@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত অন্যান্য বিধাসমূহৰ ভিতৰত আন এক প্ৰণিধানযোগ্য বিধা হ'ল-‘অসমীয়া নাটক’। মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ হাতত সৃষ্টি হোৱা অসমীয়া নাটকে ব্ৰিটিছসকল অসমলৈ অহাৰ পাছত আধুনিক ৰূপ লাভ কৰে। তাৰ পৰৱৰ্তী সময়ত বিভিন্নজন নাট্যকাৰ হাতত বিভিন্ন ধাৰাৰ জৰিয়তে আধুনিক অসমীয়া নাটকে বিকাশ লাভ কৰে। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এজন বিশিষ্ট নাট্যকাৰ হ'ল-নৰেন পাটগিৰি। তেওঁৰ নাটকৰ মাজেৰে সমসাময়িক অসমীয়া সমাজ জীৱনে ভুমুকি মাৰিছে। তদুপৰি তেওঁৰ নাটকৰ অধিকাংশ চৰিত্ৰ অধিকাংশই অসমীয়া সামাজিক কাঠামোটোৰ নিম্ন স্তৰৰ প্ৰতিভূ। আমাৰ এই আলোচনাৰ মাধ্যমেৰে নৰেন পাটগিৰিৰ ‘দিবাকৰ আত্মকথা’ আৰু ‘ৰজা আহে’ নাটকৰ কাহিনী আৰু বিষয়বস্তু, চৰিত্ৰ, কলাকৌশল আৰু সংলাপ, লোকজীৱন, সমসামায়িক সমাজ জীৱন সম্পৰ্কে অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ

নাটক, লোকজীৱন, সমসাময়িক সমাজ, কলা-কৌশল আৰু সংলাপ আদি।

১.০ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ত দৰ্শক আৰু পাঠকৰ মাজত সমাদৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা সাহিত্যৰ বিধাসমূহৰ ভিতৰত নাটক অন্যতম। নাটক দৃশ্য-শ্ৰব্য কলা। নাটক পাঠ কৰি ৰসাস্বাদন কৰাৰ উপৰি চকুৰে দৰ্শন কৰি, কাণেৰে শ্ৰৱণ কৰি ৰসাস্বাদন কৰিব পাৰি। নাটকৰ মাজত মানুহৰ জীৱনচৰ্চাৰ ইতিহাস ৰক্ষিত হৈ থাকে। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ নাট্যকাৰসকলৰ ভিতৰত এজন বিশিষ্ট নাট্যকাৰ হ'ল - নৰেন পাটগিৰি। আশীৰ দশকতে তেওঁ অসমীয়া নাট্যক্ষেত্ৰত প্ৰৱেশ কৰে “আৰু এদল একলব্য” ১৯৯২ নামৰ বাটৰ নাট এখনেৰে। তাৰ পাছৰে পৰা বিভিন্ন মাধ্যমৰ বাবে নাটক ৰচনা কৰি অসমীয়া নাটকৰ ক্ষেত্ৰখনত স্বকীয়তাৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে।

পাটগিৰিয়ে বৰ্তমানলৈকে ছখন বাটৰ নাট, ৮খন একাংকিকা নাটক, ১২ খন শিশু নাটক, ১১খন মঞ্চ নাটক, ১৪খন অনাতাঁৰ নাটক আৰু ভ্ৰাম্যমাণ থিয়েটাৰৰ বাবে ২খন নাটক লিখি উলিয়াইছে। তেওঁ মঞ্চক উপলক্ষ্য কৰি লিখা নাটকসমূহৰ বিষয়বস্তু তথা কথকতাত বিশিষ্টতা লক্ষ্য কৰা যায়।

১.১ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু পৰিসৰ ঃ

কোনো এজন নাট্যকাৰে তেওঁৰ তদানীন্তন সময় আৰু সমাজৰ দায়বদ্ধতাক স্বীকাৰ কৰিয়েই নাটক ৰচনাত হাত দিয়ে। নাটকৰ প্ৰায়োগিক দিশ এটা আছে বাবেই সমাজৰ লগত ইয়াৰ সম্পৰ্ক গভীৰ। সেই দৃষ্টিভংগীৰে নাটকে তদানীন্তন সময়ৰ সামাজিক চেতনাক প্ৰতিফলিত কৰে। নাটক অধ্যয়নে সমসাময়িক সময়খিনিক বুজাতো সহায় কৰে আৰু নাটকৰ নন্দনতাত্ত্বিক আলোচনাই সাহিত্যৰ অগ্ৰগতিৰো ধাৰণা প্ৰদান কৰে। সেই বাবে নৰেন পাটগিৰিৰ নাটক অধ্যয়ন কৰিলে তেওঁ নাটক ৰচনা কৰাৰ সময়খিনিৰ অসমীয়া সমাজৰ চিন্তা-চেতনাক সম্পৰ্কে আভাস পোৱা যাব।

এই গৱেষণা পত্ৰখনত অসম প্ৰকাশন পৰিষদৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত *ৰাগ বসুন্ধৰা নিৰ্বাচিত নাটক আৰু নাট বিষয়ক লিখনী* ২০১৩ ত সন্নিৱিষ্ট “ৰজা আহে”, “দিবাকৰৰ আত্মকথা” আলোচনাৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

১.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে-

ৰজা আহে আৰু দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটক দুখনৰ বিভিন্ন দিশ সম্পৰ্কে প্ৰণালীৱদ্ধভাৱে অধ্যয়ন কৰা।

তদানীন্তন অসমৰ আৰ্থ-সামাজিক, ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপটৰ প্ৰতিফলক হিচাপে নৰেন পাটগিৰি নাটকৰ অধ্যয়ন।

পৰিৱৰ্তিত সময়ে নৰেন পাটগিৰিৰ নাটকৰ বিষয়বস্তু চয়ন আৰু উপস্থাপন শৈলীত কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰিছে সেই বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা।

১.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনত নাটকৰ মূল উপাদানসমূহক আধাৰ হিচাপে লৈ নৰেন পাটগিৰিৰ নাটক সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হৈছে। এই গৱেষণাত মুখ্য আৰু গৌণ দুই প্ৰকাৰৰ উৎসৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে অসম প্ৰকাশন পৰিষদৰ পৰা প্ৰকাশ পোৱা *ৰাগ বসুন্ধৰা নিৰ্বাচিত নাটক আৰু নাট বিষয়ক লিখনী* ২০১৩ গ্ৰন্থখন আৰু নৰেন পাটগিৰিৰ ব্যক্তিগত সাৎক্ষাকাৰক গ্ৰহণ কৰা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে অসমীয়া নাটক তথা নৰেন পাটগিৰিৰ নাটক সম্পৰ্কে বিভিন্ন কিতাপ, আলোচনীত প্ৰকাশিত প্ৰবন্ধ, লিখনি আৰু বিষয়ৰ লগত সম্পৰ্কিত আলোচনাসমূহ গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

নৰেন পাটগিৰি নাটকৰ বিষয়বস্তু ঃ

“দৃশ্য-শ্ৰব্য কলা” ৰূপে স্বীকৃত নাটকক সাধাৰণতে সকলো শিল্পকৰ্মৰ ভিতৰত অতি জটিল কলা বুলি কোৱা হয়। নাটকত বিভিন্ন সুকুমাৰ কলাৰ সংমিশ্ৰণ ঘটে বা মধুৰ সমন্বয় সাধন হয়। গণ সংযোগৰ শক্তিশালী মাধ্যম হিচাপে নাটকে এজন ব্যক্তিৰ পৰা আন এজন ব্যক্তিলৈ চিন্তা-চেতনা প্ৰভাৱিত কৰে। নাটকে দৰ্শকক মানসিক প্ৰাপ্তি দিয়াৰ লগতে অৱসাদ দূৰ কৰাৰ উপৰি জীৱন সম্পৰ্কে সমাজলৈ বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰিব পাৰে।

এৰিষ্টট'লে কাহিনীক প্ৰধান উপাদান বুলি উল্লেখ কৰাৰ লগতে কাহিনীক দুটা ভাগত বিভক্ত কৰিছে- জটিল আৰু সৰল। জটিল কাহিনী ঘটনা বিপৰীতমুখী হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে সৰল কাহিনীৰ গতি পোনপটীয়া। নাটক এখনত যি ঘটনাক আশ্ৰয় কৰি নাটকৰ ক্ৰিয়াশীলতা আগবাঢ়ে সেয়াই নাটকখনৰ বীজ। নাটকৰ কাহিনীয়ে সংঘাতৰ সন্মুখীন হৈ বিস্তাৰ লাভ কৰা অৱস্থাই বিন্দু। নাটকৰ কাহিনীক মুখ, প্ৰতিমুখ, গৰ্ভ, বিমৰ্শ, উপসংহাৰে ঐক্য প্ৰদান কৰে। পাশ্চাত্যৰ নাটকতো পঞ্চসন্ধিৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। নাটকৰ কাহিনীত উপকাহিনীৰ উপৰি ঘটনাৰ ঐক্য, কালৰ ঐক্য আৰু স্থানৰ ঐক্যৰ ওপৰত প্ৰাধান্য আৰোপ কৰা হয়। নাটকৰ কাহিনীক দৰ্শকৰ সন্মুখত কৌতূহলতা বৃদ্ধি কৰাৰ ক্ষেত্ৰত “নাট্যোৎকণ্ঠা” প্ৰয়োগে অধিক আৱেগময়তা প্ৰদান কৰে। নাট্যোৎকণ্ঠাৰ উপৰি “নাট্যশ্লেষে”ও কাহিনীৰ গতিবেগ সৃষ্টি কৰাৰ লগতে দৰ্শকৰ মাজত আকুলতা বৃদ্ধিৰ অন্যতম উপকৰণ হিচাপে কাম কৰে। নাট্যকাৰ নৰেন পাটগিৰিয়ে তেওঁৰ নাটকসমূহৰ বিষয়বস্তু চয়ন কৰিছে ভিন্ন আধাৰৰ পৰা। তেওঁ নাটকদুখনৰ কাহিনী আৰু বিষয়বস্তু সম্পৰ্কে এনেদৰে

আলোচনা কৰিব পাৰি -

'ৰজা আহে' নাটকখন নৰেন পাটগিৰিয়ে ৰচনা কৰিছিল ১৯৯৩ চনত। নাটকখনৰ পটভূমি নিৰ্মিত হৈছে নৈপৰীয়া মৎস্যজীৱী মানুহৰ সাৰ্বজনীন সৰল আবেদনেৰে। মুঠ বাৰটা দৃশ্যত বিভক্ত নাটকখনত নৈপৰীয়া সাধাৰণ ৰাইজৰ ওচৰলৈ ৰজা আহিব বুলি দিয়া সংবাদে কেনেধৰণৰ পৰিৱেশ পৰিস্থিতি সৃষ্টি কৰিছে তাক নাট্যকাৰে সুন্দৰ ৰূপত চিত্ৰিত কৰিছে। নৰেন পাটগিৰিৰ 'ৰজা আহে' নাটকখনৰ বিষয়বস্তু হৈছে নদীপৰীয়া মৎস্যজীৱী সাধাৰণ প্ৰজাৰ ওপৰত উচ্চ অভিজাত শ্ৰেণীয়ে কৰা শোষণ। সামাজিক দ্বন্দ, ৰাষ্ট্ৰশক্তিৰ নিষ্ঠুৰ আচৰণ আৰু প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ শাশ্বত মাটিৰঙী সম্পৰ্কই হ'ল নাটখনৰ মূল আধাৰ। নদীপৰীয়া মৎস্যজীৱী মানুহৰ সৰল আবেদনেৰে নাটখনৰ পটভূমি নিৰ্মাণ হৈছে। নদী সভ্যতাৰ মাতৃ, মানুহ নদীৰ চিৰন্তন প্ৰেমিক। প্ৰেমৰ বহুমাত্ৰিক স্ফুৰণ নাটকখনৰ আন এক অন্যন্য বৈশিষ্ট্য হ'লেও অন্যায়ৰ প্ৰতিবাদ নাটকখনিৰ হৃদয়ৰ আলাপ। 'ৰজা আহে' নাটকখনত শাষক-শোষিতৰ দ্বন্দৰ দৰে পৰিচিত এটা বিষয়- বস্তু লোকভাষাৰ জৰিয়তে অভিব্যক্ত হৈছে। নাট্যকাৰে লোকভাষাৰ বিপুল সম্ভাৱনা উন্মোচন কৰিছে এগৰাকী কবিৰ লেখীয়াকে। এই নাটকখনত ৰজা আহে আৰু গুচি যায় কিন্তু সাধাৰণ প্ৰজাৰ একো পৰিৱৰ্তন নোহোৱাৰ লগতে প্ৰজাই বাৰে বাৰে প্ৰবঞ্চনাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। খং আৰু ক্ষোভত শোষিত শ্ৰেণীটোৱে বাৰে বাৰে প্ৰবঞ্চনাৰ বলি হ'ব লগা হোৱাৰ বাবে চিঞৰাৰ লগতে প্ৰতিবাদ কৰে। নাটকখনৰ চৰিত্ৰ লীলা, শ্যাম, কুবেৰ, ৰাঘৰ, চেনেহীহঁতে অন্যায়ৰ প্ৰতিবাদ কৰিছে আৰু শোষক শ্ৰেণীক গৰিহণা দিছে। নাটকখনৰ কথা-বস্তু আৰু ভাৱবস্তুত মাৰ্ক্সীয় আদৰ্শৰ দ্বাৰা অনুপ্ৰাণিত জীৱনবোধৰ প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়।

'দিবাকৰৰ আত্মকথা' নাটকখনৰ মূল জুমুঠিটোৱেই সংগীত। কাহিনীভাগ গোৱালপৰীয়া লোকগীতৰ সুৰেৰে সুন্দৰকৈ সজোৱা হৈছে। নাটকখন ৰচিত হৈছিল ১৯৯৭ চনত। নদীপৰীয়া মৎস্যজীৱী লোকৰ কঠোৰ জীৱন সংগ্ৰাম আৰু পৰাধীন ভাৰতৰ বুকুত সাধাৰণ লোকৰ জীৱন এটা কেনেদৰে নিঃশেষ হৈ গৈছে তাক পটভূমি হিচাপে লৈ নাট্যকাৰে 'দিবাকৰৰ আত্মকথা' ৰচনা কৰিছে। নৰেন পাটগিৰিৰ ৰচিত 'দিবাকৰৰ আত্মকথা' নাটখনৰ বিষয়বস্তু হৈছে সাধাৰণ মাছমৰীয়া, নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকক ক্ষমতাশালী মহলদাৰে কৰা অন্যায়, জীৱন সংগ্ৰাম তথা পৰাধীন ভাৰতৰ বুকুত ইংৰাজৰ ৰাজনৈতিক কু-চক্ৰান্তৰ বলি হৈ সাধাৰণ লোকজীৱন এটা নিঃশেষ হৈ যোৱাৰ বৰ্ণনা। নাটকখনৰ মূল চৰিত্ৰৰ সংখ্যা দুটা-লোকশিল্পী বৃন্দাবন আৰু মাছমৰীয়া দিবাকৰ দাস। গোৱালপৰীয়া লোকগীতৰ প্ৰয়োগে নাটখনক অন্য মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। নাটখন ১৬ টা দৃশ্যত বিভক্ত যদিও দৃশ্যসমূহ চুটি চুটি। প্ৰায়বোৰ দৃশ্যৰ আৰম্ভণি সংগীতৰ মাজেৰে হৈছে যদিও দুই এটা দৃশ্যত সংলাপৰ প্ৰয়োগ মন কৰিবলগীয়া। পোন্ধৰ নম্বৰ দৃশ্যত দিবাকৰৰ মুখত দিয়া সংস্কৃত শ্লোকৰ প্ৰয়োগে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। প্ৰতিটো দৃশ্যৰ আৰম্ভণিতে নাট্যকাৰে থূলমূল আভাস দাঙি ধৰিছে।

নাট্যকাৰ অৰুণ শৰ্মাই 'দিবাকৰ আত্মকথা' নাটকখনৰ সম্পৰ্কে *ৰাগবসুন্ধৰা নিৰ্বাচিত নাটক আৰু নাটবিষয়ক লিখনি* ত সন্নিবিষ্ট নৰেন পাটগিৰি নাট্য সংকলন নামৰ প্ৰবন্ধত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে-

"লোকজীৱনৰ সহজ সৰল একোটা জীৱন পৰাধীন ভাৰতত কৈনেকৈ গ্লানিৰ পিটনিত ককবকাই থাকি শেষত ক্ষোভৰ বহ্নিশিখা হৈ জ্বলি উঠিছিল এনে সঁচা বাস্তৱতাৰেই ৰূপান্তৰ বুলি উল্লেখ কৰিছে ।তদুপৰি তেওঁ পাটগিৰি আন কেইখন নাটকতকৈ এই নাটখনৰ গাথঁনি আৰু পৰিৱেশৰ আংগিকো সুকীয়া আৰু অধিক বৈচিত্ৰময় বুলি মন্তব্য প্ৰদান কৰিছে। (শৰ্মা, ২০১৩, পৃ. সং. উ. না)

অৰুণ শৰ্মাৰ উপৰিও ডক্টৰ সুব্ৰতজ্যোতি নেওগ অমলচন্দ্ৰ দাসৰ সম্পাদনাত প্ৰকাশিত অসমীয়া নাট্য পৰিক্ৰমা শীৰ্ষক প্ৰবন্ধত সন্নিবিষ্ট 'নৰেন পাটগিৰি নাটক' প্ৰবন্ধত দিবাকৰ আত্মকথা সম্পৰ্কে লিখিছে-

"Bertolt Brecht Mother courage and he children নাটকত সংগীতৰ আলাপচাৰিতা আৰু বিস্তৃতিৰ ভূমিকা পালন কৰিছে ঠিক একে ভূমিকা সংগীতে দিবাকৰ আত্মকথাত পালন কৰিছে।" (দাস, ২০১৮, পৃ.৭২৭)

নৰেন পাটগিৰি নাটকৰ চৰিত্ৰ ঃ

নাটকৰ উপাদান সমূহৰ ভিতৰত চৰিত্ৰ অন্যতম। নাটক এখনৰ সফলতা নিৰ্ভৰ কৰে চৰিত্ৰ সৃষ্টিৰ ওপৰত। চৰিত্ৰৰ মাজত থকা সংঘাতৰ জৰিয়তে নাটকত বিভিন্ন পৰিস্থিতি সৃষ্টি হয় আৰু এই পৰিস্থিতিসমূহে নাটকত বিভিন্ন

ৰস সৃষ্টি কৰি আৰ্কৰ্ষণীয় কৰি তোলে। সমালোচক হাডছনে নাটকৰ চৰিত্ৰ সম্পৰ্কে কৈছে - Character is the really fundermental and lasting element in the greatness of any dramatic work. (Hudson. 1979. p.186)

চৰিত্ৰ বিকাশৰ বাবে এক বহল পৰিসৰ প্ৰয়োজন কাৰণ ঠেক পৰিসৰ মাজত চৰিত্ৰৰ বিকাশ সম্ভৱ নহয়। নাট্যকাৰ দক্ষতাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়েই চৰিত্ৰই সাৰ্থকতা লাভ কৰে। নাটকৰ চৰিত্ৰ ভাগ দুটা- প্ৰধান আৰু পাৰ্শ্ব চৰিত্ৰ। নাটক এখনৰ নায়ক-নায়িকা প্ৰধান চৰিত্ৰ যদিও কেতিয়াবা একাধিক চৰিত্ৰ অথবা খলনায়কো প্ৰধান ভূমিকা ল'ব লগা হয়। পাৰ্শ্ব চৰিত্ৰক দুটা ভাগত বিভক্ত কৰা হৈছে- স্থিৰ আৰু গতিশীল। যিবোৰ চৰিত্ৰ সকলো পৰিস্থিতিতে একেদৰে থাকে সেইবোৰেই স্থিৰ চিত্ৰ আৰু পৰিস্থিতি অনুসৰি যিবোৰ চৰিত্ৰৰ সলনি হয় তাক গতিশীল চৰিত্ৰ বুলি কোৱা হয়।

আধুনিক নাটক্যাৰসকলে চৰিত্ৰ সৃষ্টিত বিশেষ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি আহিছে। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ নাট্যকাৰ নৰেন পাটগিৰিয়ে চৰিত্ৰৰ সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিছে। চৰিত্ৰ সৃষ্টিৰ ক্ষেত্ৰত পাটগিৰিৰ ৰাগবসুন্ধৰা নিবাৰ্চিত নাটক আৰু নাট বিষয়ক লিখনিত সন্নিবিষ্ট ৰজা আহে আৰু দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটক দুখন বিশেষ বৈশিষ্ট্য বহন কৰিছে।

'ৰজা আহে' এখন সামাজিক নাটক। নাটকখনৰ আটাইকেইটা চৰিত্ৰই নাট্যকাহিনীক আটিল ৰূপত বান্ধি ৰখাৰ লগতে গতিময়তা প্ৰদান কৰিছে। নাটকখনৰ মুঠ চৰিত্ৰ সংখ্যা হৈছে ১৪টা। নাট্যকাৰে নাটকখনত প্ৰধান চৰিত্ৰ ৰূপত কোনো এটা চৰিত্ৰকে অংকিত কৰা নাই। কুবেৰ চৰিত্ৰটো নাট্যকাৰে পাৰ্শ্ব চৰিত্ৰৰ ৰূপত অংকিত কৰিছে। নাটকখনৰ শেষ অংশলৈকে কুবেৰ চৰিত্ৰটোৱে নিজৰ মততে আটুট আছে। কুবেৰ চৰিত্ৰটোৱে শোষক শ্ৰেণীয়ে সাধাৰণ শ্ৰেণীক কৰা শোষণৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ কৰিছে। সেয়েহে কুবেৰে ঘাটলৈ ৰজা অহাৰ সংবাদ শুনাৰ লগে লগে গাওঁৰ ৰাইজক তাৰ বিৰুদ্ধে সজাগ কৰাৰ লগতে ৪০ বছৰ আগতে ৰজা আহোঁতে কেনেধৰণৰ পৰিস্থিতি সৃষ্টি হৈছিল তাক বুজাই দিছে। কুবেৰে উৰ্ব্বশীয়ে সপোনত ক'লা মাছ দেখাৰ সম্পৰ্কে বাতৰি পোৱাৰ লগে লগে গাওঁখনৰ সকলোৱে হৈ সেই বিপদৰপৰা পৰিত্ৰাণ পাবলৈ নিৰ্মলাৰ বুকুত জলনাৰায়ণৰ পূজা এভাগ আগঢ়াইছে। নিৰ্মলাৰ প্ৰতি কুবেৰ অগাধ ভালপোৱা স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। নদীত মাছ মাৰিবলৈ বালিহঁত যোৱাৰ সময়ত ধনেশ্বৰ ইজতদাৰে ৰজাপৰা নদীখন ডাক লৈছো বুলি কৈ বালিহতঁক মাছ মাৰিবলৈ বাধা দিয়াৰ বাবে কুবেৰে ক্ষোভিত হৈ কৈছে -

"ৰজাই ধনেশ্বৰক নিৰ্মলা নদীখন দিও বুলিলে দিব পাৰিবনে? নদীখন ৰজাৰ বাপেকে খান্দি থৈ যোৱা নাই নহয়। ধনেশ্বৰে কলে আৰু তহঁতে নেগুৰ পেলাই গুচি আহিলি?" (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১০৪)

কুবেৰে ৰজাৰ অহাৰ প্ৰসংগত সুৱাগমণি ঘাটৰ মানুহে বিধস্থ বলিয়া বানক ভেঁটিব পাৰিছে যদি ৰজা মানুহহে দৈত্য-দানৰ নহয় তাক সকলোৱে আগত অৱগত কৰিছে। নাটকখনৰ প্ৰথম দৃশ্যৰপৰা শেহৰ দৃশ্যলৈকে কাহিনীভাগ ধৰি ৰখাত নাট্যকাৰে চৰিত্ৰটো ৰূপায়ণৰ ক্ষেত্ৰত সফল হৈছে।

লীলা নাটকখনৰ আন এক অনবদ্য চৰিত্ৰ। লীলা চৰিত্ৰটো মাজৰে ৪০ বছৰৰ আগতে সুৱাগমণি ঘাটলৈ ৰজা কৃষ্ণবল্লভ এমাহৰ বাবে বানপানীত বিধস্থ হোৱা ৰাইজক সাহাৰ্য দিবলৈ আহি গাওঁৰ তিৰোতা মানুহৰ ওপৰত চলোৱা উৎপীড়ন সম্পৰ্কে বিবৃত কৰিছে। লীলাই কুবেৰে ঘাটলৈ ৰজা আহিব নোৱাৰা প্ৰসংগত কৈছে —

"নিৰ্মলাৰ বলিয়াৰ বান আৰু অত্যাচাৰী ৰজাৰ অহংকাৰ একে নহয় কুবেৰ। মনত আছেনে। অজুৰ্নেও সেইবাৰ ৰজাৰ বিৰুদ্ধে মাটিত ভুকু মাৰি থিয় দিছিল। অৰ্জুনক জানো বচাব পাৰিলি?" (পাটগিৰি, ২০১, পৃ.১১২)

লীলাই ৰজাৰ এজেণ্ট হৈ কাম কৰা ডাউক আৰু ৰাঘৱক ৰজা কৃষ্ণবল্লভ ঘাটলৈ আহোঁতে ডাউকৰ পিতৃক ৰজাৰ মানুহে কুকুৰ মেকুৰীৰ দৰে মাৰি পেলাইছিল আৰু ৰাঘৱৰ মাতৃক কৰা যৌন উৎপীড়নৰ বাবে ৰাঘৱৰ জন্ম তাক ব্যক্ত কৰিছে। সেই সময়ত ৰাঘৱৰ ভগৱান ধনেশ্বৰে কোনো ধৰণে সহায় কৰা নাছিল তাক ৰাঘৱক বুজাবলৈ চেষ্টা কৰিছে। লীলা চৰিত্ৰটোৱে গাওঁৰ সকলো লোকেৰে মংগল কামনা কৰি সকলোকে একগোট হৈ ৰজাৰ বিৰুদ্ধে থিয় দিবলৈ অনুৰোধ কৰিছে।

ৰাঘৱ চৰিত্ৰটোক নাট্যকাৰে গতিশীল চৰিত্ৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। ৰাঘৱ ৰজাৰ এজেণ্ট। ৰজাক ঘাটলৈ লৈ অনাৰ ক্ষেত্ৰত গাওঁৰ বাকী মানুহবোৰৰ বিৰুদ্ধে থিয় দিছে। ৰজাই ৰাঘৱৰ জীয়েক ৰাধাক বলৎকাৰ কৰাৰ

পাছত নিজৰ ভুল উপলব্ধি হোৱাত ৰজাক ভেটিব বাবে শেষত কুবেৰ পৰা লাঠিদাল কাঢ়ি লৈ ৰজাৰ বিৰুদ্ধে থিয় দিয়ে। আন এক চৰিত্ৰ ডাউক ৰাঘৱৰ লগৰীয়া আৰু ৰজাৰ এজেণ্ট। ৰজা ঘাটলৈ অহাৰ প্ৰসংগত অন্য লোকসকলে বাধা আৰোপ কৰাৰ প্ৰসংগত কৈছে - "তেতিয়া ক'ত মৰিলি কুবেৰ, ক'ত গৈছিল গাওঁখন? গাওঁৰ মুখিয়াল ওলাইছে। হা-ভাত হা-ভাতকৈ যেতিয়া ভোকত কলমটিয়াই ফুৰিছিলো, কোনে চাইছিল মোৰ মুখলৈ? ধনেশ্বৰৰ লোণ খাই জীয়াই আছো, এশবাৰ গুলামী কৰিম। কাকো নামানো-এই ঘাটলৈ ৰজা আহি'ব। কোনোবাই বাধা দিলে তাৰ ঘৰত জুই লগাই দিম মই। সুৱাগমণি বালি তেজেৰে ভিজাম।" (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১১৪)

উল্লেখিত পুৰুষ চৰিত্ৰকেইটাৰ বাহিৰেও আন কেইটামান পুৰুষ চৰিত্ৰ হ'ল- ইন্দ্ৰ, শ্যাম, মঙ্গল, ধনীৰাম, বিষ্ণু, টেমেনা আৰু বালি। ইন্দ্ৰ উৰ্ব্বশী স্বামী আছিল যদিও নাৰীৰ প্ৰতি দুৰ্বল, এলেহুৱা প্ৰকৃতিৰ হোৱাৰ বাবে উৰ্ব্বশীয়ে সম্পৰ্ক ত্যাগ কৰে। সমাজৰ হকে চিন্তা নকৰা ইন্দ্ৰক লীলাই গাওঁখনলৈ ৰজা অহাৰ বাবে একগোট হ'বলৈ কোৱাত তাৰ প্ৰত্যুত্তৰত কৈছে -

"মোক এইবোৰত লেটিয়াইছ কিয়? যিয়ে যেনেকৈ মৰে মৰক, মোৰ কি হ'ল?" (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১১২)

বিষ্ণু চৰিত্ৰটোক নাট্যকাৰে পুৰোহিতৰ ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ কৰোৱাৰ লগতে সুবিধাবাদী চৰিত্ৰ ৰূপত অংকিত কৰিছে। দুগৰাকী পত্নী থকা স্বত্তেও পুৰোহিত ৰাঘৱৰ জীয়েক ৰাধাক পত্নী ৰূপত পাবলৈ ইচ্ছা প্ৰকাশ কৰে। পুৰোহিত বিষ্ণুৱে ভণ্ডামিৰে গাওঁৰ ৰাইজৰ পৰা টকা লুটিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল যদিও সফল হ'ব নোৱাৰাত কুবেৰক গাওঁখনৰ মানুহে ডাঙৰ বিপদৰ সন্মুখীন হ'ব বুলি ভাবুকি দিয়ে।

টেমেনা চৰিত্ৰক নাট্যকাৰে বিষ্ণুৰ সোঁহাতস্বৰূপে অংকিত কৰিছে। টেমেনাক পুৰোহিতে ক'ত কেনদৰে ছান্দা পাই, পূজা-পাতলৰ হিচাপ-নিকাচ ৰখাৰ দায়িত্ব দিয়াৰ লগতে ৰাধাক এবাৰ স্পৰ্শ কৰিবৰ বাবে ব্যৱস্থা কৰিবলৈ কৈছে। নাট্যকাৰে বিষ্ণু আৰু টেমেনাৰ চৰিত্ৰৰ মাজেৰে সমাজ এখন কলংকিত হ'বলৈ বেছিপৰ নালাগে তাক প্ৰতিফলিত কৰিছে ।

নাট্যকাৰে নাটকখনৰ তৃতীয় দৃশ্যত অংকিত কৰা শ্যাম মানসিকভাৱে ভাৰসাম্য হেৰুৱাই পেলোৱা এটা ডেকা ল'ৰা। ৰজা কৃষ্ণবল্লভ ঘাটলৈ আহোঁতে মাকক কৰা যৌন উৎপীড়নৰ ফলশ্ৰুতিত জাৰজ সন্তানৰূপে শ্যামৰ জন্ম হয়। শ্যামে কলেজত শিক্ষাগ্ৰহণ কৰি থকা সময়ত বিভিন্ন লোকে কৰা মানসিক অত্যাচাৰ বাবে স্মৃতি শক্তি হেৰুৱাই পাগললৈ ৰূপান্তৰিত হয়। শ্যামে নদীৰ পাৰৰ টঙী ঘৰত অকলে বসবাস কৰে আৰু ৰাঘৱৰ জীয়েক ৰাধাই নদীৰ পৰা পানী নিবলৈ অহাৰ সময়ত তালৈ খাদ্যবস্তু যোগান ধৰে। কুবেৰে নদীখনৰ প্ৰতি মনৰ ক্ষোভ উজাৰি থকাৰ সময়ক শ্যামে নদীখনক গালি নিদিবলৈ অনুৰোধ কৰি কৈছে-

"ৰাতি তাই কান্দিয়েই থাকে। কান্দি কান্দি ভাগৰ লাগিলে তায়ো টোপনি যায়, ময়ো টোপনি যাওঁ। (পাটগিৰি, ২০১২, পৃ.১২৩)

ৰজাই সাধাৰণ শ্ৰেণীক কৰা অমানবীয় অত্যাচাৰ বাবে শ্যামে আনৰ দুখ যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিবলৈ বাধ্য হৈছে।

নাট্যকাৰে নাটকখনৰ তৃতীয় দৃশ্যত মঙ্গল চিপাহী চৰিত্ৰটো অংকিত কৰিছে। মঙ্গল চিপাহী চেনেহী প্ৰতি আকৰ্ষিত হোৱাৰ লগতে অকলশৰীয়াকৈ লগ কৰিবলৈ প্ৰস্তাৱ আগবঢ়াইছে। মঙ্গল চিপাহী চৰিত্ৰটো মাজেৰে নাট্যকাৰে কাহিনীক মাজে মাজে হাঁহিৰ খোৰাক জগাবলৈও সক্ষম হৈছে। ধনীৰাম চৰিত্ৰটোক নাট্যকাৰে মাছমৰীয়া ৰূপত আৰু বালি ভাওনা পাগল ব্যক্তি ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। ধনীৰাম মাছ বিক্ৰী কৰি জীৱিকা উপাৰ্জন কৰে যদিও ঘাটলৈ ৰজা অহাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত মাছ মাৰিবলৈ নিদিয়াৰ বাবে ক্ষোভ প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে-

"কাটি পেলামেই। তাক কাটি দুছেও কৰিম। চব্বকে কাটি পেলাম।" (পাটগিৰি, ২০১২, পৃ.১০৩)

বালি চৰিত্ৰটো মাজেৰে ধনশ্বেৰ মহলদাৰে সাধাৰণ প্ৰজাৰ পেটৰ ভাত কাঢ়ি লোৱাক লৈ তীব্ৰ প্ৰতিবাদ কৰিছে। নাটকখনত উল্লেখিত তিনিটা নাৰী চৰিত্ৰৰ অন্যতম উৰ্ব্বশী নামৰ পোহাৰী গৰাকী। সমাজৰ কোনো কথালৈ কেৰেপ নকৰি স্বামী পৰা আতঁৰি নিজে মাছ বিক্ৰী কৰি জীৱন নিৰ্বাহ কৰি আহিছে। উৰ্ব্বশীয়ে মঙ্গল চিপাহী, বিষ্ণু পুৰোহিতৰ দৰে ব্যক্তিলৈ ভয় নকৰি সন্মুখতে প্ৰত্যুত্তৰ দিছে। উৰ্ব্বশী চৰিত্ৰটো জৰিয়তে নাট্যকাৰে এগৰাকী

নাৰীয়ে স্বামীৰ অবিহনেও সমাজত স্বাবলম্বী হৈ জীয়াই থাকিব পাৰে তাক প্ৰকাশ কৰিছে। উৰ্ব্বশী চৰিত্ৰটো মাজেৰে প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থাক তীব্ৰ ৰূপত গৰিহণা কৰিছে। চেনেহী মাছমৰীয়া ধনীৰাম জীয়েক। চেনেহীক মঙ্গল চিপাহীয়ে প্ৰেমৰ প্ৰস্তাৱ দিছে যদিও দেউতাকৰ অনুমতি অবিহনে প্ৰেমৰ প্ৰস্তাৱ গ্ৰহণ কৰিবলৈ মান্তি হোৱা নাই। ৰাধা চৰিত্ৰটো নাট্যকাৰ অংকিত কৰিছে নাটখনৰ প্ৰথম দৃশ্যত। ৰাধা ৰজা এজেণ্ট ৰাঘৱৰ জীয়েক। মানসিক ভাৰসাম্য হেৰুৱাই পেলোৱা শ্যামক ৰাধাই মনে প্ৰাণে ভাল পায়। নদীৰ পৰা পানী তুলিবলৈ অহা সময়ত প্ৰত্যেকদিনাই শ্যামৰ বাবে খোৱা বস্তু লৈ অনাৰ লগতে তাৰ লগত কথাপাতি তাক সুস্থ কৰি তুলিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। আনৰ হিতৰ বাবে চিন্তা কৰা ৰাধাই নিজৰ সতীত্ব ৰজাৰ হাতত তুলি দিবলৈ বাধ্য হোৱাৰ লগত আত্মহত্যা কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। নাটখনত উল্লেখিত আটাইকেইটা চৰিত্ৰই নাট্যকাহিনীক দৰ্শকৰ সন্মুখত তুলি ধৰাৰ ক্ষেত্ৰত সফল বুলিব পাৰি।

'দিবাকৰৰ আত্মকথা' নাটকৰ মুখ্য চৰিত্ৰ দুটা। নাট্যকাৰে দুয়োটা চৰিত্ৰকে প্ৰধান চৰিত্ৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। নাটকৰ কাহিনীভাগ বৃন্দাবন চৰিত্ৰটোৰ মাজেৰে আৰম্ভণি হৈছে। লোকশিল্পী বৃন্দাবনে গীতৰ মাজেৰে নিজকে গান ভাল পোৱা এজন পাগল ব্যক্তি বুলি নিজৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। বৃন্দাবনে নিজকে মাটিৰ মানুহ বুলি উল্লেখ কৰাৰ লগতে অন্য ব্যক্তিৰ দৰে তেওঁ দুখ-ভাগৰ, চিন্তা, মান-অভিমান নাই বুলি প্ৰকাশ কৰিছে। বৃন্দাবনে গানৰ মাজতে বিলীন হৈ থকাৰ লগতে গানৰ মাজেৰে বিভিন্ন লোককথা সৰ্বসাধাৰণ ৰাইজৰ মাজত বৰ্ণনা কৰি ফুৰে। বৃন্দাবনে সোণাৰতলী গাওঁৰ পোহোৱাল ডেকা মাছমৰীয়া দিবাকৰ জীৱনত সংঘটিত হোৱা বিভিন্ন ঘটনা গীতৰ মাজেৰে বৰ্ণিত কৰিছে। বৃন্দাবনে সময়ৰ কালচক্ৰত পৰি সাধাৰণ জীৱন এটা ধ্বংস হৈ যায় তাক প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে -

"জীৱনৰ কি বিড়ম্বনা
ঘটনাৰ পাকচক্ৰত পৰি কি মানুহ কি হৈ যায়
কানাইঘাটৰ সহজ-সৰল দিবাকৰ
ফিৰিংগিৰ কূট-চক্ৰান্তত হৈ জল্লাদ
তকদীৰ ।" (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১৬০)

বৃন্দাবনে কেনেদৰে দিবাকৰে হঠাৎ এদিন গাঁৱৰ পৰা নোহোৱা হৈ গ'ল তাৰ আভাস গীতৰ মাজেৰে স্পষ্ট ৰূপত দাঙি ধৰিছে।

নাটকখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ হ'ল দিবাকৰ। দিবাকৰ সোণাৰতলী গাৱঁৰ সকলো কামতে আগৰণুৱা সহজ সৰল মাছমৰীয়া ডেকা ল'ৰা। কানাইৰ ঘাটত গাৱঁৰ চুলেমান, দুৰ্গা, চক্ৰো স'তে মাছ মাৰীবলৈ গৈ হঠাৎ অহা বতাহ-বৰষুণৰপৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ নিজৰ জীৱনৰ কথা নাভাবি নদীৰ পানীত জপিয়াই সকলোকে উদ্ধাৰ কৰিছে। চুলেমানক মহলদাৰে মাছ মাৰিবলৈ অনা জালখন ঘূৰাই দিব নোৱাৰা বাবেই কৰা শাৰীৰিক অত্যাচাৰত চুলেমানৰ মৃত্যুৰ হয়। চুলেমানৰ মৃত্যু খবৰ পায় দিবাকৰে মহলদাৰ ঘৰত উপস্থিত হৈ মহলদাৰক মৰা একেপাট চৰতে তেওঁৰ মৃত্যু হয়। দিবাকৰে মহলদাৰ হত্যাৰ গোচৰত জেইলত দিন কটাবলগীয়া হয়। দিবাকৰ ওপৰত চলা কেচৰ অন্তত দিবাকৰে ফিৰংগিৰ প্ৰাকচক্ৰত পৰি মাছমৰীয়া পৰা জল্লাদ বৃত্তি গ্ৰহণ কৰিবলৈ বাধ্য হয়। দিবাকৰে ৰাজনৈতিক চক্ৰান্তৰ বলি হৈ জল্লাদ বৃত্তি গ্ৰহণ কৰিব লগা হোৱাত প্ৰতিবাদ কৰিছে —

"হেই চুপকৰ! মই জল্লাদ নহওঁ, জল্লাদ হ'ব নোৱাৰো। স্বাধীনতা সংগ্ৰামীক ফাঁচি দিব নোৱাৰো। হেই ফিৰিংগি, হেই ধৰ্মাৱতাৰ। মোক ফাঁচী দিয়ক। মোক মাৰি পেলাওক। মোক মহাপাপত নুডুবাব হে ধৰ্মাৱতাৰ। হেই।"
(পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১৬০)

দিবাকৰে মানসিকভাৱে ভাগি পৰাৰ লগতে দেশৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামী বীৰ সন্তানসকলক কাকূতি কৰিছে ক্ষমা কৰি দিবলৈ। সোণাৰতলী গাওঁৰ লোকসকলে দিবাকৰক ঘৃণা চকুৰে চোৱাৰ লগতে দেশদ্ৰোহিতাৰ দৰে অপবাদ মূৰত জাপি দিলে। লেংৰা মহলদাৰ ৰেক জালখনৰ বাবে হোৱা সংঘাতৰ বাবে দিবাকৰে নিজৰ প্ৰেম, ভালপোৱা, সন্মান সকলো হেৰুৱাই বিধসঞ্জহ জীৱন কটাবলগীয়া হ'ল। লেংৰা মহলদাৰ, দুৰ্গা, চক্ৰো, চুলেমান, লাজ, ফিৰংগি, জেইলা আদি চৰিত্ৰ কেইটা গৌণ যদিও বিষয়বস্তুক নাট্যৰূপ দিয়াত উল্লেখযোগ্য ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে।

নৰেন পাটগিৰি নাটকৰ কলাকৌশল আৰু সংলাপ ঃ

নাটক এখনৰ সফলতা বিফলতা বহু পৰিমাণে কলা-

কৌশলৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰে।নাটকৰ বিষয়বস্তু পাঠক বা দৰ্শকৰ আগত নাট্যকাৰে দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰচেষ্টা কৰা ৰচনাশৈলীকে নাটকীয় কলা-কৌশল বুলি কোৱা হয়। নাটকীয় কলা-কৌশলৰ অন্তৰ্গত মূল দিশসমূহ হ'ল- নাটকীয় সংঘাত, উৎকণ্ঠা, বিস্ময়, নাট্যশ্লেষ ইত্যাদি।

নাটকৰ কলা-কৌশলৰ এটা উল্লেখযোগ্য দিশ হৈছে সংঘাত। নৰেন পাটগিৰিৰ নাটকত ব্যক্তিৰ লগত ব্যক্তিৰ সংঘাত,মানুহৰ লগত সমাজৰ সংঘাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। ৰজা আহে নাটকত কুবেৰৰ সৈতে হোৱা ৰাঘৰৰ সংঘাত মানুহৰ সৈতে মানুহৰ সংঘাত বুলি ক'ব পাৰি। নাটকখনত নিম্ন মাছমৰীয়া শ্ৰেণীটোৰ ওপৰত মহলদাৰ প্ৰবৃত্তি শোষকসকলে কৰা অত্যাচাৰৰ ফলত ৰাঘৰে কুবেৰৰ লগতে গাওঁৰ অন্য লোকসকলৰ মাজত বিভিন্ন কথাত সংঘাত সৃষ্টি কৰিছে। নাটকখনত সমাজৰ সৈতে ব্যক্তিৰ সংঘাত পৰিলক্ষিত হয়। প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থাৰটোৰ বাবে ৰজাৰ ৰাজনৈতিক বিষয়া ওচৰত গাওঁৰ সাধাৰণ শ্ৰেণী লোকসকলে নিজৰ সৰ্বস্ব সপি দিবলৈ বাধ্য হোৱাৰ ফলত ৰাঘৰ, শ্যামৰ দৰে জাৰজ সন্তানে আনৰ ঠাট্ৰাৰ বলি হৈ জীয়াই থাকিবলৈ বাধ্য হৈছে। নাটকখনত ব্যক্তি আৰু ব্যক্তিৰ মাজত হোৱা সংঘাত পাছলৈ শাসক আৰু শোষিতৰ মাজত হোৱা সংঘাতলৈ ৰূপায়িত হৈছে। ৰজা আহে সামাজিক নাটক। নাটকখনত চৰিত্ৰসমূহে সমষ্টিগতভাৱে নায়ক-নায়িকাৰ ভূমিকা পালন কৰিছে।

পাটগিৰিৰ নাটকৰ আটাইতকৈ উল্লেখযোগ্য দিশটো হ'ল- নাট্যশ্লেষৰ সফল প্ৰয়োগ। “কথা আৰু কামৰ দুতৰপীয়া গতি” বৰা, ১৯৮৫, পৃ.৯১ -ৰে পাটগিৰিয়ে তেওঁৰ প্ৰায় কেইখন নাটকতে নাট্যশ্লেষৰ সফল প্ৰয়োগ ঘটাইছে। উদাহৰণস্বৰূপে ৰজা আহে নাটকখনৰ ষষ্ঠ দৃশ্যত ৰাতি কুবেৰে নদীখনৰ লগত কথা পাতি থকা দেখা যায়। সেই কথোপকথনত কুবেৰে নদীখনক গালি পাৰি থাকে- “কি দৰকাৰত গাঁৱখনৰ চকুৰ টোপনি হৰিবলৈ দেওলগা ক'লা মাছটোক তোৰ বুকুত পুহি ৰাখিছ? কি লাগে তোক? গাঁওখনত আকৌ হাহাকাৰ লাগক, তাকেই বিচাৰিছ তই?” পাটগিৰি, ২০১, পৃ. ১১২ কথাখিনিৰ মাজত প্ৰকৃততে সোমাই আছে নদীখনৰ প্ৰতি থকা কুবেৰৰ অমল প্ৰেমহে। এয়াই নাট্যশ্লেষ। ঠিক সেইদৰে দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকখনৰ চতুৰ্থ দৃশ্যত নদীখনলৈ চাই চাই দিবাকৰে কৈ থাকে- “আৰু তই- তোকতো মই গালিও দিব নোৱাৰো, বেয়া মাতো মাতিব নোৱাৰো। তোৰ নাম আজলী কোনে থৈছিল ৰে। মা কছম, তইতো আজলী নহয়, তই হলি য'তকূটৰ ঘাই। দাপট দেখাৰ হা! ভাবিছিলি, কুম্ভীৰৰদৰে কিনো হাঁকে মুখখন মেলি নাৰে-মানুহে সমুদায় গিলি থবি।” পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ. ১৫২ এই কথাখিনও শ্লেষাত্মক। নদীখন দিবাকৰৰ দৰে নৈপৰীয়া মানুহখিনিৰ জীৱন শক্তি স্বৰূপ, সংস্কৃতিক বাহক।

সংলাপৰ স্থান নাটকত বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ। নাটকৰ আন দুটা উপাদান কাহিনী আৰু চৰিত্ৰ সৈতে সংলাপ ওতঃপ্ৰোতভাৱে **জড়িত** হৈ আছে। সংলাপক নাটকৰ হৃদপিণ্ড বুলি অভিহিত কৰা হয়। কিয়নো নাটক এখনৰ সাফল্য লাভৰ আঁৰত সংলাপে প্ৰধান ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। ঘটনাৰ বৰ্ণনা আৰু চৰিত্ৰ ব্যঞ্জনা সংলাপৰ দুটা প্ৰধান কাৰ্য। ৰজা আহে নৰেন পাটগিৰিৰ নদীপৰীয়া মৎস্যজীৱী মানুহৰ জীৱনক লৈ ৰচিত সংলাপ প্ৰধান নাটক। নাটকৰ সৰু-ডাঙৰ সকলো চৰিত্ৰৰ মুখত দিয়া সংলাপৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়েই নাট্যকাহিনীয়েই গতিময়তা লাভ কৰিছে। সাধাৰণ প্ৰজাৰ ওপৰত ক্ষমতাশালী নেতা পালি নেতাই কৰা নিৰ্মম অত্যাচাৰ নাটকখনত স্পষ্ট ৰূপত পৰিস্ফুট হৈ উঠিছে। নাটকখনত কুবেৰ চৰিত্ৰটোৰ মুখত দিয়া সংলাপৰ মাজেৰে নাট্যকাৰে নদীৰ ঘাটলৈ ৰজা আহিলে সাধাৰণ প্ৰজাই ভোগ কৰিব লগা হোৱা নিৰ্মম অত্যাচাৰ পৰিৱেশ পৰিস্থিতি স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশিত কৰিছে। দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকখনত নাট্যকাৰে লোকশিল্পী বৃন্দাবন চৰিত্ৰটোৰ মাজেৰে কথকতাৰ আলমত দৰ্শকৰ সন্মুখত মুখ্য চৰিত্ৰ দিবাকৰৰ জীৱনৰ প্ৰতিটো পৃষ্ঠা উন্মুক্ত কৰিছে। বৃন্দাবনৰ সংলাপৰ মাজেৰে নদীপৰীয়া সহজ সৰল মাছমৰীয়া লোকক মহলদাৰ প্ৰবৃত্তিৰ লোকসকলে সাধাৰণ এখন জালৰ বাবে কেনেধৰণৰ পৰিৱেশ পৰিস্থিতি সৃষ্টি কৰিছিল তাক ব্যক্ত কৰিছে এনেদৰে-

বৃন্দাবন : হেই বাৰভাৰী পিতেক
মোৰ জালখন কি জগন্নাথৰ প্ৰসাদ পাইছ
জহৰাহ্লু তই জাননে নাই মোৰ নাম লেংৰা
চপাংকৈ উঠিল মহলদাৰ চাবুক
চুলেমানৰ মাগুৰ বৰণীয়া পিঠিত তেজ টোপাটোপ
মেকুৰীৰ বিষ্ঠা

তোৰ জানতকৈ মোৰ জালৰ দাম বেছি
মোৰ জাল গৈছে পানীত
পুতি থ'ম তোক মই ডিঙিলৈকে মাটিত
লেংৰাৰ চোতালত ডিঙিলৈকে পুতি পেলোৱা হ'ল চুলেমানক
ঘামত ভিজা গালে-মুখে তাৰ মেলি দিলে এজাক আমৰলি পৰুৱা
মূৰত ঢালি দিলে তপত তেল।

(পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ. ১৫৪)

দিবাকৰৰ সংলাপৰ মাজেৰে তেওঁৰ মানসিক সংঘাত প্ৰকাশ কৰাত নাট্যকাৰ সফল হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে দিবাকৰ মুখেৰ কানাইঘাটৰ নাৰৱীয়া বোবা ছোৱালী লাজৰ প্ৰতি থকা প্ৰেম ভাব প্ৰতিফলিত হৈছে এনেদৰে-

দবাকৰ : কালি ফুট গধূলিতে তোক আহিবলৈ ক'লো। আহি পালি আজি দুপৰীয়া কালিৰেপৰা পৰা তোৰ বাবে ইয়াতেই বহি আছোঁ। এতিয়া মোৰ ফালে ফ্যাল ফ্যালকৈ কি চাই আছ? আৰে চাদৰৰ ৰঙা পাৰিটো ফালিছ কিয়া? বেঙী! মাৰিম এক **থাপৰ!** চাওঁ এইফালে আহ চুমা এটা গাওঁ। (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ. ১৬৬)

নৰেন পাটগিৰি দুইখন নাটকত প্ৰয়োগ কৰা সংলাপলৈ মন কৰিলে এটা কথা প্ৰতিপন্ন হয় যে নাটককেইখনত সংলাপ সংযোজনে বৈচিত্ৰ্যৰ সৃষ্টি কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। নাটককেইখনৰ প্ৰতিটো সংলাপে চৰিত্ৰ আৰু কাহিনীৰ সৈতে সামঞ্জস্যতা ৰক্ষা কৰিছে।

নৰেন পাটগিৰিৰ নাটকত প্ৰতিফলিত সমসাময়িক সমাজ জীৱন ঃ

মানুহ সামাজিক জীৱ আৰু মানুহৰ দ্বাৰাই সমাজ গঠন হয়। মানুহ আৰু সমাজৰ মাজত ওতঃপ্ৰোত সম্পৰ্ক আছে। সমসাময়িক সমাজ জীৱন বুলিলে সেই সময়ৰ সমাজ জীৱনত প্ৰতিফলিত হোৱা ৰীতি-নীতি, কু-সংস্কাৰ, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক আদি বিভিন্ন সমস্যাসমূহকে বুজোৱা হৈছে। আধুনিক যুগৰ নাট্যকাৰ নৰেন পাটগিৰিৰ নাটকত সেই সময়ৰ সমাজৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে।

দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকত অসমত ইংৰাজ শাসনে সাধাৰণ প্ৰজাক কৰা দুৰ্দশা চিত্ৰ চিত্ৰিত হৈছে। দিবাকৰে ইংৰাজৰ কু-চক্ৰান্তৰ বলি হৈ জাল্লাদ বৃত্তি গ্ৰহণ কৰিবলগীয় হ'ল। অসমক ব্ৰিটিছৰ কবলৰ পৰা মুক্ত কৰিবলৈ দেশৰ বীৰ সন্তানসকলে ইংৰাজৰ বিৰুদ্ধে আন্দোলন গঢ়ি তুলিছিল। ইংৰাজৰ বিৰুদ্ধে কৰা বহুতো লোক শ্বহীদ হৈছিল। দিবাকৰে ইংৰাজৰ দাসত্ব হিচাপে আপোন ভাই সকলক নিজ হাতৰে ফাঁচী দিবলৈ বাধ্য হৈছিল ইচ্ছাৰ বিৰুদ্ধে। দিবাকৰে দেশৰ বীৰসন্তানসকলক ফাঁচী দিবলৈ প্ৰথম অৱস্থাত সন্মতি নোহোৱাত সোণাৰতলীৰ গাওঁখন ;লাই দিয়াৰ ভাবুকি দিয়ে। দিবাকৰে ইংৰাজৰ চক্ৰান্ত্ৰ সম্পৰ্কে বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে- "জল্লাদৰ কাম নকৰিলে, ফিৰিংগিয়ে হুমকি দিছে, সিহঁতে আমাৰ গাওঁখন ;লাই দিব আই। কুডুকিত যাব মাছমৰীয়া নাওঁ, মোৰ কাৰণে উছন যাব গাওঁ। মই কি কৰোঁ আই? মোক উপায় দে, মোক তই কৈ যা আই তোৰ বাদে মোৰ আন কোনো নাই।" (পাটগিৰি, ২০১, পৃ. ৬২)

নৰেন পাটগিৰিৰ ৰজা আহে নাটকখনত জনসমাজৰ মাজত থকা অৰ্থনৈতিক বৈষম্যৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। ৰজা আহে নাটকত মাছমাৰি জীৱিকা অৰ্জন কৰা শ্ৰেণীটোলৈ ভোগবাদী কিছুমান মানুহৰ বাবে অমনিশা নামি আহিছে। নদীখনত মহলদাৰ শ্ৰেণীটোৱে গাঁওৰ সাধাৰণ প্ৰজাক মাছ মাৰিবলৈ নিদিয়াৰ বাবে দুবেলা দুমুঠি খাই জীয়াই থাকিবলৈ অসুবিধা হ'ব তাক লৈ কুবেৰ, বালি, উৰ্ব্বশী চিন্তিত হৈ পৰিছে। নাট্যকাৰে কুবেৰ আৰু বালিৰ কথোপকথনৰ মাজেৰে প্ৰকাশ কৰিছে—

কুবেৰ ঃৰজাই ধনেশ্বৰক নিৰ্মলা নদীখন দিও বুলিলে দিব পাৰিবনে? নদীখন ৰজাৰ বাপেকে খান্দি থৈ যোৱা নাই নহয়। ধনেশ্বৰে ক'লে আৰু তহঁতে নেগুৰ পেলাই গুচি আহিলি?

বালি ঃ শুচি নাহি কি যুদ্ধ দিবি? ধনেশ্বৰে নাৱত ৰাঘৰ আৰু ডাউকো দেখিলোঁ। আহোঁতে চুৰি—চালিকৈ দুটা চাব মাৰি তিনিটা ভকুৱা পোৱালি, দুপাত নে তিনিপাত কান্দুলি আৰু তিনি পোৱামান ভাঙন পালো। (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১০৪)

নৰেন পাটগিৰি নাটকত প্ৰতিফলিত আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ হৈছে শ্ৰেণী বৈষম্যৰ প্ৰকাশ। ৰজা আহে নাটকখনৰ মাজেৰে নাট্যকাৰে নিম্ন শ্ৰেণীৰ ওপৰত ৰজাৰ দৰে ক্ষমতা থকা এচাম লোকে কৰা অন্যায়ৰ ফলত কেনেধৰণৰ পৰিস্থিতি সৃষ্টি হৈছিল তাৰ আভাস দাঙি ধৰিছে। নাটকখনৰ মাজেৰে অসমৰ সমাজ জীৱনৰ চিত্ৰ ফুটি উঠিছে। শোষক শ্ৰেণীটোৰ বাবে মাছমাৰি দুবেলা-

দুমুঠি খাই জীয়াই থকা লোকসকলৰ জীৱনলৈ দুৰ্ভিক্ষ নামি আহিছে। ৰজাৰ এজেণ্ট হৈ কাম কৰা লীলা আৰু ৰাঘৱৰ বাবেই গাওঁৰ অন্য লোকসকলে গাওঁলৈ ৰজা অহাৰ ক্ষেত্ৰত বাধা দিবলৈ সক্ষম হোৱা নাই। সেইসময়ৰ সমাজত পুৰোহিত শ্ৰেণীটোৱে ভণ্ডামি কৰি টকা সৰকাবলৈ চেষ্টা কৰিছিল তাক নাট্যকাৰে প্ৰকাশ কৰিছে। দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকত নাট্যকাৰে নদীপৰীয়া মৎস্যজীৱি মানুহৰ সমাজখন প্ৰতিফলিত কৰিছে। নাট্যকাৰে মাছ মাৰি দুবেলা দুমুঠি খাই জীয়াই থকা লোকসকলক হঠাৎতে অহা প্ৰকৃতিৰ বিধ্বংসী ৰূপে কেনেদৰে মাছমৰীয়া লোকৰ ঘৰ দুৱাৰ ভাঙি থানবান কৰি পেলাইছে তাৰো ছবি চিত্ৰিত হৈছে। লেংৰা মহলদাৰ দৰে ক্ষমতা থকা লোকে এখন সাধাৰণ জালৰ বাবে চুলেমানক যন্ত্ৰণা দি হত্যা কৰিবলৈ কুণ্ঠাবোধ নকৰিলে। কেৱল নিজৰ ক্ষমতাৰ বাবে তাক নাট্যকাৰে স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ কৰিছে।

নৰেন পাটগিৰিৰ নাটকত নাৰীয়ে এক বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। তেওঁৰ কোনো কোনো নাটকত পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাত অৱহেলিত হৈ পৰা নাৰীৰ মনন আৰু কোনো নাটকত নাৰীয়ে প্ৰত্যাহ্বানজনক এক সবল স্থিতি লোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। ৰজা আহে নাটকত নাট্যকাৰে সেই সময়ৰ সমাজত নাৰীক পণ্য সামগ্ৰী ৰূপে ব্যৱহাৰ কৰিছিল তাক প্ৰতিফলিত কৰিছে। বিষ্ণু চৰিত্ৰটোৰ নাৰীৰ প্ৰতি আছিল এক বিশেষ দুৰ্বলতা। পুৰোহিতৰ চৰিত্ৰৰ দোষৰ বাবে দুগৰাকীকৈ পত্নী থকাৰ পাছটো ৰাঘৱৰ ছোৱালী ৰাধাক বেয়া চকুৰে চাইছিল। তদুপৰি ৰজাৰ দৰে ক্ষমতালোভী মানুহে সেই সময়ৰ সমাজত নাৰীক পণ্য সামগ্ৰীৰূপে ব্যৱহাৰ কৰিছিল তাৰ ফলতেই ৰাঘৱ আৰু শ্যামৰ দৰে জাৰজে সমাজত তিৰস্কাৰ পাত্ৰ হ'ব লগা হৈছে। পুনৰ ঘাটলৈ ৰজা আহিব বুলি জানিব পাৰি পুনৰ সকলোৱে মাজত দুকুৰি বছৰৰ আগতে ঘটি যোৱা ঘটনাৰ পুনৰাবৃত্তি হোৱাৰ আশংকাত ৰজা অহাৰ ক্ষেত্ৰত বাধা আৰোপ কৰিছে। ধনেশ্বৰ মহলদাৰক সহায় কৰা গাওঁৰ ৰাঘৱে যেতিয়া নিজৰ ছোৱালী ৰাধাই ৰজাৰ মানুহৰ হাতত সৰ্বস্ব হেৰুৱাই আত্মহত্যা কৰিবলৈ লৈছিল তেতিয়া ৰাঘৱে নিজৰ ভুল বুজি পাইছে। ৰাঘৱে গাওঁৰ কুবেৰ আৰু অন্যান্য লোকসকলৰ সৈতে লগলাগি শেষত ৰজাক ভেটিবলৈ হাতত টাঙোন তুলি লৈছে। নাটকখনৰ আন এক চৰিত্ৰ উৰ্বশীয়ে নিজৰ স্থিতিত অটল থাকি স্বামী এলেহুৱা প্ৰকৃতিৰ হোৱা বাবে বজাৰত মাছ বিক্ৰী কৰি নিজৰ প্ৰয়োজনীয়তাখিনি পূৰণ কৰিছে।

নৰেন পাটগিৰি নাটকত তদানীন্তন সময়ৰ অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ চিনাকী ছবিখন স্পষ্ট ৰূপত দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিভিন্ন আচাৰ, ৰীতি-নীতি, লোকসাংস্কৃতিক সমল তেওঁৰ নাটকত প্ৰতিফলিত হৈছে। ৰজা আহে নাটকত অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ লোকাচাৰ আৰু লোকবিশ্বাসৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। নাটকখনৰ প্ৰথম দৃশ্যত উৰ্বশীয়ে সপোনত ক'লা মাছটো দেখাৰ ফলত গাওঁখনলৈ বিপদৰ আগমনৰ যি লোকবিশ্বাস প্ৰচলিত হৈছে তাক নহ'বৰ বাবে কুবেৰে নদীৰ পাৰত গাওঁখনৰ মংগলৰ কাৰণে জলনাৰায়ণ পূজা এভাগ আগবঢ়াইছে। নাটকখনত অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ অন্যতম অংগ শংকৰদেৱৰ সৃষ্টি কৰা ভাওনাৰ আভাস পোৱা গৈছে বালি চৰিত্ৰটোৰ মাজেৰে এনেদৰে- "ভীম ভীম নকৰিবি ভীমৰ আগত, হাঞ্জ-মূৰ ছিঙি দিম গদাৰ কোবত। অ'হে দুঃশাসন, তুহাৰ ৰক্তপান কৰব হামু হাঃ হাঃ হাঃ।" (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.৯৭-৯৮)

অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি অসমৰ লোকজীৱনৰ লগত জড়িত হৈ আছে। নাট্যকাৰে ৰজা আহে নাটকত তাক প্ৰতিফলিত কৰিছে জাৰজ শ্যাম আৰু ৰাধাৰ কথোপকথনৰ মাজেৰে-

শ্যাম ঃ ৰজা আহি'ব, ৰজা-কি মজা-অলং-দলং পৰিছে ৰজা-ৰাণী আহিছে।

ৰাধা ঃ শ্যাম, সৰুতে ৰজা অহাৰ খেলতো খেলিলেই আইতাই যে আমাক মাৰিবলৈ খেদি ফুৰিছিল তোৰ মনত আছেনে? (পাটগিৰি, ২০১৩, পৃ.১২৭)

অসমৰ গ্ৰাম্য জীৱনত দৈনন্দিন ব্যৱহৃত হৈ থকা ভৌতিক সংস্কৃতিৰ অন্যতম অংগ তথা গৃহস্থালিৰ সা-সজুঁলিৰ চিত্ৰ ৰজা আহে নাটকত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে- জাল, পাচি, কলহ, লেম্প, দা, টঙী ইত্যাদি। দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকখনটো অসমীয়া সংস্কৃতিৰ বিহুৱান গামোচাৰ ব্যৱহাৰৰ উপৰি মাছমৰীয়া লোকসকলৰ দৈনন্দিন ব্যৱহৃত ৰেকজাল, দা-কুঠাৰ প্ৰয়োগ পৰিলক্ষিত হৈছে।

নৰেন পাটগিৰি দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটকত সমাজ জীৱনৰ অন্যতম অংগ লোকাচাৰ প্ৰয়োগ প্ৰতিফলিত হৈছে। নাটকখনৰ পঞ্চম দৃশ্যত উচ্চগ্ৰামত কালী পূজাৰ আভাস দিয়াৰ লগতে বৃন্দাবনে সংস্কৃত শ্লোক পাঠ কৰিছে

আৰু দিবাকৰে ফুল নৈবদ্য লৈ কালীপূজা কৰিছে। নাটকখনত লোকপৰিৱেশ্য কলাৰ অন্যতম অংগ লোকগীত আৰু লোকবাদ্যৰ আভাস পোৱা যায়। নাটকখনৰ কাহিনীভাগ গোৱালপৰীয়া লোকগীতৰ মাজেৰে আৰম্ভ হৈছে।

নৰেন পাটগিৰিৰ দুইখন নাটকত তদানীন্তন সময়ৰ সমাজ ব্যৱস্থাটোক ফুটি উঠিছে। সমাজৰ বিভিন্ন দিশ, সমাজৰ বিভিন্ন সমস্যা অথবা সমাজ জীৱনত প্ৰভাৱ পেলোৱা কিছুমান চৰিত্ৰক মূল হিচাপে লৈ নাট্যকাৰে নাটকৰ মাজেৰে সমাজ ব্যৱস্থাৰ স্বৰূপ উদঙাই দেখুৱাইছে। নাটককেইখনৰ মাজেৰে হাঁহি-কান্দোন, প্ৰেম-সংঘাত, অসমৰ সমাজ জীৱনৰ ওপৰত ইংৰাজৰ প্ৰভাৱ, মাছমৰীয়া লোক সকলৰ দূৰৱস্থা, শোষক শ্ৰেণীয়ে শোষিত শ্ৰেণীৰ ওপৰত কৰা অন্যায়, কূটঘাত, ৰাজনীতি, গ্ৰাম্য জীৱন আদি সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত হৈছে। নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকসকলৰ জীৱনৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি নাটক কেইখনত সেইসময়ৰ সমাজ প্ৰতিফলিত হৈছে।

উপসংহাৰ ঃ

উপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা সাম্প্ৰতিক সময়ৰ নাট্যকাৰ নৰেন পাটগিৰি ৰজা আহে আৰু দিবাকৰৰ আত্মকথা নাটক দুখনৰ জৰিয়তে গ্ৰাম্য সমাজৰ খাটি খোৱা শ্ৰেণীটোৰ অভাৱগ্ৰস্থ জীৱন, ৰাজনৈতিক নেতা তথা শোষক শ্ৰেণীৰ ভণ্ডামি, অভাৱ-অনাটন, দুখ যন্ত্ৰণা আদি সম্পৰ্কে আভাস পাব পাৰি। নাটকদুখনৰ প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই নাট্যকাহিনীক সফল কৰাত উল্লেখযোগ্য ভূমিকা গ্ৰহণ সম্পৰ্কে আভাস পাব পাৰি। নাটকদুখনৰ প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই নাট্যকাহিনীক সফল কৰাত উল্লেখযোগ্য ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। নাট্যকাৰে বিষয়বস্তু উপস্থাপন আৰ্কষণীয় হোৱাকৈ তুলি ধৰিছে। তদুপৰি নাটক দুখনত প্ৰয়োগ কৰা সংলাপে স্বকীয় ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। চৰিত্ৰ অনুযায়ী যথাযথ সংলাপ সৃষ্টি কৰাত নৰেন পাটগিৰি সফল বুলিব পাৰি।

পাটগিৰি সংলাপবোৰ চুটি-দীঘল, সহজ সৰল, লোকভাষা ব্যৱহৃত আৰু প্ৰাণৱন্ত। তেওঁ নাটকত হিন্দী, ইংৰাজী, মিশ্ৰিত সংলাপে অনন্য মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. দাস, অমলচন্দ্ৰ, ২০১৮ সম্পা. *অসমীয়া নাট্য পৰিক্ৰমা;* পৃ.৭২৪-৭২৭ গুৱাহাটী : বনলতা।

২. দাস, নাৰায়ণ আৰু ৰাজবংশী, পৰমানন্দ সম্পাঃ ১৯৯৯ *অসমীয়া সাহিত্যত পাশ্চাত্য প্ৰভাৱ;* গুৱাহাটী : চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

৩. দাস, বাদল ২০০০ *নাট্যকলা আৰু অভিনয় শিল্প;* গুৱাহাটী।

৪. দাস, হেমেন ১৯৮৭ *নাট্যশিল্প;* গুৱাহাটী : বাণী প্ৰকাশ মুদ্ৰণী।

৫. নেওগ, মহেশ্বৰ ১৯৮৭ *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা;* গুৱাহাটী : চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

৬. পাঠক, দয়ানন্দ ১৯৯৬ *অসমীয়া নাটক আৰু পাশ্চাত্য প্ৰসংগ;* গুৱাহাটী : লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল।

৭. পাঠক, ৰমেশ ১৯৯১ *নাটক আৰু নাটক;* গুৱাহাটী : বুকলেণ্ড।

৮. পাটগিৰি, নৰেন ২০১৩ *ৰাগ বসুন্ধৰা নিৰ্বাচিত নাটক আৰু নাট বিষয়ক লিখনী* ; গুৱাহাটী : অসম প্ৰকাশন

৯. ভট্টাচাৰ্য, হৰিচন্দ্ৰ ১৯৮৮ অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ জিলিঙনি আদিৰ পৰা ১৯৬৭ চন পৰ্যন্ত গুৱাহাটী : লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল।

১০. ভৰালী, শৈলেন ১৯৯২ *অসমীয়া লোক-নাট্য পৰম্পৰা;* গুৱাহাটী : বাণী প্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড।

১১. ভৰালী, শৈলেন ১৯৭৬ *আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যঃ* দুটি তৰংগ; গুৱাহাটী : নিউ বুক ষ্টল।

১২. ভৰালী, শৈলেন ২০০৮ *অসমীয়া নাটক : স্বৰাজোত্তৰ কাল;* পৃ.৬-৭ গুৱাহাটী : চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

পৰিৱৰ্ত্তিত শিক্ষাব্যৱস্থা আৰু শিক্ষাৰ বাণিজ্যকৰণ

দাসো কলিতা

গণেশনগৰ, বশিষ্ঠ
গুৱাহাটী (অসম) - ৭৮১০২৯
ম'বাইল ঃ ৯৪৩৫৩০৫০৫৬

সময়ৰ পৰিৱৰ্ত্তনৰ লগে-লগে সমাজখনৰো পৰিৱৰ্ত্তন হয়। খাদ্যাভ্যাসৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ঘৰ-দুৱাৰ, সাজ-পোছাক, শিক্ষা-দীক্ষাকে ধৰি সম্পূৰ্ণ জীৱন পদ্ধতিয়েই সলনি হৈ যায়। এক কথাত ক'বলৈ হ'লে সেই পৰিৱৰ্ত্তনে চুই যায় সমাজখনৰ সকলো দিশ। শিক্ষানীতিৰ ক্ষেত্ৰত দ্ৰুত পৰিৱৰ্ত্তন লক্ষ্য কৰা যায়। পৰিৱৰ্ত্তনৰ বতাহে গুৰুগৃহৰ পৰা উলিয়াই আনি বিভিন্ন পৰীক্ষাগাৰৰ মাজেৰে সৰকাই আনি আজিৰ পৰ্যায়ত উপনীত কৰিছে শিক্ষা ব্যৱস্থাটোক। চুৰিয়াৰ পৰা হাফপেণ্ট বা পেটলুং। খালি ভৰিৰে স্কুললৈ দুইৰ পৰা পাঁচ মাইললৈ খোজকঢ়া। কলপাতৰ শুকান ঠাঁৰিৰে তৈয়াৰ কৰা 'কঠ' বা সৰু ঢাৰি পাৰি মাটিত লিখা-পঢ়া কৰা। মাটিৰ বা কাঠৰ ফলিত মাটিৰ পেঞ্চিলেৰে অ, আ, ক, খ লিখিবলৈ শিকা। কেহৰাজৰ ৰস আৰু কেৰাহীৰ ছাঁইৰে চিয়াঁহী তৈয়াৰ কৰি কলপাতত হাতৰ আখৰ, ঘৰত নেওতা লিখি নিয়া আদি কথাবোৰ সাধুকথা হ'ল। দোৱাত, চিঁয়াহীৰ গুলি, পাখিৰ কলম, হেণ্ডেল আদি তেতিয়াৰ প্ৰচলিত শব্দবোৰ এতিয়া অচল। সীমিত সংখ্যক চিঁয়াহী কলম আছে যদিও ডট্ কলম আৰু জেল কলমৰ আধিপত্য চলি আছে। সেইবোৰৰ ঠাই বা কিহে দখল কৰে কোনে ক'ব। মুঠৰ ওপৰত সময়ে সকলো সলনি কৰি পেলালে।

দেশ ইংৰাজৰ হাতলৈ যোৱাৰ পাছত বিদেশী ইংৰাজ শাসনকৰ্তাসকলে তেওঁলোকৰ কামত সহায় হোৱাকৈ কিছুমান কেৰাণী সৃষ্টি কৰাৰ বাবে শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল য'ত বিশেষভাৱে ইংৰাজী ভাষা শিকোৱাৰ ব্যৱস্থা কৰা হৈছিল। যি ব্যৱস্থাৰ জৰিয়তে তেওঁলোকে Native ভাৰতীয়সকলক শিক্ষিত কৰি গঢ়িব বিচাৰিছিল - 'British in taste but Indian in colour' সেই দৃষ্টি আগত ৰাখি তেওঁলোকে ১৮৩৩ চনত চাৰ্ল্‌ছ উডৰ শিক্ষানীতি আৰু পিছত পৰ্যায়ক্ৰমে ১৮৮২-৮৪ চনৰ হাণ্টাৰ কমিচনৰ পৰামৰ্শৰ ভিত্তিত উন্নত শিক্ষানীতি। লাহে লাহে শিক্ষাৰ প্ৰতি জনসাধাৰণক আকৰ্ষণ কৰিছিল। শিক্ষাৰ প্ৰতি ধাউতি বঢ়াইছিল। মানুহে বুজি উঠিছিল যে মানুহ শিক্ষিত হ'লেহে দেশ তথা জাতিৰ উন্নতি হ'ব। শিক্ষাহে দেশ তথা জাতিৰ উন্নয়নৰ মূল মন্ত্ৰ। শিক্ষাই জ্ঞান লাভৰ পথ প্ৰশস্ত কৰে। জ্ঞান লাভ আৰু উন্নতিৰ বাবে শিক্ষাৰ বিকল্প নাই। যদিও বৃটিছসকলে তেওঁলোকৰ উদ্দেশ্য সিদ্ধিৰ বাবে শিক্ষানীতিৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল

শিক্ষাৰ মুলগত জ্ঞানে মানুহৰ মাজত দেশাত্মবোধ আৰু জাতীয়তাবোধৰ চেতনা জগাই তুলিছিল।

দেশ স্বাধীন হোৱাৰ পাছত ১৯৪৮ খ্ৰীষ্টাব্দত ৰাধাকৃষ্ণণ কমিচন আৰু ১৯৬৪-৬৬ খ্ৰীষ্টাব্দত স্বাধীন চৰকাৰে গঠন কৰি দিয়া ডি,এছ, কোঠাৰী কমিচনে শিক্ষানীতিৰ সামগ্ৰীক পৰিৱৰ্তনৰ পৰামৰ্শ আগবঢ়াছিল। কিন্তু বৃটিছ শাসকে প্ৰৱৰ্তন কৰা শিক্ষানীতিৰ প্ৰভাৱৰ পৰা মুক্ত হ'ব পৰা নাছিল কমিচন দুখন। পৰৱৰ্তী সময়ত চৰকাৰে শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰখনৰ উন্নতিৰ বাবে পৰিকল্পিতভাৱে ধেৰ আঁচনি গ্ৰহণ কৰিছে। ১৯৭৯ খ্ৰীষ্টাব্দৰ পৰা পৰ্যায়ক্ৰমে প্ৰাপ্তবয়স্ক শিক্ষা, অনানুষ্ঠানিক শিক্ষা, কৃষ্ণফলক আঁচনি, পূৰ্ণ সাক্ষৰতা আঁচনি, আনন্দময় শিক্ষা আঁচনি, জিলা প্ৰাথমিক শিক্ষা আঁচনি আদি বিধে বিধে আঁচনি গ্ৰহণ কৰিছে কিন্তু কেইখন আঁচনিয়ে পূৰ্ণতাৰ মুখ দেখিছে সেইটোহে চাবলগীয়া কথা।

১৯৯২ খ্ৰীষ্টাব্দৰ পৰা আকৌ সৰ্বশিক্ষা আঁচনি। এই আঁচনিৰ জৰিয়তে প্ৰাথমিক আৰু মাধ্যমিক স্কুল পৰ্যায়ত বিনামূলীয়া শিক্ষা প্ৰদান কৰাৰ উপৰি স্কুলৰ আচবাব, শৌচাগাৰ, প্ৰশ্ৰাৱগাৰ নিৰ্মাণ আৰু বিশুদ্ধ খোৱাপানী যোগানৰ নামত পৰ্যাপ্ত পৰিমাণৰ আৰ্থিক সাহায্য / অনুদান দিয়াৰো ব্যৱস্থা কৰিছে। বিনামূলীয়া পাঠ্যপুথি, পোছাক যোগান ধৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিছে। গাঁও শিক্ষা সমিতি, পঞ্চায়ত শিক্ষা সমিতি, মাতৃগোট, আমাৰ পঢ়াশালি, সংযোগী শিক্ষাকেন্দ্ৰ, শিক্ষামিত্ৰ, শিক্ষাজ্যোতি আদি বিভিন্ন আঁচনিৰ জৰিয়তে অভিভাৱক তথা জনসাধাৰণৰ অন্তৰ্ভুক্তিৰে আঁচনিসমূহ যিমানেই জনসাধাৰণৰ মাজলৈ লৈ যাব বিচৰা হৈছে কাৰ্যক্ষেত্ৰত কিন্তু জনসাধাৰণ সিমানে আঁতৰি অহা নমহ পৰিলক্ষিত হৈছে। কাৰণ প্ৰচাৰ কৰা ধৰণে আঁচনিসমূহ ৰূপায়ন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত জনসাধাৰণৰ সক্ৰিয় সহযোগ পৰিলক্ষিত নহয়, কাগজে-কলমেহে ৰূপায়ণ কৰা যেন লাগে।

আনহাতে সমান্তৰালভাৱে গঢ়ি উঠা ব্যক্তিগত খণ্ডৰ ব্যৱসায়ীক বিদ্যালয়সমূহেহে অভিভাৱক-ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক আকৰ্ষণ কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ কাৰণ চিন্তাবিদ জেম্চ পেট্ৰাছে তেখেতৰ Globalisation unmarked নামৰ গ্ৰন্থত কৈছে 'বিশ্বায়ন আৰু মুক্ত বজাৰ পুঁজিবাদৰ সৈতে সমগ্ৰ পৃথিৱীতে মানুহ খাপ খোৱা বা বশ হোৱাৰ অনিবাৰ্য্যতা নিৰ্ভৰ কৰে। আধিপত্যকাৰী আৰু শাসকশ্ৰেণীবিলাকৰ সেই সামৰ্থৰ ওপৰত, যাৰ দ্বাৰা

তেওঁলোকে নিজ ইচ্ছাৰে মানুহৰ ভাঁজ খুৱাই দিব পাৰে।’ তাকে কৰিবলৈ ভাৰতবৰ্ষকে ধৰি উন্নয়নশীল আৰু অনুন্নত দেশসমূহৰ দ্বাৰা W.T.O. (World Trade Organisation) ৰ অংগ GATS (General Agreement on Trade and Service) চুক্তি সম্পাদন কৰায়। লগে লগে পুঁজিবাদী শ্ৰেণীটোৱে উচ্চ শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰখন ব্যক্তিগত খণ্ডৰ অধীনলৈ আনি উচ্চ শিক্ষাৰ মাধ্যমেৰে জনসাধাৰণৰ মাজত ব্যৱসায়ৰ জাল মেলি দিয়ে। ক’ব নোৱাৰাকৈয়ে পুঠি-খলিহাৰ পৰা ৰৌ-বৰালিলৈ সকলো সোমাই পৰে সেই জালত। কাৰণ কথাতে কয় নহয় ‘বোলে লোভত মৰে বৰশীৰ মাছ’ (উৎস ঃ ড° ৰজনীকান্ত দাসৰ ‘দেশ আৰু জাতি গঠনত উচ্চ শিক্ষাৰ প্ৰাসঙ্গিকতা বৰ্তমান কিমান প্ৰাসঙ্গিক’)। উচ্চ শিক্ষাৰ নামত নিজৰ ল’ৰা-ছোৱালীক তথাকথিত উচ্চ শিক্ষিত কৰি বহুজাতিক কোম্পানীত মোটা অংকৰ দৰমহা পোৱা চাকৰিৰ যোগ্য কৰি তোলাটোৱেই অভিভাৱকসকলৰ লক্ষ্য হৈ পৰিল। লাগিলে তাৰ বাবে যিমান ধন খৰচ কৰিব নালাগক কিয়। ছোৱালীসকলো সেই ঢৌত উজান দিয়ে। সময়ত সেই ল’ৰা-ছোৱালীকসলো হৈ পৰে একোটা ধনঘটা যন্ত্ৰ। দেশ-জাতিৰ কথা ভাবিবলৈ সময় নহয় তেওঁলোকৰ। তেওঁলোকে মাথো দৌৰি থাকে তথাকথিত ‘কেৰিয়াৰ’ আৰু ধনৰ পাছত চকুত বিলাসী জীৱনৰ স্বপ্ন লৈ।

কিন্তু শিক্ষা ব্যৱস্থাটোৰ ওপৰত শিক্ষানীতিৰ ওপৰত পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা চলিয়েই আছে। ১৯৯৬ খ্ৰীষ্টাব্দত ইউনেস্ক’ই (UNESCO) জেক্‌চ ডেল’ৰচৰ নেতৃত্বত ‘একবিংশ শতিকাৰ শিক্ষাৰ আন্তৰ্জাতিক আয়োগ’ (International Comission on Education for the twenty first Century) নামৰ আয়োগ এখন গঠন কৰে। দুবছৰৰ মূৰত ১৯৯৮ খ্ৰীষ্টাব্দত আয়োগে প্ৰতিবেদন দাখিল কৰে। প্ৰতিবেদনখনৰ নামাকৰণ কৰে - “Learning - The Treasure Within” সমাগত দিনৰ বাবে তথাৰ্থ শিক্ষাৰ স্বৰূপ নিৰ্দ্ধাৰণৰ বাবে নিযুক্ত এই আয়োগে জীৱন আৰু জগত সম্পৰ্কে এক সামগ্ৰিক দৃষ্টিভংগীৰে বিশ্বৰ মানৱ জাতিৰ ভাবিকালৰ শিক্ষাক চতুস্তম্ভৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত এক ব্যৱস্থা হিচাপে গঢ় দিয়াৰ বাবে ডেল’ৰচৰ প্ৰতিবেদনত পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা হয়।’ (ড° দীনেশ চন্দ্ৰ ভাগৱতী - প্ৰাসংগিক শিক্ষা আৰু সাম্প্ৰতিক চিন্তা) জ্ঞানৰ বিকাশ, কৰ্মকুশলতা বৃদ্ধি, সৌহাৰ্দপূৰ্ণ সহৱস্থান আৰু ব্যক্তিৰ সম্ভাৱনা বিকাশৰ ওপৰত সামগ্ৰিক দৃষ্টিভংগীৰে এই চতুস্তম্ভ (Four Pillar)ৰ ওপৰত ভৱিষ্যতৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাক গঢ় দিয়াৰ বাবে প্ৰতিবেদনত পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা হয়। যেনে - ১। জানিবলৈ শিক্ষা, ২। কাম কৰিবলৈ শিক্ষা, ৩। পাৰস্পৰিক মিলাপ্ৰীতিৰে বাস কৰিবলৈ শিক্ষা আৰু ৪। সামৰ্থ অনুযায়ী যোগ্য হ’বলৈ শিক্ষা।

উল্লেখযোগ্য যে মহাত্মা গান্ধীৰ বুনিয়াদী শিক্ষাৰ আদৰ্শৰ প্ৰভাৱ ডেল’ৰচৰ প্ৰতিবেদনত ঠায়ে ঠায়ে পৰিলক্ষিত হয়।

কিন্তু মন কৰিবলগীয়া কথাটো হ’ল যেতিয়াৰ পৰাই শিক্ষা এটা বৃত্তিত পৰিণত হ’ল তেতিয়াৰ পৰাই শিক্ষকসকল হৈ পৰিল চৰকাৰী চাকৰিয়াল (Civil Servant)। চৰকাৰী চাকৰিয়াল হিচাপে তেওঁলোকে চৰকাৰৰ পৰা পাবলগীয়া সকলোবোৰ সা-সুবিধা পালে। গতিকে শিক্ষকসকলে শিক্ষকতা কৰাৰ সলনি চাকৰি কৰিবলৈ ল’লে। তেতিয়াৰ পৰাই সমগ্ৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাটোতেই আউল লাগিল। মধ্যাহ্ন ভোজন আৰু বিনামূলীয়া পোছাক যোগান ধৰা আৰম্ভ কৰাৰ পৰা অৱস্থা আৰু বেয়া হ’ল। কাৰণ শিক্ষকসকলে শিক্ষাদান কৰাৰ সলনি চাউল-দাইল, পোছাকৰ হিচাপ ৰাখিবলগীয়া হ’ল। শিক্ষা বিভাগৰ কাৰ্যালয়লৈ দৌৰা-দৌৰি কৰি থাকিবলগীয়া হ’ল। শিক্ষাদান কৰাৰ সময় ক’ত? ফলত শিক্ষাৰ মূল ভেঁটিয়েই সোলোক-ধোলোক হৈ পৰিছে। গতিকে চৰকাৰে যিমানেই পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা নকৰক কিয়, যিমানেই আয়োগ গঠন কৰি পৰামৰ্শ নিদিয়ক কিয়, যেতিয়ালৈকে শিক্ষকসকলে একাগ্ৰতাৰে বৃত্তিটোত আত্মনিয়োগ নকৰে, তেতিয়ালৈকে শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ উন্নতি আশা কৰিব নোৱাৰি। ❑

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होग।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : ……………………………………

पदनाम : ……………………………………

पूरा पता : ……………………………………

: ……………………………………

ई-मेल : …………………… मोबाइल : ……………

RTGS का विवरण : ……………………………………

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		***संस्थागत***	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

घोषणा-पत्र

1.	प्रकाशन का स्थान	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
2.	प्रकाशन की अवधि	: मासिक
3.	प्रकाशक का नाम	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
4.	मुद्रक का नाम	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
5.	संपादक का नाम	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
6.	स्वामित्व	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से समिति के मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

मैं डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया घोषित करता हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

अप्रैल, 2023
गुवाहाटी-32

ह.- डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
प्रकाशक के हस्ताक्षर

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 30th April, 2023 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com